तेलुगु वाङ्मय : विविध विधाएँ

बालशौरि रेड्डी



प्रथम संस्करण · १९९१

मूल्य : रु० ५०/-

प्रकाशक : हिन्दुस्तनी एकेडेमी, इलाहाबाद

मुद्रक : रामायण प्रेस,
७३८-पुराना कटरा (पिक मार्केट), इलाहाबाद

प्रकाशकीय

अखण्ड भारत की अवधारणा—भाषागत वैविध्य के होते हुए भी सर्वमान्य है। स्वतंत्र भारत के साहित्यिक विकास में यहाँ की भाषाओं तथा उपभाषाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। देश का बहुसंख्यक समाज हिन्दीतर समृद्ध भाषाओं के साहित्य से भी प्रायः अपरिचित है। तेलुगु भाषा आन्ध्र प्रदेश की भाषा है और भाषाविज्ञान के अनुसार द्रविड़-परिवार की भाषा मानी जाती है, किन्तु वह संस्कृत और प्राकृत भाषाओं से पर्याप्त प्रभावित है। जहाँ भारतीय भाषा एवं साहित्य का वैविध्य भी समृद्धि का बोध कराता है, वहीं लिपि का अन्तर अन्तराल उत्पन्न करता है जिसको पार करना बहुधा दुष्कर हो जाता है। इसे दूर करने के अनेक प्रयत्न हुए हैं और ऐसी मानसिकता भी बन रही है कि व्यवधान मिट जाय। सोलह भाषाओं को एक ही देवनागरी लिपि में कम्प्यूटर के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है और उनके परस्पर अनुवाद भी किये जा सकते हैं। कार्य-रूप में यह उपलब्धि क्रान्तिकारी परिणाम देगी—ऐसा विश्वास है। अनेक संस्थानों और अकादमियों द्वारा अनुवाद का कार्य किया भी जा रहा है। एक भाषा में दूसरी भाषा के साहित्य की पहचान कराने की चेष्टा निश्चय ही स्वागत-योग्य है।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के वृहत्तर उद्देश्य को दृष्टि में रख कर दो योजनाएँ स्वतः स्वीकार की हैं। एक, अन्य भाषाभाषी विद्वानों द्वारा हिन्दी में महत्त्वपूर्ण एवं पठनीय सामग्री प्रस्तुत करना; और दूसरा, द्विभाषी अनुवाद-प्रकाशन। दूसरी योजना के अन्तर्गत कुछेक पुस्तकें प्रकाशित भी हुई हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'तेलुगु-वाङ्मय : विविध विधाएँ' पहली योजना के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इसके लेखक दक्षिण भारत में ही नहीं, उत्तर भारत में भी सुप्रसिद्ध और सम्मानित रहे हैं। सम्प्रति वे भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता के निदेशक पद पर समासीन हैं। इस पर डॉ० प्रभाकर माचवे और पाण्डुरंग राव उनसे पूर्व दायित्व सँभाल चुके थे।

इस पुस्तक का उद्देश्य हिन्दी-भाषी जनता को तेलुगु साहित्य की गतिविधि से अवगत कराना है। पुस्तक में चौदह लेख संगृहीत हैं जिनमें से कई लेख तेलुगु भाषा और साहित्य के महत्त्वपूर्ण पक्षों को प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत करते है। सारे लेख एकसाथ नही लिखे गये हैं। उनके प्रभाव और अभाव दोनों को संतुलित दृष्टि से लेना चाहिए।

आशा है, प्रस्तुत पुस्तक विद्वानों के बीच समादृत होगी।

जगदीश गुप्त
सचिव

भूमिका

किसी भी राष्ट्र अथवा देश के सास्कृतिक विकास मे उस राष्ट्र या देश की भाषा, वाङ्मय, धर्म, दर्शन तथा ललित कलाएँ अपनी अहं भूमिका रखती हैं। प्राचीन काल मे ही भारतीय अस्मिता की अभिव्यक्ति के लिए संस्कृत भाषा माध्यम रही है।

भारत अनादि काल से ही एक अखण्ड भू-भाग के रूप मे विद्यमान रहा है। हालाँकि इस भू-खण्ड में विविध प्रकार की भाषाएँ, सभ्यताएँ विभिन्न क्षेत्रों मे पल्लवित, पुष्पित एवं पनपती रही हैं और परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करती रही है। आदान-प्रदान की इस प्रक्रिया मे से विविधताएँ—अनेकता मे एकता तथा एकता में अनेकता का आदर्श प्रस्तुत करती रही हैं। हमारी मूल चिंतनधारा इतनी समान रही है कि परिणामस्वरूप विविध क्षेत्रों के चिंतकों, मनीषियों, गायकों तथा साहित्यकारों का स्वर एक रहा है; साथ ही हमारे देश की सामाजिक व्यवस्था तथा सामाजिक जीवन के आदर्श भी समान रहे हैं। यही कारण है कि वे ही आदर्श हमारे साहित्य, कला तथा जीवन-शैली मे समान रूप से प्रतिबिंबित होते रहे हैं। इन्ही तत्वो तथा आदर्शो को आत्मसात् करके हमारे देश के कवि, गायक तथा कलाकार साधनारत रहे हैं। इन विविध धाराओं के मध्य अंतर्वाहिनी के रूप मे हमारी जो सांस्कृतिक स्रोतस्विनी प्रवहित रही है, वही हमारी एकता एवं अखण्डता का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

हमारी संस्कृति सदा समन्वयात्मक रही है, इस कारण इसमे समस्त प्रदेशो की विशेषताएँ स्वाभाविक रूप से समाविष्ट होती गई हैं। परिणामस्वरूप हमारी संस्कृति अत्यन्त व्यापक, गहन तथा विविधताओ से पूर्ण हो परिपुष्ट बनती रही है। इसके उन्नयन मे आन्ध्र का योगदान भी अपनी अलग पहचान रखता है।

इसी क्रम मे भारत की समस्त भारतीय भाषाएँ अपने-अपने क्षेत्र मे विकसित एवं समृद्ध होती रही हैं। परन्तु भारतीय चिंतक, मनीषी, समाज-सुधारक, भाषाविद् एवं राजनायिकों ने यह अनुभव किया कि संपूर्ण भारतीय सामाजिक संस्कृति की अभिव्यक्ति के लिए एक आधुनिक भारतीय भाषा को माध्यम के रूप मे विकसित करना आवश्यक है। परिणामस्वरूप हिन्दी राष्ट्रभाषा/संपर्क-भाषा/राजभाषा के रूप में स्वीकार की गई।

स्वाधीनता के उपरांत भारतीय भाषाओं तथा हिन्दी के बीच आदान-प्रदान की प्रक्रिया को बढ़ावा मिला। साथ ही अन्य भारतीय भाषाओं के उत्कृष्ट साहित्य पर विविध प्रकार की रचनाएँ प्रकाश में आने लगी। इसी परंपरा की यह भी एक कड़ी है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में तेलुगु भी एक सक्षम एवं समृद्ध भाषा है। ग्यारहवीं शती में जब तेलुगु का प्रथम महाकाव्य 'महाभारत' का सूत्रपात हुआ, तब से निरंतर तेलुगु भाषा विकसित एवं परिपुष्ट होती रही। तेलुगु सात करोड़ जनता की मातृभाषा है और यह संस्कृत में अत्यधिक प्रभावित है। लगभग साठ फीसदी तत्सम शब्दों में पूर्ण यह परिनिष्ठ भाषा अपने उत्तम काव्य-ग्रन्थों के साथ विविध विधाओं की कृतियों से समलंकृत है। तेलुगु वाङ्मय की विविध विधाओं में यक्षगान, शतक साहित्य, अवधान कविता, द्वर्थि एवं त्र्यर्थि काव्य अपना अलग वैशिष्ट्य लिये हुए हैं। इस ग्रन्थ में मैं अवधान कविता तथा द्वर्थि एवं त्र्यर्थि काव्य-सम्बन्धी लेख नहीं दे पाया। अगले संस्करण में अवश्य सम्मिलित करने का प्रयास करूँगा।

इस ग्रन्थ में कुल चौदह निबंध हैं। प्रारंभ के दो लेखों में मैंने तेलुगु साहित्य के क्रमिक विकास का परिचय दिया, शेष निबंधों में तेलुगु वाङ्मय के विविध परिदृश्यों का पर्यावलोकन। मैं मानता हूँ कि कुछ निबंधों में मैं अत्याधुनिक गतिविधियों तथा साहित्यकारों का विपुल परिचय नहीं दे पाया। एक तो ग्रन्थ के कलेवर के बढ़ने की आशंका थी और दूसरी बात—मैंने अपने तेलुगु साहित्य का इतिहास[1] तथा तेलुगु साहित्य के निर्माता[2] में विशद चर्चा की है। इसके अतिरिक्त इसी ग्रन्थ के 'स्वातंत्र्योत्तर तेलुगु साहित्य' निबंध में संक्षेप में ही सही, पूर्ण विहगावलोकन किया है।

इस ग्रन्थ में मैंने तेलुगु वाङ्मय के विभिन्न परिदृश्यों के मार्गदर्शक सूत्रों का परिचय देने का अवश्य प्रयास किया है, इसकी गुणवत्ता तथा उपादेयता का निर्णय विज्ञ पाठक एवं सुधी समीक्षक ही कर सकेंगे।

मेरे कतिपय निबंध एवं तेलुगु साहित्य का इतिहास पढ़कर स्वर्गीय श्रद्धेय डॉ० रामकुमार वर्मा ने तेलुगु साहित्य के विविध परिदृश्यों पर कुछ चुने हुए निबंध भेजने का आग्रह किया, तदुपरांत आदरणीय डॉ० जगदीश गुप्त जी ने बार-बार स्मरण दिलाकर इस ग्रन्थ को प्रकाश में लाने का प्रयास किया और बंधुवर डॉ० रामजी पांडेय ने ग्रन्थ के प्रकाशन की प्रगति एवं मुद्रण में विशेष रुचि लेकर इस ग्रन्थ को आकर्षक बनाने का सफल प्रयत्न किया है। अतः मैं हिन्दुस्तानी एकेडेमी के इस त्रिमय के प्रति अत्यंत आभारी हूँ।

—बालशौरि रेड्डी

निदेशक
भारतीय भाषा परिषद,
३६ए, शेक्सपियर सरणी
कलकत्ता—७०००१७

१. उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ द्वारा प्रकाशित।
२. साहित्य भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित।

विषय-सूची



१

तेलुगु भाषा और साहित्य

तेलुगु भाषा के आदि महाकवि नन्नय भट्ट ने "नन्दपूडि" शिलालेख में अपने सम्बन्ध में लिखा है—"आन्ध्र कवित्व विशारदुंडु" अर्थात् मैं आन्ध्र "तेलुगु" भाषा की कविता का विशारद हूँ। इससे हमे विदित होता है कि तेलुगु भाषा प्राचीन समय में आन्ध्र नाम से भी व्यवहृत हुई है। आन्ध्र शब्द पहले देशपरक में, तत्पश्चात् जाति तथा भाषा के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। आन्ध्रवासियो का उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मणो में (ऐतरेय ब्राह्मण-६, अध्याय-३, खण्ड-१८) महाभारत के सभा पर्व में, ब्रह्म, मत्स्य, वायु इत्यादि पुराणों मे ही नही अपितु महाभारत, रामायण आदि महाकाव्यों मे भी हुआ है। वही आन्ध्र शब्द कालातर मे भाषा के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। आन्ध्र भाषा का दूसरा नाम तेलुगु है।

तेलुगु और तेनुगु :

ब्रह्माण्ड पुराण के वर्णनो द्वारा हमे यह विदित होता है कि आन्ध्र देश के सुप्रसिद्ध शव तीर्थ श्रीशैल, कलाहस्ती तथा द्राक्षाराम के बीच में स्थित भूभाग त्रिलिंग देश है। कुछ विद्वानों का विचार है कि यही त्रिलिंग शब्द तेलुगु के रूप मे परिवर्तित हो गया है। प्राचीन काल में गंगा नदी के तट से लेकर उड़ीसा के कटक तक का भूभाग उत्तर कलिंग (उत्कल) नाम से व्यवहृत होता था। कटक से लेकर गंजाम जिले के मलय पर्वतो की श्रेणी पर्यंत मध्य कलिग तथा मलय पर्वतों के दक्षिण भाग से लेकर गोदावरी तक का प्रदेश दक्षिण कलिंग नाम मे पुकारा जाता था। ये ही तीन कलिंग त्रिकलिंग कहलाये। कालातर मे त्रिलिगा, त्रिलिग शब्दो में परिवर्तित होते हुए तेलुगु बना।

त्रिलिग शब्द के सम्बन्ध में एक और सिद्धान्त निकाला गया है कि गोदावरी के उत्तर मे महेन्द्राचल तक का प्रदेश आन्ध्र था। इस देश का नाम कलिग था। यह प्रदेश उत्कलिंग, मधुकलिंग और कलिंग नामक भागो में बँटा हुआ था ; अतः वह देश त्रिकलिंग कहलाया।

यूनान के भूगोलशास्त्री टालेमी ने ई० सन् १५० मे इस प्रदेश के लिए 'ट्रिलिगान' शब्द का प्रयोग किया है। इसी का परिवर्तित रूप तेलंगाना है। गंजाम जिले के पर्लाकिमिडि तालुके के मुखलिंगेश्वर मन्दिर मे प्राप्त शिलालेख मे लिखा है—

महाराजाधिराज त्रिकलिंगाधिपति·
श्रीमदनत वर्म महाराज श्चोड गंगदेव:
आकल्पं गुणधाम सोमल महादेवी मनोमानसे
हंसीयात्रिकलिंग मंडतापतेः श्रीगंगचूडामणे.

उपर्युक्त त्रिकलिंग शब्द कालातर मे विभिन्न रूपो को प्राप्त करते हुए 'त्रिलिंग', 'तेलुगु' और 'तेनुगु' के रूप में परिवर्तित हो गया है। विद्यानाथ ने (ई० सं० १३००) अपने 'प्रतापरुद्रीय' में अपने आश्रयदाता प्रतापरुद्रदेव का सम्बोधन "त्रिलिगदेश परमेश्वर" नाम से किया है।

तेलुगु के प्रसिद्ध वैयाकरण अप्पकवि ने अपने 'अप्पकवीयमु' नामक ग्रन्थ मे तनुगु और तेलुगु शब्दो की उत्पत्ति इस प्रकार बतायी है—

श्री क्षितिधर कालेश द्राक्षारामंबुलनग दनरारेडु।
त्रिक्षेत्रंबुल लिगमु लीक्षिप संज्ञनेत्रिककेक्कुन ॥

अर्थात् श्रीशैल, कालहस्ती और द्राक्षाराम नामक तीन प्रसिद्ध शवतीर्थों के कारण इस प्रदेश का नाम त्रिलिंग पडा है.

तत् त्रिलिंग निवासंबु तरुकतन
नांध्र देशंबुधात्रिलिंगाख्यमय्ये
देलुगुगुचुद्भवमु दानिवलन बोडये
वेनुक गोदरू दानिके तेलुगु तङ्।

उन तीन शवतीर्थों के कारण आन्ध्र देश 'त्रिकलिंग भूमि' कहलाया। उसी शब्द का तद्भव तेलुगु बना, वही 'तेनुगु' नाम से भी व्यवहृत हुआ।

पाश्चात्य काम्पबेल महोदय ने तेलुगु शब्द का मूलरूप त्रिलिंग माना है। डॉ० ग्रियर्सन ने तेलुगु और तेनुगु शब्दो पर विचार करते हुए यह सिद्धान्तीकरण किया है कि तेलुगु शब्द मे ही तेनुगु की उत्पत्ति हुई है।

तेलुगु भाषा की प्रशस्ति :

तेलुगु स्वरात भाषा है। इसमें स्वरप्रधान संगीत तथा वर्णप्रधान साहित्य का सुन्दर समन्वय हुआ है। यही कारण है कि इस भाषा की देशी तथा विदेशी विद्वानों ने भी बडी प्रस्तुति की है। विजयनगर साम्राज्य के अधिपति कृष्णदेव राय ने, जो संस्कृत तथा देशी भाषाओं के उद्भट विद्वान थे, तेलुगु की बड़ी प्रशंसा की है—

तेलुगदेलछन्न देशंबुतेलुगेनु
तेलुगु वल्लभुंड दलुगोकोंड
दल्लभापलदु येरुगवे माटाडि
देशभापलंदु देलुगु लेस्स ।

अर्थात् मुझसे यदि कोई यह पूछे कि तेलुगु ही श्रेष्ठ क्यो है, मैं निस्संकोच उत्तर दूँगा कि यह तेलुगु देश है, मैं तेलुगु सम्राट हूँ, तेलुगु भापा-भाषी हूँ। यही नहीं, समस्त देशी भापाओ में वार्त्तालाप करके देखियेगा तो स्वयं ज्ञात होगा कि तेलुगु ही सर्वोत्कृष्ट भाषा है ।

तेलुगु भापा के सम्बन्ध में हेनरी मारिस का कथन है—"तेलुगु अत्यन्त मधुर भाषा है । द्राविड भापाओं में तेलुगु-जैसी मधुर भाषा कोई दूसरी नहीं है। तेलुगु को प्राच्य को इटालियन भाषा कहना समुचित लगता है । तमिल इससे भी समृद्ध भाषा है, इसका साहित्य प्राचीन भी है, लेकिन स्वर-माधुर्य तथा प्रांजलता की दृष्टि से तेलुगु भाषा अनुपम है ।"

बी० एस० हलडेन महोदय ने १६५८, अप्रैल २७ के 'हिन्दू' मे तेलुगु भाषा की प्रशंसा करते हुए लिखा है—"विदेशी वस्तुओ का बहिष्कार संभव है, किन्तु विदेशी शब्दों का नही । मैं समझता हूँ कि ऐसे शब्दो की स्वीकृति के कारण ही संभवतः भारत की समस्त भापाओ मे तेलुगु ही एक ऐसी भाषा है जो अन्य भाषाओ के शब्दों को बड़ी सरलता से आत्मसात् कर सकती है । इसलिए विज्ञान, चिकित्सा, इन्जीनियरी आदि शास्त्रो के शिक्षण में इसे हिन्दी के मुकाबले मे लाया जा सकता है ।"

तेलगु भापा शब्दावली की दृष्टि से आर्य भापाओ के निकट है तो व्याकरण की दृष्टि से द्राविड भापाओं के निकट है । उत्तर और दक्षिण के मध्य मे स्थित होने के कारण तेलुगु भाषा में आर्य और द्राविड़ भापाओं की समस्त विशेषताओं का अच्छा समन्वय हुआ है । प्राचीन काल मे बहुत समय तक आन्ध्र में प्राकृत एवं संस्कृत भापाओं का आधिपत्य रहा है । यही कारण है कि तेलुगु भाषा मे साहित्य-रचना अत्यन्त विलंब के साथ हुई है । उपलब्ध तेलुगु साहित्य के आधार पर हम संपूर्ण तेलुगु वाङ्मय को छ: युगों में बाँट सकते हैं जो निम्नलिखित प्रकार हैं :—

१. अज्ञात युग ई० पू० से ई० सन् १००० वर्ष तक
२. भाषांतरीकरण युग या कवित्रय युग ई० सन् १००० से १३५० तक
३. संधि युग अथवा श्रीनाथ युग १३५० से १५०० तक
४. प्रबन्ध युग या रायल युग १५०० से १७०० तक
५. अर्वाचीन युग या संक्रांति युग १७०० से १८५० तक
६. आधुनिक युग १८५१ से आज तक ।

अज्ञात युग :

ईसवी पूर्व आन्ध्र देश पर सातवाहनो ने राज्य किया था। सातवाहन राजा आन्ध्र थे। किन्तु उन राजाओं के राज्य में आन्ध्र के साथ मैसूर तथा महाराष्ट्र के भी कतिपय भूभाग सम्मिलित थे ; अत: उन नरेशों ने अपनी शासकीय भाषा प्राकृत स्वीकार की। यही कारण है कि तेलुगु भाषा को उस युग मे राजाश्रय प्राप्त नही हुआ। सातवाहन ने प्राकृत मे गाथा सप्तशती की रचना की तो उनके दरबारी कवि गुणाढ्य ने पैशाची में बृहत्कथा का प्रणयन किया। उन दिनो मे तेलुगु का व्यवहार केवल घरो मे होता था। यत्र-तत्र तेलुगु काव्य-ग्रन्थों का सृजन हुआ भी तो धार्मिक विद्वेष के कारण वे सब ग्रन्थ या तो जला दिये गये अथवा नष्ट कर दिये गये थे। हाँ, सातवीं एवं आठवी शती के जो अनेक शिलालेख उपलब्ध हुए हैं, उनसे विदित होता है कि उस समय पद्य-गद्य तथा चंपू शैली मे भी रचनाएँ हो रही थी। उन रचनाओ के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होगा कि तेलुगु भाषा विकास के पथ पर अग्रसर हो रही थी। इनके अतिरिक्त उस काल मे अनेक प्रकार के गीत प्रचलित थे, जिनका उल्लेख पालकुरिकि सोमनाथ कवि ने (ई० सन् १६५८-१३२३) अपने काव्य ''पंडिताराध्य चरित्र'' के 'वाद प्रकरण', पृष्ठ' ४१३ मे बताया है—

पदमुलु दुम्मेद पदमुलु प्रभात
पदमुलु बर्वत पदमुलानन्द
पदमुल, शकर पदमुलु, निवालि
पदमुल, वालेशु पदमुलु, गोब्बि
पदमुलु, वेन्नेल पदमुलु, सज
वर्णन, मरि गणवर्णन पदमुलु ॥

अर्थात् गीत—भ्रमरगीत, प्रभात गीत, पर्वत गीत, आनन्द गीत, आरती गीत, शकर गीत, ज्योत्स्ना गीत, संध्या गीत, गणवर्णन गीत इत्यादि प्रचलित थे। इनके अतिरिक्त कठपुतली के गीत, नौका गीत, ढेंकली गीत, वीर गीत आदि लोकगीत तथा कुशलव कथा, ऊर्मिला देवी की निद्रा, लक्ष्मण मूर्छा, धर्मांगद चरित्र इत्यादि लोक-कथाएँ भी जनता के ज्ञानवर्द्धन और मनोरजन के साधन बनी थी।

पद्मकवि कृत 'जिनेन्द्र पुराण' इस युग की उपलब्ध कृति है। अन्य काव्य-ग्रन्थ अज्ञात ही रह गये, प्रकाश में नहीं आये। यही कारण है कि तेलुगु साहित्य के इतिहासकारो ने इस युग का नामकरण 'अज्ञात युग' किया है।

भाषांतरीकरण युग या कवित्रय युग (सन् १००१-१३५०) :

दसवीं शती तक पहुँचते-पहुँचते आन्ध्र में जैन तथा बौद्ध धर्मों का पतन होने लगा था। वैदिक धर्म के पुनरुद्धार का संकल्प दृढतर होने लगा था। वैदिक धर्म के प्रतिपादन में पुराणों की प्रमुखता थी, किन्तु साधारण जनता तथा स्त्रियों की अभिरुचि पुराणों की अपेक्षा महाभारत के प्रति अधिक थी। लोगों में यह विश्वास था कि महाभारत के श्रवण से सौ गायों के दान तथा अनेक विप्रों को नाना प्रकार की वस्तुओं के दान का फल प्राप्त होता है; अत. अपने अवकाश के क्षणों में लोग महाभारत का श्रवण किया करते थे। वैदिक धर्म का पुनरुद्धार पूर्वी चालुक्य वंशी राजाओं के समय कुमारिलभट्ट ने किया था। वैदिक धर्म के सिद्धान्त संक्षेप में यों है—१ वेद अपौरुषेय हैं, इसलिए प्रामाणिक है। २. वेदों द्वारा प्रतिपादित यज्ञ-यागादि के आचरण से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। ३. उपनिषदों का श्रवण मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग-दर्शक है। ४. चतुर्विध वर्ण एवं आश्रम मानव-समाज के आचार-धर्म-सम्बन्धी नियम है तथा ५. ब्रह्मा, विष्णु और ईश्वर क्रमश. इस जगत की सृष्टि, स्थिति एवं लय के कारणभूत है।

उपर्युक्त सिद्धान्तों का प्रभाव राजा और प्रजा पर ऐसा पड़ा कि प्रत्येक मांगलिक कार्य के अवसर पर पुराणों का श्रवण करना तथा महाभारत की प्रतियाँ लिखवा कर बाँटना एक परिपाटी-सी हो गयी। किन्तु कठिनाई यह थी कि पुराण और महाभारत संस्कृत भाषा में ही उपलब्ध थे; सर्वसाधारण प्रजा उनका पूर्ण लाभ उठा नही सकती थी। यदि उपर्युक्त ग्रन्थ देशी भाषा तेलुगु में होते तो लोग स्वयं पढ़ कर उनका आनन्द उठाते। इसी अभिप्राय से प्रेरित होकर सर्वप्रथम बौद्धाचारों ने अपने धार्मिक ग्रन्थों का देशी भाषाओं में रूपांतर कराया और स्वयं भी उन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना देशी भाषाओं में की। इस भाषांतरीकरण ने जनता के हृदयों को अधिक आकर्षित किया और धर्म के प्रचार में यह कार्य विशेष सहायक सिद्ध हुआ। ऐसी स्थिति में वैदिक धर्म के 'पुनरुत्थान' के हेतु 'पंचमवेद' नाम से विख्यात महाभारत के भाषांतरी-करण की आवश्यकता का अनुभव चालुक्य नरेश राजराज नरेन्द्र ने किया। उन्होंने अपने दरबारी कवि एवं राजपुरोहित नन्नय भट्ट को आदेश दिया कि व्यासकृत महाभारत का तेलुगु में अनुवाद करे। नन्नय ने अनुवाद का कार्य प्रारंभ किया। आदि पर्व और सभा पर्वों का अनुवाद समाप्त करके वन पर्व का अनुवाद कर ही रहे थे कि उनकी अकाल मृत्यु हो गयी। यद्यपि नन्नय ने अनुवाद किया, तथापि उनका ग्रन्थ मौलिकता को लिये हुए हैं। नन्नय की शैली तत्सम प्रधान है। उसमें कोमलता, सरसता एवं माधुर्य का सुन्दर समन्वय हुआ है। उनकी कविता सागर की भाँति अगम, गभीर तथा

अर्थपूरक है। उनकी शैलीगत गभीरता ने वर्ण्यविषय और पात्रों के चित्रण में चेतना, तेज एवं प्राण-प्रतिष्ठा की है। नन्नय के काव्य मे यत्र-तत्र जो मौलिक उद्भावनाएँ मिलती हैं, वे अत्यन्त हृदयग्राही तथा औचित्य के पोषण में समर्थ हैं। मुख्यत सौगंधिकाहरण के प्रसंग मे हनुमान और भीमसेन का सवाद, बकासुर-वध के वृत्तांत मे ब्राह्मण और ब्राह्मणी का वार्तालाप, रूरु और प्रमद्वरा वृत्तांत, उदन्त की कहानी, शकुन्तला की गाथा, नलोपाख्यान, ययाति वृत्तान्त आदि बड़े सुन्दर बन पड़े हैं। अर्जुन की तीर्थयात्रा के प्रसंग में नन्नय ने आन्ध्र के वेंगी प्रदेश का अति सजीव एव मनोरम चित्र अंकित किया है। उनकी वैयक्तिक विलक्षणता और सरस अभिरुचियों का प्रभाव स्पष्ट रूप मे उनकी कविता मे परिलक्षित होता है। इन विशेषताओं के साथ वैदिक धर्म का उन्होने अद्भुत प्रतिपादन किया है।

नन्नय महाकवि ही नहीं थे अपितु वैयाकरणी भी थे। उन्होंने 'आन्ध्र शब्द चिन्तामणि' नाम से एक तेलुगु प्रथम व्याकरण ग्रन्थ संस्कृत भाषा में प्रस्तुत किया है। तेलुगु भाषा पर अनुशासन करके वे वागानुशासक (वाणी पर अनुशासन करने वाले) के रूप मे विख्यात हुए हैं।

नन्नय के दो शताब्दियो के पश्चात् महाकवि तिकन्ना ने वन पर्व के शेष भाग को अधूरा ही छोड शेष पर्वों का अनुवाद पूरा किया। ये चोडवंशी राजा मनुमसिद्धि के दरबारी कवि एवं महामंत्री थे। काव्य-रचना मे तिकन्ना ने अपने समय तक प्रचलित पुराण एवं प्रबंध काव्यों के सम्प्रदायों का समन्वय करके नवीन रीति का प्रादुर्भाव किया। साथ ही दृश्य काव्य की शैली मे वार्त्तालाप तदनुकूल चरित्र-चित्रण भी प्रस्तुत किया है। ये संस्कृत और तेलुगु के प्रकाड पण्डित थे ही, साथ ही राजनीति और अर्थशास्त्र के पारंगत भी थे। तिकन्ना ने अपनी कविता का उद्देश्य यों बताया है—पुष्पों की पखुडियों मे गन्ध देनेवाले पराग की भाँति अर्थपूर्ण सुन्दर शब्दो से हार गूँथ, रस-भरित भावों को प्रकट करना चाहिए। मुहावरेदार शैली में बाधा डालनेवाले तत्सम शब्दों का प्रयोग न हो और छोटे-छोटे शब्दो मे मनोहर शैली में कविता करनी चाहिए।

तिकन्ना ने मूल काव्य को कहीं संक्षिप्त और कहीं विस्तृत करके स्वतंत्रता का निर्वाह किया है। जैसे यदि भगवद्गीता को संक्षिप्त किया तो विराट पर्व का विस्तार किया। कृष्ण का दूत कार्य, द्रौपदी और कीचक का प्रसग बहुत ही रमणीय है। कथा-सदर्भ के अनुरूप रसपरिपाक की दृष्टि से पात्रों में भावोद्रेक की अभिव्यक्ति कराने मे तिकन्ना को असाधारण सफलता प्राप्त हुई है। भाषा-शैली काव्य के लक्षणों के निर्वाह मे ये अनुपम हैं। अत. ये तेलुगु साहित्य-रूपी आकाश के सूर्य माने जाते हैं।

तिक्कना की अन्य कृतियों मे निर्वचनोत्तर रामायण उल्लेखनीय है। तिक्कना के पश्चात् वरप्रिगडा ने वन पर्व का शेषाश पूरा किया। इस प्रकार तीन कवियो द्वारा इस महाकाव्य का प्रणयन समाप्त हुआ। ये तीनो कवि 'कवित्रय' नाम से विख्यात है। यह महाभारत आन्ध्र मे ऐसा लोकप्रिय हुआ है कि इसके पीछे एक कहावत ही चल पड़ी है—"विन्टे महाभारतम् विनालि, तिंटे गारेलु तिनालि"। अर्थात् सुनना है तो महाभारत ही सुने, खाना हो तो बड़े ही खावे।

इस युग के अन्य कवियों मे वेमुलवाड भीम कवि, नन्नेचोड़ देव, मंत्री भास्कर, गोनबुद्धारेड्डी, नाचन सोम आदि विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। भास्कर रामायण और रंगनाथ रामायण इसी युग की देन है। इन दोनो रामायणो मे वाल्मीकि रामायण से भिन्न अनेक ऐसे वृत्तात और प्रसंग वर्णित है जो काव्य के औचित्य के पोषण मे तथा रमणीयता लाने मे सहायक सिद्ध हुए है। इनके अतिरिक्त अथर्वणाचार्य केतना, विन्नकोट पेद्दना आदि रीति शास्त्रकार भी हुए, *जिन्होंने क्रमश. अथर्वण छन्द, आन्ध्र भाषा-भूषणमु, काव्यालंकार चूडामणि* आदि उल्लेखनीय है।

इस युग के प्रायः सभी पुराणों का तेलुगु मे काव्यानुवाद हुआ है। मारन कवि ने मार्कण्डेय पुराण लिखा तो मडिकि सिगना ने पद्म पुराण, अन्य कवियो ने नारसिंह पुराण, वराह पुराण, गरुड़ पुराण, विष्णु पुराण, लिग पुराण, वायु पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, भविष्योत्तर पुराण आदि का स्वतंत्रानुवाद किया है। उपर्युक्त कारणो से यह युग पुराण युग भी कहलाता है। पुराण और रीति ग्रन्थों के अतिरिक्त पावुलूरि मल्लना का गणितशास्त्र, केतना कृत विज्ञानेश्वरीय (धर्म-शास्त्र), बद्देना कृत नीति-शास्त्र, गणपाराध्य कृत स्वर-शास्त्र (संगीतशास्त्र), अप्पन मत्री द्वारा विरचित वैद्य-शास्त्र भी गणनीय है।

नन्नेचोड़ ने 'कुमार संभव' नामक प्रबन्ध काव्य की सृष्टि करके शैव वाङ्मय की रचना का श्रीगणेश किया, तदुपरात मल्लिकार्जुन पंडिताराध्य पाल्कुरिकि सोमनाथ आदि ने शैव साहित्य को समृद्ध किया। सोमनाथ ने वीर-शैव मत को वैदिक मत के अनुरूप बनाने के निमित्त अथक परिश्रम किया और उस संप्रदाय के अनुसार श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, काव्य, स्तुति इत्यादि की रचना की। वे ही चतुर्वेद सार, अनुभव सार, रुद्र भाष्य, बसव पुराण, पण्डिताराध्य चरित्र, वृषाधिप शतक इत्यादि हैं। वीरशैव धर्म में काव्यात्मक प्राण-प्रतिष्ठा करने का श्रेय सोमनाथ को प्राप्त है। शतक साहित्य का सृजन भी इस युग में प्रारम्भ हुआ जो भविष्य मे जाकर खूब पल्लवित एवं पुष्पित हुआ।

संधि युग अथवा श्रीनाथ युग :

इस युग में भाषातरीकरण युग की प्रवृत्तियों के साथ परवर्ती युग की काव्यगत विशेषताओं का समन्वय पाया जाता है। दोनों युगों की प्रवृत्तियों का संधि-स्थल होने के कारण इस युग का नामकरण 'सन्धि युग' किया गया है। इस युग का प्रतिनिधित्व श्रीनाथ ने किया था। श्रीनाथ ने जो परम्परा चलायी, वह बहुत समय तक अविच्छिन्न रूप मे चलती रही। उस युग का पूर्णरूपेण प्रतिनिधित्व करने के कारण युग का नामकरण 'श्रीनाथ युग' किया गया है। यों तो इस युग की पृष्ठभूमि कवित्रय युग मे तैयार हो गयी थी, नन्नय द्वारा प्रवर्तित भाषातरीकरण पद्धति, तिक्कना द्वारा चालित प्रबन्ध रीति, नायन सोम का नवीन गुण-प्रदर्शन, परवर्ती प्रबन्ध युग की काव्यात्मक शैलियो का समावेश भी इस युग मे हो गया।

यों तो इस युग के प्रतिभासंपन्न महाकवियों में बम्मेर, पोतना और श्रीनाथ के नाम आदर के साथ लिये जा सकते है। किन्तु इनके अतिरिक्त अनेक ऐसे प्रतिभाशाली कवि हुए है जिन लोगो ने अपनी अनुपम कृतियो द्वारा तेलुगु काव्य साहित्य के भण्डार को समृद्ध किया। इस युग की उल्लेखनीय कृतियों मे मडिकि सिंगना कृत 'वसिष्ठपुराण' और 'भागवत का दशम स्कन्ध', जक्कय कवि कृत 'विक्रमार्क चरित्र', अन्नतामात्य के 'भोजराजीयमु, रसाभरणमु तथा अनंतुनि चंदस्सु', गोरना मंत्री द्वारा विरचित हरिश्चन्द्रोपाख्यान और नवनाथ चरित्र, तिशशंक कोम्मना प्रणीत, शिव लीला विलासमु, दूबगूट नारायण कवि का पचतन्त्रमु, वेन्नेलकंटि सूरना का विष्णु पुराण, नन्दि मल्लया प्रणीत प्रबोध चन्द्रोदयमु, घंट सिंगय्या कृत वराह पुराण, पिल्ललमर्रि पिन-वीरना प्रणीत जेमिनी भारतमु, नारदीय पुराणमु, श्रृङ्गार शाकुन्तलमु और अवतार दर्पणमु, दग्गुपल्लि दुग्गय्या के नाचिकेतोपाख्यान तथा काचीपुर महात्म्यमु विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन काव्यों ने इस युग की महत्ता बढायी, किन्तु इस युग के साहित्यिक वैभव का परिचय पोतना तथा श्रीनाथ की कृतियों द्वारा मिलता है।

पोतना महाकवि ही नही अपितु महान भक्त भी थे। इन्होंने कृषि-कार्य के साथ काव्य सर्जन भी किया है। इन्होंने श्रीमद्भगवत का तेलुगु में स्वतंत्रानुवाद किया और उसे अपने आराध्यदेव श्रीरामचन्द्र के चरणों में समर्पित किया। कवि ने अपने काव्य के सृजन की प्रेरणा भगवान रामचन्द्र से प्राप्त की। इस काव्य का प्रणयन कवि ने भवसागर से मुक्ति पाने हेतु किया है—

"पलिकेडिदि भागवतमट
पन्निकिचेडुवाडु रामभद्रुडट
ने पलिकिन भवहर मगुनट
पलिकेद वेरेडुगाथ पलुकगनेल ।"

अर्थात्—"मै भगवान की सर्जना कर रहा हूँ । भगवान रामचन्द्रजी स्वयं मेरे मुँह मे बुलवा रहे है । इस ग्रन्थ की रचना द्वारा मैं भवसागर से पार पा सकता हूँ; अत मैं किसी दूसरे काव्य या प्रणयन क्यों करूं ?"

पोतना भगवत भक्ति प्रधान काव्य है । इसमें भक्ति और वेदांत संबधी अनेक आख्यान वर्णित है जिनमे प्रह्लाद चरित, वामन चरित, शृङ्गार गजेन्द्र मोक्ष, नरकासुर वध, कुचेलोपाख्यान, ध्रुवोपाख्यान, अवरीपोपाख्यान और रुक्मिणी-परिणय विशेष लोकप्रिय है । ये आख्यान महाकाव्य की शृंखला की कडियाँ होते हुए भी स्वतंत्र अथवा भिन्न खण्डकाव्यों के रूप में बन पडे है । पोतना की कविता प्रांजल, ललित एवं मधुर है । इस काव्य मे चमत्कार वैचित्र्य और उक्ति वैचित्र्य दृष्टव्य है ।

कवि सार्वभौम श्रीनाथ इस युग की सबसे बडी विभूति थे । तत्कालीन सभी राजदरबारों मे जाकर कनकाभिषेक का सौभाग्य प्राप्त किया । इनके वामपाद में गण्डपेण्डेर (स्वर्ण घंटिका) पहनाकर सम्राटो ने अपना अहोभाग्य माना । धन, कनक, वस्तु, वाहन, अग्रहार उपाधियाँ देकर इनका सत्कार किया । ये रेड्डी राजाओं के दरबारी कवि थे और वहाँ शिक्षाधिकारी के पद पर नियुक्त थे । अपने जीवन-काल मे इस महाकवि ने जैसे ऐहिक भोग-विलासों का अनुभव किया, वैसा अन्य कवियों के लिए दुर्लभ था । तेलुगु के मर्मज्ञ विद्वान चिलुकूरि वीर भद्रराव ने एक स्थान पर लिखा है— "श्रीनाथ का जीवन-चरित्र प्रस्तुत करने का अभिप्राय है, १५वीं शती के आन्ध्र देश का इतिहास लिखना ।" इन्होंने एक दर्जन से अधिक काव्य-ग्रन्थो का सृजन किया है, जिनमे 'शृङ्गार नैषधमु', 'काशी खण्ड', 'भीम खण्ड', 'पलनाटि वीर चरित्र', 'शिवरात्रि महात्म्यमु', 'हरविलास' मुख्य है । तेलुगु कविता को प्रौढता प्रदान करने का श्रेय श्रीनाथ को प्राप्त है । तेलुगु वाङ्मय की विविध शाखाओं को जन्म दिया तथा भाषा, भाव, शैली, छन्द, अलकार आदि की दृष्टि से भी समृद्ध बनाया । चाटूक्तियों के कहने मे भी ये अत्यंत पटु थे ।

'सिरिगलवानिकि जेल्लुनु' नामक पद्य मे कवि ने अपने आराध्य पर अच्छा व्यंग्य कसा हे । इसमें उनकी विनोदप्रियता का भी परिचय मिलता है । एक बार कवि पहाड़ी प्रदेश मे यात्रा कर रहे थे । उन्हे वडी प्यास लगी । आराध्य देव का स्मरण किया—हे परमेश्वर, विष्णु जैसे धनी व्यक्ति चाहे सोलह हजार नारियों के साथ विवाह कर सकते हैं, तुम तो फकीर हो, तुम्हें दो

पत्नियों की क्या आवश्यकता है ? पार्वती तो ठीक है, गंगाजी को छोड़िये ना।'

इस युग के सन्त कवियों में वेमना का अनुपम स्थान है। सरस व मधुर लोकभाषा में वेमना ने जो उद्गार व्यक्त किये है वे ज्ञान, भक्ति, सदाचार और नीति से ओतप्रोत है। इनकी सूक्तियाँ लोकोक्तियों की भाँति मनोहर होती है। ये आशु कवि थे। अपने अनुभवजन्य ज्ञान को इन्होंने तेलुगु के सरल छन्द 'कन्द', 'आटवेलदि' तथा 'तेज गीत' में अभिव्यक्त किया है। मूर्ति-पूजा, जप-तप, उपवास आदि बाह्याडबरों की कटु आलोचना की। ये निर्गुणोपासक थे और इनकी सामाजिक भावना विद्रोहात्मक थी। इनमे और कबीर मे पर्याप्त साम्य पाया जाता है। दुर्जन और सज्जन व्यक्ति का परिचय व्यवहार मे आनेवाली वस्तुओं के साथ साम्य बिठाते हुए कराते हैं— "अल्पुडेपुडु पल्कु नाडबरमुगानु···" अर्थात्, "दुर्जन व्यक्ति सदा गप्पे हाँका करता है तो सज्जन सर्वदा मीठी बातें करते हैं—सत्य ही तो है—काँसे की तरह कनक (स्वर्ण) नही बज सकता।"

वेमना साधक भी थे। अन्तिम समय मे ब्रह्मज्ञानी हो वस्त्र धारण को भी त्याग चुके थे। उनका विचार है कि मानव जन्म के समय न वस्त्र पहन कर उत्पन्न होता है और न मृत्यु के समय वस्त्र धारण कर जाता है। ऐसी स्थिति मे इस मध्य काल में वस्त्र धारण करना परिहास की बात तो नही।

इस युग मे तेलुगु ग्रन्थों के साथ संस्कृत मे भी उत्तम कृतियाँ प्रस्तुत हुई। इस युग के राजा केवल उत्तम शासक ही नहीं थे अपितु उच्चकोटि के विद्वान, आश्रयदाता और कवि भी थे। काटय वेमा रेड्डी ने कालिदास के नाटक-त्रय की व्याख्या लिखी। सर्वज्ञ सिंगम भूपति ने रसार्णव सुधाकर की व्याख्या लिखी तो वेदुकोमटि वेमा रेड्डी ने साहित्य चिंतामणि की रचना की। नाटकों का तेलुगु अनुवाद भी इस युग मे प्रारम्भ हुआ। काव्य मे लौकिक पक्ष के साथ आध्यात्मिक पक्ष भी कविता वैभव के साथ प्रस्फुटित हुआ। परिणामस्वरूप वेमना-जैसे सन्त कवि का इस युग मे प्रादुर्भाव हुआ। शतकों की रचना विपुल मात्रा में हुई। रीति ग्रन्थ भी अनेक आये। अन्यमाचार्य ने पद साहित्य का जन्म दिया और वे पद साहित्य के प्रवर्तक हुए, परवर्ती युगों पर उनका व्यापक प्रभाव पड़ा।

प्रबन्ध युग या रायल-युग (ई० सन् १५०१-१७००)

तेलुगु साहित्य के इतिहास में यह युग स्वर्ण युग माना जाता है। इस काल मे उच्चकोटि के असंख्य प्रबन्ध काव्यों की सर्जना हुई जो काव्य-कला की दृष्टि से उत्कृष्ट ग्रन्थ माने जाते हैं। विजयनगर के सम्राट कृष्णदेव ने न

केवल कवियों को आश्रय दिया, बल्कि श्रेष्ठ प्रबन्ध काव्य की रचना करके इस युग का प्रतिनिधित्व भी किया। अतः यह युग काव्यगत विशेषताओं के कारण प्रबन्ध-युग कहलाता है तो युग प्रवर्तक के नाम पर रायल युग भी। संस्कृत में दण्डी ने 'सर्ग बन्ध' नामक महाकाव्य के जो लक्षण बताते हैं, उन्हीं को तेलुगु के रीति-शास्त्रकारों ने प्रबन्ध-काव्य के लक्षणों के रूप में स्वीकार किया है। तदनुसार प्रबन्ध-काव्य के निम्नलिखित लक्षण निर्धारित किये गये हैं—

"संध्या सूर्येन्दु रजनी प्रदोपध्वात वासरा.
प्रातर्मध्याह्न मृगया शैलर्तु वन सागरा.
संभोग विप्रलभी च मुनि स्वर्ग पुराध्वरा.
रण प्रयणोपम मंत्र पुत्रोदयादयः
वर्णनीया यथा योग सागोपागा अभी इह।"

ये प्रबन्ध-काव्य के अष्टादश वर्णन माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त प्रबन्ध-काव्य की कथावस्तु सुप्रसिद्ध हो, धीरोदात्तादि नायकों में से एक काव्य-नायक हो, शृंगार रस प्रधान हो तथा अन्य रस आंगिक हों। काव्य मौलिक हो, रूपान्तर न हो। लाक्षणिक अथवा आलंकारिक शैली में इसकी रचना हो—ये प्रबन्ध-काव्य के अन्य लक्षण हैं। इष्टदेवता की प्रार्थना, सुकवि-स्तुति, कृतिभर्ता के गुणों का वर्णन इत्यादि अन्य आवश्यक उपांग हैं।

तेलुगु के प्रायः सभी प्रबन्ध काव्य चंपू हैं। प्रबन्ध काव्यों की अधिकता होने पर भी इस युग में रीति ग्रन्थ, द्विपद काव्य, द्वर्थि काव्य, त्र्यर्थि काव्य, ठेठ तेलुगु काव्य, शतक आदि पर्याप्त मात्रा में रचे गये। परन्तु प्रबन्ध काव्य दृश्य, श्रव्य तथा मधुर काव्यों के गुणों से युक्त हो, समग्र रूप में प्रस्तुत हुए।

प्रबन्ध-काव्यों के प्रेरणा-स्रोत सम्राट कृष्णदेव राय थे। इनके दरबार में अष्ट दिग्गज नाम से आठ महाकवि थे। वे महाकवि हैं—अल्लसानि पेद्दना, नंदि तिम्मना, अय्यलराजु रामभद्रकवि, धूर्जटि, मादयगारि मल्लना, पिंगलि सूरना, रामराजभूषण तथा तेनालि रामकृष्ण कवि। कृष्णदेवराय का सभा-भवन 'भुवन-विजय' नाम से विख्यात था, जहाँ सदा पंडित, आचार्य, कवि तथा अन्य कलाकारों की गोष्ठियाँ हुआ करती थीं। जिनमें शास्त्र-चर्चा, कविता पाठ, समस्यापूर्ति, आशु कविता, अवधान कविता मुख्य थीं। उस सभा-भवन में तेलुगु भारती की प्रतिनिधि कविता सुमनों द्वारा ऐसी आराधना होती थी कि स्वयं कवियों के साथ सरस प्रेक्षकों का भी शरीर पुलकित उठता था।

कृष्णदेवराय संस्कृत के उद्भट विद्वान तो थे ही, साथ ही वे तेलुगु के मर्मज्ञ कवि भी थे। संस्कृत में आपने मदालसा चरित्र, सत्यवधू परिणय, सकल-कथा सार संग्रह, ज्ञान चिंतामणि, जाम्बवती परिणय, रसमंजरी आदि काव्य एवं नाटकों का प्रणयन किया। तेलुगु में 'आमुक्त माल्यदा" नामक एक प्रबन्ध-काव्य की सृष्टि की जो 'विष्णुचित्तीयमु' नाम से विख्यात है। पेरियाल्वार का नाम ही विष्णुचित्त है। विष्णुचित्त द्वारा पालित गोदा देवी का वृत्तांत आमुक्त माल्यदा में वर्णित है जो वैष्णव धर्म का प्रतिपादन एवं उसकी उत्कृष्टता को प्रमाणित करने वाला काव्य ग्रन्थ है। इसमें विशिष्टाद्वैत मत का सुन्दर प्रतिपादन हुआ है। तेलुगु वाङ्मय के लिए यह काव्य अलंकार-प्राय है।

अल्लसानि पेद्दना ने "स्वारोचिष मनुसंभव" नामांतर मनुचरित्र का सृजन किया। इस काव्य पर मुग्ध हो सम्राट कृष्णदेव राय ने पेद्दना को 'आन्ध्र-कविता पितामह' नामक उपाधि से विभूषित किया। उनके वामपाद में गण्डपेण्डेर नामक स्वर्णकंकण पहनाया तथा कवि की पालकी तक उठायी थी।

मधुर कविता की रचना में नन्दि तिम्मना बेजोड़ थे। हरिवंश पुराण से कथावस्तु ग्रहण कर आपने "पारिजातापहरण" नाम से शृंगार रस प्रधान काव्य की सृष्टि की। पदलालित्य और अर्थ वैचित्र्य की दृष्टि से यह काव्य अनुपम कहा जा सकता है। अभिमानिनी सत्यभामा का चरित्र मनोहर शैली में वर्णित है। वस्तु तथा काव्यगत विशेषताओं की दृष्टि से इसकी समता कर सकने वाले ग्रन्थ भारतीय भाषाओं में अत्यल्प है।

पिंगलि सूरना ने कलापूर्णोदय, प्रभावती प्रद्युम्नमु तथा राघव पाण्डवीयमु नामक तीन प्रबन्ध-काव्य लिखे है, जिनमें कलापूर्णोदयमु हमें कामेडी आफ् एर्रर्स का स्मरण दिलाता है। तेलुगु भाषा के मर्मज्ञ विद्वान इसे काव्योपन्यास मानते हैं। राघव पाण्डवीयमु द्वयर्थि काव्य है। इसमें एक साथ रामायण तथा महाभारत की कथाएँ वर्णित है। रामराज भूषण ने भी हरिश्चन्द्र नलोपाख्यान नाम से एक द्वयर्थि काव्य लिखा है। उसमें हरिश्चन्द्र तथा नल के वृत्तांत वर्णित हैं। इनका 'वस्तु चरित्र' तेलुगु का उत्कृष्ट प्रबन्ध-काव्य है। इस युग के अन्य विशिष्ट काव्यों में तेनालि रामकृष्ण कवि कृत पांडुरंग महात्म्यमु तथा उद्भटाराध्य चरित्र, धूर्जटी का कालहस्ती महात्म्यमु, मोल्ला कृत रामायण, राधा माधव कवि कृत राधामाधवमु, मादयगारि मल्लना प्रणीत राजशेखर चरित्र, अय्यलराजु रामभद्र कृत "रामाभ्युदयमु" गणनीय हैं। रीति ग्रन्थ, शतक, पद, यक्षगान आदि काव्य की अन्य नवीन विधाओं का उद्भव एवं विकास भी इस युग में हुआ है।

अर्वाचीन युग या संक्रांतिक युग (ई० सन् १७८१-१८५०) :

विजयनगर साम्राज्य के पतन के पश्चात् वह साम्राज्य अनेक भागों में विभक्त हुआ। छोटे-छोटे सामन्त भी उन भू-भागों के स्वामी बन बैठे। ऐसे संक्रांतिक काल में तेलुगु कविता मधुरा, तंजाऊर, पुदुक्कोटा, पिठापुरम, बोब्बिलि, विजयनगरम (विशाख जिला), चन्द्रगिरि, नंद्याल, पेनुगोंडा आदि केन्द्रों में पल्लवित होने लगी। कुछ विद्वानों का यहाँ तक विचार है कि इस युग में अन्य युगों की समता में उल्लेखनीय साहित्य का सृजन नहीं हुआ है। अतः इसका नामकरण क्षीण-युग करना अधिक समीचीन होगा। परन्तु इस युग मे भी तंजाऊर, मदुरै, विजयनगरम, मैसूर आदि राज्यों मे जो साहित्य सृजन हुआ है, वह कम महत्वपूर्ण नहीं है। तंजाऊर के राजा रघुनाथ राय ने कृष्णदेवराय की भाँति अनेक कवि, आचार्य एवं कलाकारों को आश्रय देकर तेलुगु वाङ्मय के विकास मे स्पृहणीय योगदान दिया है। उन्होंने स्वय भी अनेक काव्य लिखे है। उनके पश्चात् उनके पुत्र विजयराघव नायक ने तथा महाराष्ट्र के शासकों ने तंजाऊर के दरबार में तेलुगु साहित्य के सृजन मे विशेष प्रोत्साहन दिया है। इस काल मे पसुपुलेटि रंगाजम्मा, मुद्दुपलनि आदि उच्च कोटि की कवयित्रियाँ भी हुई है।

इस युग की उल्लेखनीय कृतियों में रघुनाथाभ्युदयमु, मन्नारुदास विलासमु, उषा परिणयमु, विप्रनारायण चरित्रमु, सत्यभामा स्वांतनमु, राधिका स्वांतनमु, रुक्मिणी परिणयमु, राम विलासमु, कविजनरंजनमु, अनिरुद्ध चरित्र, गोपीनाथ रामायणमु, भारताभ्युदयमु, शंकरविजयमु, आन्ध्र भाषार्णवमु, राजगोपाल विलासमु, चन्द्रालोकमु, गंगा गौरी संवादमु विलासमु, विष्णु-पुराण, हालास्यमहात्म्यमु, श्रीरंगमहात्म्यमु, सारंगधर चरित्र, अहल्या संक्रंदनमु, चित्रकूट महात्म्यमु, चन्द्ररेखा विलापमु, नीला सुन्दरी परिणयमु, उत्तराय चरितमु आदि प्रसिद्ध है।

रीतिशास्त्र, यक्षगान, पद, द्विपद, काव्य, नाटक, दूषणग्रन्थ, कोश, व्याकरण इत्यादि विभिन्न प्रकार की रचनाएँ सैकड़ों नहीं बल्कि हजारों की संख्या मे रची गयी हैं, जिनका उल्लेख मात्र करना भी संभव नहीं है।

आधुनिक युग (ई० सन् १८५१ से आज तक) :

तेलुगु वाङ्मय के आधुनिक युग का श्रीगणेश उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में हुआ। यह समय भारतीय साहित्य, इतिहास और समाज मे भी अत्यंत महत्वपूर्ण एवं परिवर्तनशील रहा है। इस युग की समस्त प्रवृत्तियों तथा परिस्थितियों का प्रभाव तेलुगु साहित्य पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। विश्व-विद्यालयों की स्थापना के साथ ही साथ भारतीय विद्यार्थियों ने अंग्रेजी

साहित्य का अध्ययन करना प्रारभ किया। गद्य के विकास के साथ अन्य अनेक नयी विधाओं का जन्म हुआ। परवस्तु चिन्नयसूरि ने बालव्याकरण नाम से तेलुगु का एक प्रामाणिक व्याकरण प्रस्तुत किया। तेलुगु भाषा के स्वरूप का निर्धारण किया और साथ ही नीति चन्द्रिका की रचना करके प्रामाणिक गद्य का भी सूत्रपात किया। व्याकरण के नियमों से आबद्ध भाषा को मुक्ति दिलाने के हेतु गिडुगु राममूर्ति पंतुलु ने व्यावहारिक भाषा नाम से तेलुगु की लोकभाषा को प्रचलित किया तो पंडित वीरेशलिंगम पंतुलु तथा गुरजाड अप्पाराव ने इस लोक भाषा में रचनाएँ करके इस आन्दोलन को बल प्रदान किया। पंतुलु ने साहित्य का इतिहास, नाटक, जीवनी, समालोचना, प्रहसन, आत्मकथा, निबंध, उपन्यास, कहानी, एकांकी आदि की रचना तो की, साथ ही पत्र-पत्रिकाएँ चलाकर तथा पुरानी पांडुलिपियों का संशोधन करके उनके प्रकाशन द्वारा भी तेलुगु वाङ्मय की श्रीवृद्धि में असाधारण योगदान दिया है।

राष्ट्रीय कविता :

गुरजाड अप्पाराव ने परम्परागत काव्य-रीतियों के विरुद्ध नयी शैली, नयी वस्तु और नयी रीतियों का जन्म दिया तथा राष्ट्रीय कविता का प्रणयन किया। 'देश भक्ति' में उन्होंने राष्ट्रीय भावना ध्वनित की है—

"देशमुनु प्रेमिंचुमन्ना, मंचियन्नदि प्रेमिंचुन्ना"'।
देशमंटे मट्टिकादोय, देशमंटे मनुष्युलोय"'॥

हे भाई, देश के साथ प्यार करो, अच्छाई को बढ़ाओ, देश के माने मिट्टी नहीं, देश के माने मानव है।

कविता का लक्ष्य उन्होंने देश-प्रेम बताया है—

आकुलदुन अणगिमनगि कवित कोयिल पलुक वले नोय।
पलुकुलनु विनि देशमदभिमानमुलु मोलकेत्त वलेनोय॥

अर्थात् पत्तों की आड़ में छिपे रहकर कविता रूपी कोयल बोले, उस वाणी को सुनकर देश-प्रेम की भावना जाग्रत हो उठे।

रायप्रोलु सुब्बाराव ने राष्ट्रीय कविता के साथ भाव-कविता का सूत्रपात किया। यह परम्परा बहुत समय तक अविच्छिन्न चलती रही। प्राचीन भारत की गरिमा का भव्य चित्रण इनकी कविता की विशेषता है। उसी गरिमा का गान किया है रायप्रोलु ने—

वेदशाखलु वेलसे निच्चट
अदि काव्य वनरे निच्चट

अर्थात्—वेद की शाखाएँ यही पर फूट निकली। आदि काव्य का प्रणयन इस भूमि पर हुआ है। राष्ट्रीय कविता का पोषण करने वालो मे कवि सम्राट विश्वनाथ सत्यनारायण, दुव्वूरि रामिरेड्डी, अव्वूरि रामकृष्णराव, कोडालि मुब्बाराव, अडवि बापिराजु, वेदुल सत्यनारायण, जामुवा तथा तुम्मल मीतारामर्मूति चौधरी के नाम अविस्मरणीय है।

भाव कविता :

भाव कविता हिन्दी की छायावादी कविता के सदृश होती है। यह कविता आत्मपरक होती है। लाक्षणिक प्रयोग, भाषा मे वक्रता, प्राकृतिक आकर्षण, गेयात्मकता, प्राकृतिक उपकरणों में मानवीकरण, प्राचीन काव्य संप्रदायों के विरुद्ध विद्रोह इस कविता की मुख्य विशेषताएँ हैं। इस कविता में कवि की अनुभूति अनन्यारोपित, तीव्र एवं स्वाश्रय होती है। भाव-सौन्दर्य तथा रीति-मौन्दर्य इम कविता की अन्य प्रवृत्तियाँ है। भाव कवि अपने वाछित मनोधर्म के अनुरूप भाव-तीव्रता का आराधक रहा है; अत अपने मनोधर्म को प्रतिबिंबित करने वाली ऐमी कविता का नामकरण उमने 'भाव कविता' किया है। पूर्वापर घटनाओं से मुक्त हो केवल किमी एक भाव का चित्रण करने वाली गेय कविता भाव-गीत कहलाती है। यही हिन्दी में गीत काव्य से विख्यात है। भाव कविता का शुभारम्भ रायप्रोलु ने किया किन्तु इसे मार्दव एवं प्रौढता प्रदान करने का श्रेय श्री देवुलपल्लि वेंकट कृष्ण शास्त्री को प्राप्त है। भाव कवि आकांक्षा करता है—

सच्चिदानन्द कल्याण सदनमयिन
यी मनोहर जगतिकि नेगुदेंचि
प्रेमलक्ष्मिनि आराधिपवेमि यकट !

अर्थात्—यह मनोहर जगत् मच्चिदानन्द कल्याण का सदन है। इसमें जन्म धारण कर हे कवि, तुम प्रेम-लक्ष्मी की आराधना क्यों नही करते।

देवुलपल्लि ने अपने प्रेम की व्याख्या कैसी अनूठी उक्तियों में की है—

प्रेयदिकि लेदु शरीरमु
लेदु मेनु ना तीयनि प्रेमकेनि
कलदे एडबाटिक माकु।

अर्थात—मेरी प्रेयमी की कोई देह नही है, मेरे मधुर प्रेम का भी शरीर नही है। फिर भला हम दोनों का वियोग ही क्यो होगा.।

इम कविता को पुष्ट करने वालों में मल्लवरपु विश्वेश्वरराव अब्बूरि, नायनि सुब्बाराव, स्वामी शिवशंकर शास्त्री, नंडूरि सुब्बाराव के नाम गणनीय

है। नडूरि ने 'एकि पाटलु' नाम से जो गीत प्रस्तुत किये है वे तेलुगु काव्य की अनुपम निधियाँ है।

अभ्युदय कविता :

भाव कविता के विरुद्ध प्रतिक्रियास्वरूप जिस काव्य का सृजन हुआ है, वह अभ्युदय कविता नाम से विख्यात है। भाव कवि ने अपनी भावात्मक अनुभूति को एक सीमा तक व्यक्त करने मे सफलता पायी। किन्तु वह सर्वांगीण काव्य-सर्जन के लिए आगे चलकर समर्थ एवं सफल सिद्ध न हो सकी। समाज की प्राचीन मान्यताएँ टूटने लगी। विज्ञान की उन्नति ने मानव को अधिक वास्तविकता का बोध कराया। ससार मे पूँजीवाद के विरुद्ध सघर्ष प्रारंभ हुआ। आर्थिक क्राति के साथ सामाजिक समता का स्वर तीव्र हो उठा। अग्रगामी जन-शक्तियो ने पूँजीवादी नेतृत्व का विरोध किया। इनके अतिरिक्त देश मे अकाल, दरिद्रता, गुलामी तथा जीवन की जटिल समस्याओ ने साहित्य और कविता की गति बदल दी। नवीन मान्यताओं को स्थापित करते हुए तेलुगु मे अभ्युदय कविता (प्रगतिशील कविता) का जन्म हुआ। इस कविता के प्रवर्तक श्रीरगम श्रीनिवास राव (श्रीश्री) माने जाते हैं। 'महाप्रस्थान' गीत-सग्रह द्वारा अपने नवीन जनवादी कविता का सूत्रपात किया। तत्कालीन राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था को छिन्नभिन्न करके उसके स्थान पर नवीन मान्यताओ को स्थापित करना चाहा। इस आशय के पोषण मे काव्य का निर्माण किया। वे नये ससार की सृष्टि के आकाक्षी हैं—

> "पुडमि तल्लिकि पुरिटिनोपुलु (नोप्पुलु)
> मरो प्रपंचं स्फुरिस्तुदि"

अर्थात पृथ्वी माता की प्रसव-वेदना नयी दुनिया के आविर्भाव का स्फुरण दिला रही है।

कवि कभी आशा-निराशा के द्वन्द्व मे पड जाते है तो कभी मानव-समुदाय के अभ्युत्थान के समय को निकट देखते है। कभी भयंकर द्वेषाग्नि प्रज्ज्वलित करने वाली दानवता के विनाश की कामना करते है, तो कभी अपनी आहुति का परिचय देते हैं—

"नेनु सैतमु प्रपंचाग्नि" नामक गीत द्वारा यह आशय अभिव्यक्त करते है तो फिर कभी अपना आत्म-परिचय देते है—भूत हूँ, यज्ञोपवीत हूँ, विप्लव-गीत हूँ।

अभ्युदय कविता के पोषक कवियो मे श्रीरंगम नारायण बाबू, आरुद्र, अनिशेट्टि सुब्बाराव, बेल्लमकोंड रामदासु, कुंदुर्ति आजनेयुलु, पुल्लूरि

सुब्रह्मण्यम, दाशरथी, कालोजी नारायणराव, अजता, के० वी० रमणा रेड्डी, रेंटाल, पुरिपंडा आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

विविध प्रवृत्तियाँ :

तेलुगु कविता पर राष्ट्रीयता का प्रभाव है तो दूसरी तरफ अपनी मातृभूमि के प्रति अगाध अनुराग भी। इस परंपरा के काव्य-ग्रन्थों में 'आन्ध्र पुराण', 'महान्दोदय', 'नागार्जुन सागर', 'पेतुगोंड लक्ष्मी' आदि सुप्रसिद्ध है। श्री पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलु जंध्याले पापय्या शास्त्री, बोठ भीमन्ना, सी० नारायण रेड्डी, पल्ला दुर्गयन आदि असंख्य कवियो ने तेलुगु काव्य-भारती की आरती उतारी है। तेलुगु मे जितनी संख्या मे कवि है, संभवत किसी भाषा में इतनी संख्या में नही होंगे।

नाटक :

तेलुगु मे करीब दो हजार नाटक रचे गये है। प्रदर्शन की दृष्टि से भी अधिकांश नाटक मंच पर अभिनीत हो सफलता प्राप्त कर चुके हैं। कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ विजयवाडा केवल तेलुगु नाटक देखने आये थे। तेलुगु नाटको की पृथ्वीराज कपूर, शातारास आदि ने बडी प्रस्तुति की है। तेलुगु भाषा में कुरवंजी, यक्ष गान, भामा कलापमु, वीथि भागवतमु इत्यादि लोकनाट्य भी हैं जो अत्यन्त ही लोकप्रिय हैं। 'कन्याशुल्कमु' तेलुगु का प्रथम सामाजिक नाटक है जो अंग्रेजी नाटकों की शैली पर रचित है। संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला, हिन्दी आदि भाषाओ से अनूदित नाटकों की संख्या भी कम नही है।

तेलुगु मे सामाजिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक, पौराणिक, प्रगतिशील नाटक भी रचे गये हैं। वीरेशलिंगम पंतुलु, धर्मवरमु कृष्णमाचार्युलु, चिलकमर्ति लक्ष्मी नरसिंहम, आत्रेय, नार्ल वेंकटेश्वरराव, वेलमु वेंकटराय शास्त्री, रानमन्नार, मुद्दु कृष्ण, अनिशेट्टि, श्रीवात्सव, भमिडिपाटि, डी० नरसराजु, मल्लादि, आत्रेय प्रभृति ने इस शाखा को परिपुष्ट किया है। आन्ध्र प्रदेश मे सैकड़ो की संख्या मे नाटक-कंपनियाँ स्थापित है। चिलकमर्ति कृत "गयोपाख्यानमु" नाटक की डेढ लाख से अधिक प्रतियाँ अब तक बिक चुकी है। तेलुगु रंगमंच के विकास का यह एक उत्तम उदाहरण कहा जा सकता है।

अन्य विधाएँ :

तेलुगु का गद्य साहित्य पर्याप्त प्रौढ़, पुष्ट एवं विविध शास्त्र ग्रन्थों से पूर्ण है। आलोचनात्मक ग्रन्थो के अतिरिक्त गणित, ज्योतिष, वैद्यक, शास्त्र, धर्म, दर्शन, इतिहास, विज्ञान, तर्क, न्याय आदि शास्त्रों से सम्बन्धित ग्रन्थ भी पर्याप्त मात्रा मे रचे गये हैं।

तेलुगु का उपन्यास और कहानी-साहित्य भी समृद्ध कहा जा सकता है। तेलुगु मे इस समय सैकड़ों कथाकार हैं। विविधता, व्यापकता और नवीनता को लिये तेलुगु कथा वाङ्मय विकास के पथ पर अग्रसर है। पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा भी कथा वाङ्मय को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हो रहा है। तेलुगु की विशेषता यह है कि इसमे लेखिकाओं की संख्या भी अन्य भाषाओं की अपेक्षा अधिक है। ऐतिहासिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक उपन्यास भी तेलुगु मे रचे गये है।

जीवनी और आत्म-कथाओं की रचना भी समय-समय पर हो रही है। समाज-सुधारकों, राजनैतिक नेताओं तथा युग-प्रवर्त्तक कवि और लेखकों ने अपनी आत्मकथाएँ लिखी है।

शास्त्र तथा वैज्ञानिक साहित्य का भी प्रचुर मात्रा मे सृजन किया जा रहा है। लोक-साहित्य के पुनरुद्धार का प्रयत्न चालू है। आन्ध्र प्रदेश के तीनों विश्वविद्यालयों, अकादमियों तथा तेलुगु भाषा-समिति के द्वारा भी उत्कृष्ट ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा रहा है। कोश, व्याख्याएँ, व्याकरण आदि भी कम नही लिखे गये हैं। तेलुगु भाषा-समिति ने "विज्ञान सर्वस्वमु" नाम से १२ खण्डों में विश्वकोष के प्रकाशन की योजना बनायी और अब तक नौ खण्ड प्रकाशित भी हो चुके है। आन्ध्र प्रदेश सरकार भी यथाशीघ्र तेलुगु मे समस्त कार्य चलाने का निश्चय किया है। अतः यह आशा की जा सकती है कि तेलुगु भाषा और साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है।

———

२

स्वातंत्र्योत्तर तेलुगु साहित्य

तेलुगु के विख्यात महाकवि "श्रीश्री" ने स्वातंत्र्योत्तर तेलुगु काव्य "स्वमेवाहम" (श्री आरुद्र कृत) की भूमिका मे बताया है, "हमे मुख्यत स्मरण रखने की दो चीजें है—एक, भारत भर मे राजनैतिक दृष्टि मे अधिक जागृत प्रदेश आन्ध्र प्रदेश है। दूसरी—नवीन कविता के लिए ममस्त भारत में तेलुगु भाषा का स्थान सर्वोपरि है। इन दोनो के बीच परस्पर घनिष्ठ मम्बन्ध है।" यह बात आज भी मत्य है। राजनैतिक चेतना तथा कविता की नवीनतम प्रवृत्तियों मे आन्ध्र प्रदेश आज भी अग्रणी है।

स्वतन्त्रता की प्राप्ति के कुछ वर्ष पूर्व ही १९४३ मे अभ्युदय लेखक संघ (प्रगतिशील लेखक संघ) की स्थापना हुई थी। इस संघ का साम्यवादी दल के सिद्धान्तों के माथ प्रत्यक्ष मम्बन्ध था। महाकवि श्रीश्री ने यह बात 'प्रगतिशील लेखक और विप्लव दृष्टिकोण' नामक लेख में स्पष्ट की थी। "अभ्युदय लेखक जिन सामाजिक अत्याचारो को निर्मूल करने की व्यथा अनुभव करता है, उन्ही के निर्मूलन के लिए अगर एक राजनैतिक दल प्रचार करता है तो कवि अपने शिल्प को अवश्य उसके वास्ते समर्पित करेगा।" किन्तु १९४७ मे भारत जब स्वतन्त्र हुआ, तब मार्क्सवादी सिद्धान्तों की नहीं, बल्कि संवैधानिक प्रजातन्त्र की भित्ति पर राष्ट्रीय सरकार स्थापित हुई। उसी समय तेलंगाना आन्दोलन छिड़ा। इस आन्दोलन के [illegible] ने नई उत्तेजना व प्रेरणा प्राप्त की।

तेलंगाना क्षेत्र मे रजाकारो के अत्याचार [illegible] विरोध किया। पुलिस की कारंवाई, तेलंगाना का [illegible], साम्यवादी दल तथा प्रगतिशील रचनाओ पर प्रतिबन्ध, [illegible] दिखाने वाले लोगो के प्रति पुलिस के [illegible] साहित्य को प्रभावित किया। [illegible] प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित हुआ। [illegible] सर्वश्री अनिशेट्टी सुब्बाराव कृत [illegible]

तथा "अग्नि धारा", रामसुन्दर विरचित "वज्रायुधम्", रेंटाल राघवराव रचित "संघर्षण" और आरुद्र कृत "त्वमेवाहम्"। गद्य के क्षेत्र में भी उपर्युक्त आन्दोलन में प्रभावित सुन्दर रचनाएँ आविर्भूत हुईं। श्री सुंकर सत्यनारायण तथा वासिरेड्डी भास्करराव ने सम्मिलित रूप में "मा भूमि" (जमीन हमारी) नामक नाटक रचा, जिसे कांग्रेसी सरकार ने जब्त किया था। अनेक वर्ष पश्चात् इस नाटक के प्रकाशन पर से प्रतिबन्ध हटाया गया।

तेलंगाना में साम्यवादियों ने इसलिए सशस्त्र क्रांति और गोरिल्ला-युद्ध शुरू किया कि उनकी दृष्टि में राष्ट्रीय सरकार साम्राज्यवादियों की जी-हुजूरी करने वाली सरकार है। वे अपने सिद्धांतों के अनुरूप साम्यवादी सरकार स्थापित करना चाहते थे। वे असफल हुए। पुलिस कार्रवाई के साथ तेलंगाना भारत संघ का अन्तर्भाग बना। इससे साम्यवादी आन्दोलन को गहरा आघात लगा। परिणामस्वरूप उन्हें अनिवार्य रूप से अपने कार्यक्रमों में परिवर्तन लाना पड़ा। कुछ लेखकों की साम्यवादी कार्यक्रमों के प्रति आस्था शिथिल और प्रजातन्त्र के प्रति सुदृढ़ हुई। फलतः वे तेलुगु देश, तेलुगु भाषा, तेलुगु जाति का गान करने लगे। इस संदर्भ में "महांध्रोदय" जैसे काव्य प्रकाश में आये।

उपर्युक्त आन्दोलनों के प्रभाव में १९५२ के चुनाव में साम्यवादी दल की आशातीत विजय हुई। आन्ध्रवासियों ने तीस वर्ष तक "विशाल आन्ध्र" का जो आन्दोलन चलाया, वह साकार हुआ। विभिन्न राज्यों में बँटे आन्ध्र के प्रान्त में शासन के अन्तर्गत आ गये। भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन आन्दोलन का बीजारोपण आन्ध्रवासियों ने ही किया था।

आन्ध्र प्रदेश की स्थापना के साथ ही तेलुगु को शासन के स्तर पर मान्यता दिलाने का प्रयत्न हुआ। इसी अवधि में तेलुगु कविता में वस्तु और शैली सम्बन्धी बहुत बड़ा परिवर्तन आया। यों तो छन्दोबद्ध कविता को तिलांजलि देने का प्रयत्न इसके पूर्व ही हो चुका था, किन्तु इस अवधि में गद्य कविता एक आन्दोलन के रूप में सामने आई। साथ ही जहाँ पहले कृषक, मजदूर, दलित, शोषित एवं पीड़ित प्रजा का स्वर तेलुगु कविता में बुलन्द था, वहाँ अब गुमाश्ते, क्लर्क, बेरोजगार व मध्यम वर्ग ने भी अपना स्थान बना लिया।

उपर्युक्त विचारधारा से भिन्न स्वर हमें अजन्ता, केशवराव, गोपाल चक्रवर्ती, अविराल विश्वम, इत्यादि की कविता में दर्शित होता है। इनकी कविता में राजनैतिक चेतना की अपेक्षा मानसिक संवेदनशीलता अधिक दृष्टिगत होती है। इस स्थिति का चित्रण कविश्री आरुद्र के शब्दों में स्पष्ट हुआ है—"श्री केशव राव जहाँ अनूदित प्रभाव को देख सके, वहाँ पर

मादिराजु रंगाराव "जागृत आकाश" तथा उसके भीतर के "किशोरो" को दर्शन कर सके। श्री गोपाल चक्रवर्ती ने "कलम के स्वप्न" देखे, अपिराल विश्वम् ने "काल गीस्तुन्न गीतल" अर्थात् काल द्वारा खींची गयी रेखाओ को स्वीकार किया तो बापू रेड्डी ने चैतन्य रेखाओ को पहचाना। इस प्रकार जहाँ प्रगतिशील लेखको का आन्दोलन सो रहा था, वहाँ पर प्रगति जागृत थी।"

स्वतन्त्रता की प्राप्ति के साथ पुलिस की कार्रवाई और निजामशाही की समाप्ति का सर्वत्र स्वागत हुआ। निजामशाही के क्रूर शासन से मुक्ति के लिए राष्ट्रवादियो ने भी अथक प्रयत्न किया था, किन्तु प्रगतिशील शक्तियों का इसमें बहुत बड़ा हाथ था। उन्ही दिनो जो काव्य प्रकाश में आये, उनमे सर्वश्री कुन्दुर्ति आजनेयुलु द्वारा विरचित "तेलगाना" और गंगनेनि वेकटेश्वर राव विरचित "उदयिनी" तेलगाना के सग्राम का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं। इसी सदर्भ मे रेंटाल गोपाल कृष्ण कृत "सर्पयाग" और "सघषण" भी उल्लेखनीय है। श्री अनिशेट्टि सुब्बाराव ने "अग्नि वीणा" नामक काव्य-संग्रह मे बताया है—"प्रति ओकडू शिवुडु नेडु" अर्थात् अनेक व्यक्ति आज एक शिव हैं। विज्ञान के पथ पर पग धरने वाले मानव को सचेत करते हुए कवि कहता है—"अधिरोहण की दशा मे तुम्हारे कदमो मे गलत ताल-लय नही करूँगा।" इसी परम्परा मे "युगे-युगे" काव्य का प्रादुर्भाव हुआ। साम्यवादी विचारधारा ने क्राति का जो आन्दोलन चलाया, जिसका लक्ष्य केवल मात्र विप्लव था, उसकी परिधि को पार कर राष्ट्रीय प्रजातन्त्र का पोषण "तेलंगाना" नामक काव्य मे हुआ है। एक समीक्षक ने बताया है कि कुन्दुर्ति की कविता में यह जो परिवर्तन आया है, वह प्रगतिशील कविता को पीछे छोड नर्वान कविता-युग का स्वागत करता हे। उनके द्वारा विरचित "तेलगाना" काव्य एक प्रकार से दो युगो के लिए सेतु के समान है। प्रगति-शील कविता आन्दोलन के दो प्रमुख व महान काव्य ग्रन्थो में उल्लेखनीय है, एक छोर पर महाकाव्य श्रीश्री द्वारा प्रगीत "महाप्रस्थान" और दूसरे छोर पर "तेलंघाना"। ये दोनो काव्य अपनी कविता-शक्ति के बल पर सब प्रकार की कसौटियो पर कसे जा सकते है। यदि प्रथम काव्य [illegible] आधारशिला है तो दूसरा उसका उच्च शिखर है। एक [illegible] है तो दूसरा जलधारा है। कुन्दुर्ति ने इस काव्य के द्वारा [illegible] काव्य भाषा लोक भाषा बनी।

तेलंगाना मे साम्यवादियो द्वारा [illegible] उसके समर्थन मे अनेक कवियों [illegible] कवियो को तत्कालीन [illegible]

नाटक जब्त किये। आन्ध्र मे ही सभवत पहली बार कवियो को कारागार मे भेजा गया।

राजनैतिक स्वतन्त्रता के साथ युवा पीढ़ी के कवियो मे तीन प्रकार की विचारधाराएँ दृष्टिगोचर हुई है—पहली विचारधारा के कवि, बाह्य तथा समाज मे जो परिवर्तन हुए है, उनके अत्यन्त निकट रहते हुए उन्हे भली-भाँति समझकर अपनी प्रतिभा के बल पर उनकी व्याख्या करते हैं। दूसरी कोटि के कवि उपर्युक्त परिवर्तन से सतुष्ट न होकर भविष्य मे सुन्दर परिवर्तन की कामना करने वाले है और तीसरे वर्ग के कवि वे हैं जो वर्तमान मे साँस लेते हुए भी वैचारिक क्षेत्र मे अनेक पीढ़ियाँ पीछे हैं। तीसरे वर्ग के कवियो का चित्रण यहाँ अनावश्यक है।

युवा पीढ़ी के जिन विचारशील कवियो ने निजाम की तानाशाही पर व्यग्य कसा, भर्त्सना की, निन्दा की, फलतः कारागार मे जाना पड़ा, उनमें दाशरथी एक हैं। दाशरथी ने निजाम नवाब को वृद्ध जम्बूक बताया था। दाशरथी प्रारम्भ मे मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हुए थे, कालांतर मे राष्ट्रवादी विचारधारा के समर्थक बन गये।

सोमसुन्दर ने रजाकारो के विरुद्ध अपना स्वर बुलन्द किया। "गुलामो का हमला" नामक कविता इसका प्रबल उदाहरण है। सोमसुन्दर को कारागार मे नही जाना पडा। पर उनका काव्य "वज्रायुध" जब्त हुआ। ये प्रगतिशील विचारधारा के प्रमुख कवियों में से है। १९५३ मे गोदावरी नदी मे जो भयंकर बाढ आयी, उसकी विभीषिका का चित्रण उनकी "गोदावरी जल-प्रलयम्' कविता में दर्शनीय है। कवि गोदावरी से प्रश्न करते है।—"हे माते, सद्य. प्रसव देने वाली शेरनी हो तुम। अपनी ही संतान को निगल डालती हो, यह कैसा न्याय है? तालवृत्त बनकर बहने वाली तुम्हारी तरंगें आज तालवृक्ष के बराबर उमड़ पडी।"

प्रगतिशील तत्वो के साथ परम्परावादी कविता की धारा भी अतर्वाहिनी के रूप मे धीमी चाल से बह रही है। ऐसे भी कवि हुए जिन्होंने देश, काल एव स्थिति के ऊपर उठकर कलात्मक तत्वो को प्रश्रय दिया। कतिपय कवियों ने सामयिक विचारधारा का पोषण करना अधिक समीचीन समझा। बुद्ध की २५००वी जयन्ती से प्रभावित होकर अनेक कवियो ने शाति, अहिंसा तथा सत्य की पुन. प्रतिष्ठा पर जोर दिया। इसकी पुष्टि मे प्रकाश मे आये काव्य "बोधिसत्व", "नागार्जुन सागर" इत्यादि। तिलक जैसे भावप्रवण कवियों ने अपनी कविता द्वारा मानवतावाद को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। वे कहते हैं, "जीवन-मृत्यु के बीच जीवन में चारो तरफ संदेह-जैसा अंधकार व्याप्त है। उसके भीतर चंदन-जैसी सुगंधित मानवता ही हमारा

एकमात्र अलंकार है।" आगे कहा है—"कविता हृदय के अंतर की ज्योतिपूर्ण सीमाओं को प्रकट करे और चेतना की परिधि का विस्तार हो; चाहे अग्नि की वर्षा हो या अमृत की, उसका परम लक्ष्य सौन्दर्य और आनंद ही है।"

१९६२ मे चीन ने भारत पर हमला किया; फलत. भारत के प्रगतिशील तत्वो को बड़ा धक्का लगा। इससे यह तथ्य स्पष्ट हुआ कि साम्यवादी सिद्धान्तो के अनुयायी राष्ट्रो का ध्येय, अन्तर्राष्ट्रीय मातृत्व की अपेक्षा राष्ट्रीय-प्रयोजनो का संरक्षण प्रधान है। अतः प्रगतिवादियो में से अनेक राष्ट्रीय प्रयोजनो पर अपना ध्यान केन्द्रित किया और कविता मे भी देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता ने पुनः अपना स्थान बनाया। लेकिन इसी कारण प्रगतिशील शक्तियो के बीच संघर्ष भी हुआ।

एक वर्ग का कहना था कि प्रगतिशील आन्दोलन का मूलभूत तत्व देशीय नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय है। दूसरे वर्ग का विश्वास था कि अन्य देशो की ओर दृष्टिपात करने वाली दृष्टि त्याग कर अपने देश के कल्याण के हेतु काव्यसर्जन उचित है। मार्क्सवादी साहित्यकारो के वर्ग ने स्पष्ट किया कि श्रमिक जीवन मे देश-विदेश का कोई अतर नही होता। उस श्रम को लूटने वाले वर्गों की प्रकृति एवं प्रवृत्ति के अनुरूप धर्म, दर्शन, संस्कृति एवं साहित्य का निर्माण होता है। श्रमजीवियो का दर्शन ही मार्क्सवाद है। उसके मूलभूत सिद्धान्त किसी भी समाज मे विजातीय नही हो सकते।

इस सक्राति काल मे चीन के प्रति अपना असतोष प्रकट करते हुए जो काव्य प्रकाश मे आये, उनमें श्री गज्जल मल्ला रेड्डी द्वारा विरचित "वृश्चिक संतान" गणनीय है। १९७० मे प्रमुख प्रगतिशील कवि "श्रीश्री" की षष्टि पूर्ति विशाखपट्टणम् मे मनायी गयी थी। उस वक्त कतिपय उग्रवादी कवियों ने चीन की सांस्कृतिक क्राति, माओ का नेतृत्व, सशस्त्र क्राति, श्री काकुलम का नक्सलपथी आन्दोलन आदि का समर्थन करते हुये "विप्लव रचयितल सघम्" (क्रान्तिकारी लेखक-संघ) की स्थापना की जो "विरसं" नाम से प्रख्यात है। चीन के प्रति आक्रोश व क्रोध प्रकट करते हुए जो प्रगतिशील कवि अपने आशय को स्पष्ट करते हुये उस दल से बाहर आ गये, वे अभ्युदय कवि ही रह गये।

"विरसं" की ओर से "झंझा", "ले" (उठो), "रा" (आ), "तिरगबडु" (विद्रोह कर) इत्यादि रचनाएँ आयी। कतिपय पाठको तथा युवको को इन कृतियों ने उत्तेजित किया, पर विरसं के लक्ष्यों मे "कमिटमेंट" अत्यन्त प्रधान है।

श्री काकुलम् के गोरिल्ला युद्धो ने विरसं कवियो का उत्साहवर्द्धन किया, जैसा कि १९४८ मे तेलंगाना के सशस्त्र आन्दोलन ने अभ्युदय (प्रगतिशील)

कवियों को प्रेरित किया था। फलत जैसे अभ्युदय कवियों की कृतियों पर प्रतिबन्ध लगाया गया था, वैसे ही विरसं के कवियों के कविता-संकलनों को आन्ध्र सरकार ने न केवल विद्रोहकारी घोषित कर उन पर प्रतिबन्ध लगाया अपितु एक दर्जन के करीब लेखकों एवं कवियों को भी कारागार में बन्द किया। आन्ध्र के उच्च न्यायालय ने सरकारी नीति को अवैधानिक घोषित कर न केवल उन संकलनों पर से प्रतिबन्ध हटाया, बल्कि कवियों को भी मुक्त किया। किन्तु आपातकालीन स्थिति में पुन. कुछ कवियों को कारागार में भेज दिया गया और अदालत में उन पर एक मुकदमा दायर किया गया। परिणामस्वरूप सर्वश्री के० जी० सत्यमूर्ति, के० सीतारामय्या, के० वी० रमणा रेड्डी, टी० मधुसूदन राव, चेरबंड राजू, एम० टी० खाँ, रंगनाथम् और वरवर राव को कारागार की सजा भोगनी पड़ी।

प्रतिवाद के साथ तेलुगु काव्य-जगत् में प्रयोगवाद अंतर्वाही बनकर प्रवाहित होता रहा। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के दस वर्ष पूर्व ही कवि श्री पट्टाभि ने प्रयोगवादी कविता का शुभारम्भ किया था। उन्होंने अपने "फिडेल रागल डजन" में अच्छे प्रयोग किये। मात्र छन्द का बहिष्कार करते हुए उन्होंने कहा—

ना ई वचन पद्यलने दुड्डु कर्रलतो
पाधाल नड्डुमुल विरगदंतानु

अर्थात्, "मैं अपनी गद्य कविता रूपी इन लाठियों से कविता की कमर तोड़ दूँगा।"

दूसरी जगह कहते है—"क्रासवर्ड्स पजल्स जैसी तुम्हारी आँखों को हल करने का भाग्य किसका होगा ? हे वेश्ये, तुम समाज के लिए एक रद्दी की टोकरी हो।"

प्रयोगवादियों में मुख्यत तात्विक दृष्टिकोण, व्यष्टिवाद तथा आत्मावलोकन के तत्व उभर आये हैं। भाषा-शैली तथा काव्य-वस्तु में भी एक सुनिश्चित लक्ष्य दृष्टिगोचर होता है। इस परम्परा में खासकर कुन्दुर्ति, आरुद्र तथा तिलक के नाम अवश्य ही उल्लेखनीय हैं। तीनों ने गुमाश्ते के जीवन की विशद व्याख्या की, उसकी व्यथा की गाथा गायी है। कुन्दुर्ति ने यहाँ तक बताया कि—"गुमाश्ते का जीवन न मिटा सकने वाला जीवन ही मेरा गीत है।" "जाति तथा अनीति के बीच होने वाला संघर्ष ही मेरा गीत है।" मध्यवित्त परिवार का चित्रण करने में ये तीनों पर्याप्त सफल हुए हैं। गुमाश्ते के जीवन का कलात्मक चित्रण इनकी कविताओं में पाया जाता है। श्री आरुद्र कृत "एन० जी० ओ० सन" (N. G. O. Sun) इसका उत्तम

उदाहरण है। श्रीश्री ने भी प्रयोगवादी सुन्दर कविताएँ [illegible] है—

> "शिशु को न प्राप्त होने वाले स्तन्य जैसा,
> बहता है गोदावरी जल।"
> "फटे कलेजे की भाँति खेतों में दरार पड़
> गई।"
> "हमारे उद्योग योजनाओं में बंद हैं।"
> "हमारी प्रतिभा सेवा के लिए बंधक है।"
>
> \+ + +
>
> "अर्द्ध नग्न स्थिति में [illegible]
> कर……"
> "अधभरे पेट, [illegible]
> इस प्रकार हे मानव, [illegible]
> सकोगे?"

कुछ ऐसे कवि भी रहे जो [illegible] विचारधारा के थे। जिनके [illegible] किया है—

नरसिंह, सी० वी० कृष्णा राव, वे० नरसिंहा रेड्डी, जगन्नाथ राव, सिरियाल रामकृष्ण इत्यादि के नाम अवश्य लेने चाहिये। दिगम्बर कविता का जन्म वस्तुतः १९६७-६८ में हुआ है।

दिगम्बर कवियों ने सामाजिक अत्याचारों के प्रति अपना आक्रोश प्रकट करते हुये अनेक रचनाएँ की। इस आशय के तीन काव्य-संग्रह भी प्रकाश में आये और पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। निखिलेश्वर, महा-स्वप्न, चेरबण्ड राजु इत्यादि दिगम्बर कवियों ने समष्टिगत दायित्व को ग्रहण कर अत्यन्त आत्मविश्वास के साथ वर्तमान समाज की धज्जियाँ उड़ायीं और उसे जलाकर भस्म कर देने का आवाहन किया। उनकी कविता के तांडव एवं विकट अट्टहास ने पाठकों में जहाँ प्रारम्भ में हलचल मचा दी वहीं बाद में उनके जुगुप्सापूर्ण शब्दों के प्रयोग ने विरक्ति एवं घृणा पैदा की। प्रायः सभी दिगम्बर कवि अत्यन्त प्रतिभाशाली हैं, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। पाठकों में प्रारम्भ में आवेश एवं उद्रेक जागृत करने में ये कवि सफल हुए। इन कवियों ने पाठक वर्ग को यह आश्वासन दिया—"हम मानव द्वारा ओढ़े गये नकाब को फाड़ देंगे। *श्मशान के सिर पर फूलों के पौधे उगायेंगे।* निरन्तर शोषित एवं पीड़ित विश्व में अपनी कविता के द्वारा एक नया मोड़ ला देंगे। अपने नेत्र की ज्वालाओं के द्वारा जगत् के लुच्चे-लफंगों को भस्म कर देंगे।"

महास्वप्न नामक कवि का कहना है—"आप लोगों की रक्षा करने वाले इस अंधकारपूर्ण शिला-दुर्ग को तोड़ दूँगा। इस सभ्यता का मान भंग करूँगा। (सतीत्व लूटूँगा), प्रत्येक बाँबी को तोड़, विष-भुजंगों को पकड़ उनके दाढ़ निकालूँगा। इस भयंकर अरण्य में दावानल पैदा करूँगा। इस सभ्यता के रावण का लंका-दहन करूँगा।" इस प्रकार समाज के मानव की दुर्बलता पर खीझकर उसे राक्षस मानना समीचीन नहीं लगता। पर दिगम्बर कवियों ने जो नये उपमान दिये, जिस शैली में अपनी अभिव्यक्ति दी, उसके कारण वे शीघ्र ही प्रकाश में आये और उनका अधिक प्रचार भी हुआ। इस आक्रोश के पीछे उनका आशय यह है—"व्यक्ति के भीतर समूल परिवर्तन होना *चाहिये। यह इसलिये सम्भव नहीं है कि आज के समाज में प्रत्येक व्यक्ति* इस प्रकार अपने ऊपर नकाब धारण किये हुए है जिससे वह वास्तव में पूर्ण रूप से साँस नहीं ले पाता, अतः उस नकाब को हटाकर उसे एक सच्चे मानव के रूप में प्रकट होना है।" इसी ओर संकेत करते हुए वे कहते है—"*तुम्हारी अस्थियों के भीतर समाये हुए सत्य को कीचड़ से मत ढँको।* मानव बनो—लाल गुलाब की भाँति ···अंगारे जैसे, यौवन की भाँति—मदहास जैसे। वास्तव में गगन के बीच मार्त्तण्ड-जैसे—आधा क्षण जियो।" इस प्रकार वे

मानव को पूर्ण व्यक्तित्व के साथ उभर आने का आवाहन देते है, उनकी दुर्बलता पर आक्रोश एवं क्षोभ प्रकट करते है—उसकी निन्दा करते है, उसे गालियाँ देते हैं ताकि वह चौककर, सँभलकर या चेत कर अपने नकाब को उतार फेंके। यही व्यथा उनकी कविता का लक्ष्य है।

इस प्रकार कतिपय त्रुटियो के बावजूद भी दिगम्बर कवि निस्सन्देह रूप से प्रतिभाशाली कवि है। कविता को दिगम्बर कवियो ने जो नये उपमान, अलंकार, प्रतीक, रस, ध्वनि, व्यग्योक्ति एव विलक्षणता प्रदान की, वह प्रशंसनीय है। इनकी कविता की एक बानगी देखिये—

काल-कांता के संग
बीसवी शती की सौर-शय्या पर
सश्लिष्ट समस्याओ का
सौरभ घ्राण करते हुए
पल-पल संघर्ष के साथ रमण करते
शुक्रेतर समस्त ग्रहों के
संकेतों को सुना दूँगा
प्रलयों की तहों के नीचे
निश्शब्द को रूप दूँगा।

सामाजिक व्यथा तथा वैयक्तिक व्यथा से प्रेरित होकर उत्तम रचना करने वालो की सख्या आज पचास से कम नही है। उन सबका संक्षेप मे ही सही, परिचय देना या एकाध उद्धरण देना भी इस छोटे से निबन्ध मे सम्भव नही है। इनके अलावा स्वतन्त्र रूप से काव्य-रचना करने वाले प्रतिभाशाली कवियों की संख्या सैकड़ो हैं।

आरुद्रा ने अपनी कविता के माध्यम से प्रतीकवाद को जन्म दिया। इनके प्रतीक बडे ही भावबोधक है। एक उदाहरण, "जीवितं" रेडियो सेट्टुकी, "भर्त एरियल भार्य अर्थ" अर्थात् जीवनरूपी रेडियो-सेट के लिए अगर पति एरियल है तो पत्नी अर्थ। उन्होंने तेलुगु कविता मे अनेक सफल प्रयोग किये। उनकी फुटकल कविताओ मे ही नही, "सिनीवाली" नामक काव्य-संग्रह मे भी ये प्रयोग पढ़ते ही बनते है। इस दिशा मे तिलक, कुन्दुर्ति, दाशरथी, शिष्टला आदि उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार कुन्दुर्ति द्वारा विरचित "तुगे तुगे" प्रयोगवाद मे गद्य कविता का उत्तम उदाहरण कहा जा सकता है।

प्रगतिशील कविता के साथ ही तेलुगु मे लोक-भाषा के प्रयोग का मार्ग खुल गया था। किन्तु गत दो दशाब्दियों मे ही इस भाषा को साधारण मानव के जीवन, सुख-दुःख, उनकी समस्याएँ आदि को व्यंजित करने का श्रेय प्राप्त

हुआ है। सच तो, प्रयोगवादियों ने ही गद्य कविता को न केवल जन्म दिया अपितु उसे उच्च शिखर पर पहुँचा दिया। तिलक, कुन्दुर्ति, आरुद्र आदि ने इस विधा में प्राण फूंके, विंध कल्पना में अजन्ता कवि तथा वैरागी ने कलम तोड कर रख दी। उनकी कविता में कोमल शब्दावली भावना की दृष्टि से अन्तर्मुखी बनकर मानव की वेदना को मूर्त्त रूप देती है। आदिराजु रंगाराव ने मुक्तक नामक एक नयी प्रक्रिया को जन्म दिया। गोपाल चक्रवर्ती की कविता चमत्कारप्रधान है और शब्दों में श्लेष को ध्वनित करते हुए एक नूतन जीवन तत्व की व्याख्या करती है। यह प्रक्रिया इतनी लोकप्रिय और प्रभावशाली बनी कि उस समय तक पद्य तथा गीतों की रचना करने वाले कवि भी गद्य कविता के आश्रय में आने लगे।

गद्य कविता की वस्तु विविध रूपों में हमारे सामने आयी है। प्रतिभाशाली कवियों ने सूक्ष्म-दर्शिनी प्रतिभा द्वारा ज्वलन्त समस्याओं के व्यापक रूप की गहराइयों को दर्शाने का प्रयत्न किया है, कुछ लोगों ने किसी अदृश्य देवता या चन्दा मामा से अपनी समस्याओं का निवेदन किया है। कुछ लोगों ने स्वप्न रूप में उनका चित्र भी खींचा है। कतिपय कवियों ने उन्हें व्यंग एवं आक्षेप के रूप में प्रस्तुत किया है तो कुछ प्रबोधात्मक शैली में व्यक्त किया है, और कुछ ने आशानिराशा के स्वगत स्वर में।

भारतवर्ष गत तीस वर्षों से अनेक प्रमुख समस्याओं का सामना करता आ रहा है। अपर्याप्त खाद्यान्न, प्रकृति के प्रकोप से उत्पन्न अकाल, भूकम्प, परिवार नियंत्रण, अभी हाल में आये आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु में तूफान तथा समुद्र के द्वारा की हुई ध्वंस लीला आदि। कोई कहता है—"सर्वत्र क्षुधा गीत, आज की वायु में सौरभ नहीं है।" कोई व्यथा का हृदय लेकर आक्रन्दन कर उठता है—"अपना भार आप ही न ढो सकने वाली भूख।" एक ओर विद्यालय में अशान्ति है, हड़तालें हो रही हैं तो दूसरी ओर मजदूरों की हड़तालें।""आज जो हड़तालें हो रही हैं, इनका नेपथ्य क्या है, ये समस्याएँ भी कवियों को विकल कर रही है।

इसी समय कविता के क्षेत्र में एक नया आयाम स्थापित हुआ। वह है शक्तिशाली इतिवृत्ति वाली आधुनिक काव्य-रचना। डॉ० सी० नारायण रेड्डी ने ऐतिहासिक इतिवृत्ति को ग्रहण कर "नागार्जुन सागरम्", "कर्पूर वसन्त रायलु", "विश्वनाथ नायकुडु" जैसे सुन्दर काव्य-ग्रन्थों का निर्माण किया है। नारायण रेड्डी की कविता में प्रगतिशील तत्वों का अभाव नहीं है। वे विशुद्ध मानवतावादी हैं। गीतों की रचना में भी रेड्डी सिद्धहस्त है। उन्होंने प्रायः उन सभी समस्याओं को अपनी कविता का लक्ष्य बनाया जिसने कवि के हृदय को उद्वेलित किया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सर्वश्री कोडवटिगंटि कुटुम्बराव, गोपीचन्द,

नोरी, नरसिंह शास्त्री, चलम, विश्वनाथ सत्यनारायण इत्यादि ने अनेक उपन्यास लिखे जो सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, मनोवैज्ञानिक तथा अन्य विविध क्षेत्रों के है । राष्ट्रीय आन्दोलन तथा गाधीवाद से भी प्रभावित दो-चार उपन्यास उल्लेखनीय हैं ।

श्री कोडवटिगंटि कुटुम्बराव ने स्वतन्त्रता के पूर्व ही "चदुवु" (शिक्षा) नामक उपन्यास लिखा था, जिसने बाद की पीढी को भी अत्यन्त प्रभावित किया । श्री कुटुम्बराव सामाजिक सिद्धान्तों के प्रति स्पष्ट विचार रखने वाले लेखक है । राजनैतिक एवं आर्थिक व्यवस्था के साथ सामाजिक सम्बन्धो मे जो एक अन्योन्य सम्बन्ध है, उस विषय मे वे अपनी एक स्वस्थ एवं स्पष्ट विचारधारा रखते हैं । उनका विश्वास है कि आर्थिक मूल्यो के आधार पर सामाजिक मूल्य आधारित होते है । मध्य वित्त परिवार के कृत्रिम मूल्य, आत्म वंचना, भय एवं संदेहों के साथ निम्न वर्ग की व्यवस्थाओ एवं शोषण के सजीव चित्र, विश्व संग्राम की विभीषिकाएँ, बेकारी, रुपये के अवमूल्यन द्वारा उत्पन्न विषम समस्याएँ आदि आपकी रचनाओं के इतिवृत्त है ।

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास साहित्य में क्रान्तिकारी तत्वों को प्रश्रय देने वालों मे राचकोड विश्वनाथ शास्त्री अग्रगण्य है । उनके उपन्यासो मे "अल्पजीवी", "राजु-महिषी", "गावुलोस्तुन्नायि", "जागृत" इत्यादि विशेष रूप से उल्लेखनीय है । "अल्पजीवी" मे बाह्य संघर्ष के साथ आन्तरिक संघर्ष पढते ही बनता है । इस उपन्यास का कथानायक सुब्बय्या स्वभ। से भीरु और कायर है । वह चुपचाप अपमान और शोषण को सहता जाता है । वह किसी को धोखा नही देता, न घूस लेता है । गवरय्या जैसे ठेकेदार द्वारा वह कैसे शोषित होता है, उसका लम्बा इतिहास अंकित है । गवरय्या समाज के साथ प्रतिकार की भावना से प्रेरित हो उसे धोखा देकर, लूट कर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है । शास्त्री का दूसरा उपन्यास "राजू-महिषी" के संबंध मे श्रीश्री ने अपने विचार यो व्यक्त किये हैं—"तेलुगु मे जैसे पूर्ण सतोष प्रदान करने वाली कविता व कहानियाँ आयी, वैसा उपन्यास आज तक नही आया । इस बात की मेरी शिकायत थी, पर मेरा विश्वास है कि यह उपन्यास एक समग्र रूप को प्राप्त कर सका है ।" उन्होने यहाँ तक कहा है कि "यह उपन्यास बीसवी शती का क्लासिक माना जाएगा । इसमे ऐसी कोई बात नही रह गयी जिसका चित्रण न हुआ हो ।"

श्री महीधर राममोहन राव राजनैतिक सिद्धान्तों का स्पष्ट अवगाहन करते है । उन्होंने "ओनमालु", "रथ चक्रालु" और "दावानलम" नामक तीन उपन्यास लिखे, जिनका इतिवृत्त तेलगाना मे जमीन्दारो के विरुद्ध आन्दोलन का सजीव चित्र है । इसमें कृषक, मजदूर की दयनीय दशा के साथ

उनको इस स्थिति से मुक्त करने का आरम्भ करने वाला त्यागपूर्ण जीवन प्रस्तुत किया गया है। इसी इतिवृत्त को आधार बनाकर श्री वट्टिकोट आलवार स्वामी ने "प्रजल मनिषि" (जनता का मानव) तथा श्री दाशरथी रंगाचार्य ने "चिल्लर देवुल्लु" (फुटकर देवता या छोटे देवता) प्रस्तुत किये हैं। इनमें जमींदार और जमींदारों के अत्याचार तथा जनता का शोषण विविध दृष्टिकोणों में प्रस्तुत हुआ है।

तेलुगु उपन्यास साहित्य में अत्यन्त ही उल्लेखनीय कृति "चंघिस खाँ" है। तेलुगु के ऐतिहासिक उपन्यासों में इसकी समता कर सकने वाला दूसरा उपन्यास नहीं है। मंगोल इतिहास का अनेक वर्षों तक अध्ययन और शोध कार्य करके श्री तेन्नेटि सूरी ने यह उपन्यास प्रस्तुत किया है। भाषा, भावना, शक्ति, शिल्प, गोबी मरुभूमि का चित्रण, चीन का समग्र रूप इस कृति में प्रतिबिंबित है। यदि यह उपन्यास अंग्रेजी में रूपांतरित हुआ होता तो इसे नोबेल पुरस्कार प्राप्त होता। इतिहासकारों ने चंघिस खाँ को अत्यन्त क्रूर मानव रूपधारी राक्षस घोषित किया है, मगर सूरी के उपन्यास में वह समस्त मंगोल जातियों का संगठन करने वाला महान वीर है। चंघिस खाँ अन्याय, अत्याचार, शोषण का अन्त करने के लिए प्रादुर्भूत एक मानवतावादी के रूप में इस उपन्यास में प्रस्तुत है। इस उपन्यास की समाप्ति में लेखक कहता है—"संघर्ष से अग्नि प्रज्ज्वलित होती है। चंघिस खाँ भयंकर प्रजा शोषण से अवतरित एक ज्वाला-रेखा है। जो विध्वंस की रेखा के उद्भव का विरोध करते हैं, उन्हें इस प्रश्न का समाधान देना होगा कि मानव-समाज में असहनीय प्रजा शोषण क्यों होना चाहिए।" एक सन्दर्भ में चंघिस खाँ अपने किये हुए कार्यों की कैफियत देता है—"उस दीन-हीन अवस्था में गोबी मरुभूमि की जनता को देखने पर मेरा हृदय फटा जाता है, आप लोग इसकी कल्पना तक नहीं कर सकते। समस्त गोबी जातियों को एक सूत्र में बाँधकर उन्हें एक शक्तिशाली जाति के रूप में परिणत किये बिना इन्हें मुक्ति नहीं है। इस सत्य का अन्वेषण मैंने अपने काल में ही किया है। इसी एक मात्र लक्ष्य की पूर्ति के लिए मैं दिन-रात कार्यरत हूँ। इस कार्य को सम्पन्न करने में मैंने अनेक अकृत्य किये। अनेक जातियों को समूल नष्ट किया है।"

आधुनिक मानव समाज, पारिवारिक समस्याएँ, मानव का भीतरी व्यक्तित्व तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को आधार बनाकर असंख्य उपन्यास रचे गये। इस क्षेत्र में वलिवाड कांताराव, भास्करभट्टल, कृष्णा राव, लिगराजु लिंगमूर्ति, आर० एम० सुदर्शनम्, रंघि सोमयाजुलु, इच्छापुरम् जगन्नाथ राव, पद्मराजु, धनिकोंडा, कोम्मूरि वेणुगोपाल राव, पुराणम् सुब्रह्मण्य शर्मा, सूर्य

प्रकाश राव, बीराजी, शारदा, पीलाप्रगड राघव, मंजुश्री, पोरंकि दक्षिणामूर्ति इत्यादि के नाम गणनीय हैं ।

गत दशाब्दी के उल्लेखनीय उपन्यासों में एन० आर० नंदी का "नैमिषारण्य", श्री विनुकोंड नागराजु कृत "ऊबिलो दुन्न" (दलदल में बैल) नवीन कृत "अंपशय्या" विशेष चर्चित है । "नैमिषारण्य" में अग्र वर्णों के द्वारा हरिजनों के प्रति किये जाने वाले अत्याचार, मध्य वित्त परिवारों की आर्थिक समस्याएँ, नौकरी पेशा नारियों की कठिनाइयाँ आदि रोचक ढंग से वर्णित हैं । नागराजु कृत "ऊबिलो दुन्न" तथा नवीन रचित "अंपशय्या" प्रयोगात्मक उपन्यास है । आज की सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं को सांकेतिक रूप में उठाकर नागराजु ने जहाँ सोचने के लिये पाठकों को बाध्य किया, वहाँ "अंपशय्या" में नवीन ने विद्यार्थियों की समस्याओं, छात्रावास तथा विश्वविद्यालयों का जीवन तथा युवा पीढ़ी की उद्वेगपूर्ण प्रवृत्तियों का भी सजीव चित्रांकन किया है ।

तेलुगु में आज सशक्त उपन्यास लिखने वालों की संख्या में महिला लेखिकाओं की संख्या भी कम नहीं है । विशेषरूप से चर्चित महिला लेखिकाओं में वीना देवी, सीता देवी, मुप्पाल रंगनायकम्मा, के० रामलक्ष्मी, लता, इल्लिंदल सरस्वती देवी, मालती चन्दूर, यद्दनपूडि सुलोचना रानी, कोडूरि, कौशल्या देवी, परिमला सोमेश्वर, सी० आनंद रामम्, तुरगा जानकी राणी, काविलिपाटि विजयलक्ष्मी, कलिपाक रमामणि, वेदुल शकुन्तला, उन्नव विजयलक्ष्मी, मादिरेड्डी सुलोचना, डि० कामेश्वरी विशालाक्षी, कोमला देवी, छाया देवी, पी० रामलक्ष्मी वगैरह ने बीसों उपन्यास लिखे और इन लेखिकाओं ने पाठक वर्ग की परिधि को अत्यन्त व्यापक बनाया । उक्त लेखिकाओं की कृतियाँ भारी मात्रा में बिक्री हो रही हैं । साथ ही पत्र-पत्रिकाओं में इनके उपन्यास बराबर धारावाही छप रहे हैं । इनकी कृतियों पर अनेक फिल्में भी बनी हैं ।

अधिकांश लेखिकाओं ने पारिवारिक जीवन का चित्र प्रस्तुत किया है । नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इन उपन्यासों की विशेषता कही जा सकती है । किन्तु भाव, भाषा, शिल्प वस्तु तथा समाज में जागृति पैदा करने की दृष्टि से मुप्पाल रंगनायकम्मा कृत "बलि पीठम्", वीना देवी द्वारा रचित "हैंग मी क्विक" तथा "पुण्यभूमि ऑंखें खोलो", सीता देवी कृत "समता महिमनिधि" विशेष रूप से पठनीय हैं ।

तेलुगु का कहानी साहित्य इतना समृद्ध है कि विश्व की किसी भी भाषा की रचनाओं से समता कर सकता है । विश्व-कहानी-प्रतियोगिता में

श्री पद्मराजु कृत तेलुगु कहानी "गालि वान" (तूफान) ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया था। गुणाढ्य ने इसी प्रदेश में बृहत्कथा लिखी थी। वस्तुतः तेलुगु में कहानी साहित्य का प्रादुर्भाव सामाजिक सुधार को लेकर हुआ था। स्वतन्त्रता के पूर्व भी उच्चकोटि के २०-२५ ऐसे कथाकार हुये, जिन्होंने तेलुगु कहानी को न केवल समृद्ध किया अपितु प्रतिष्ठा भी दिलायी। स्वतन्त्र्योत्तर काल में कम से कम सौ उत्तम कथाकार हुए हैं। उन सब का उल्लेख करना सम्भव नहीं है। स्वतन्त्रता के पूर्व से कहानी-लेखन में अपना अमिट स्थान बनाकर बराबर कहानी के विकास में योगदान देने वालों में सर्वश्री कोडवटिगंटि कुटुंबराव का नाम उल्लेखनीय है। अन्य उल्लेखनीय कथाकारों में चेलम, बुच्चि बाबू, गोपी चन्द, वट्टिकोट. आलवार स्वामी, मुनि माणिक्यम्, करुण कुमार इत्यादि हैं। स्वातन्त्र्योत्तर कथाकारों में सर्वश्री राचकोंड विश्वनाथ शास्त्री, चागंटि सोमयाजुलु, कालीपट्टन रामाराव, पुराणम् सुब्रह्मण्य शर्मा, सी० एस० राव, सीता देवी, कोम्मूरी, मुप्पाल रंगनायकम्मा वीरांजी, मारुती राव, बन्निवाडा, कांताराव नवीन, बीना देवी आदि ने उत्कृष्ट कहानियां रची हैं।

तेलुगु की श्रेष्ठ कहानियों में नीली, उरुम्मडि ब्रतुकुलु, पेवमेंट, ए मैटर ऑफ नो इम्पोर्टेन्स, केलु पिल्लै चावु, यज्ञ आदि गिनी जाती हैं। युवा पीढी के लेखक बड़ी सुन्दर रचनाएँ कर रहे हैं। सामाजिक, भावात्मक, ऐतिहासिक, व्यंग्य प्रधान आदि कहानियाँ विपुल संख्या में लिखी जा रही हैं।

आज की तेलुगु कहानी में केवल पीडित-शोषित मानव का ही चित्रण नहीं अपितु समाज का यथार्थ चित्रण, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी इन कहानियों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। आंचलिक कहानियाँ भी जनता की बोली और क्षेत्रीय बोली में लिखी गई हैं।

नाटक के क्षेत्र में तेलुगु का विकास अभूतपूर्व है। तेलुगु रंगमंच का उद्भव एक शताब्दि पूर्व हुआ था। तब से आज तक हजारों नाटक रचे गये और मंच पर अभिनीत हुए हैं। स्वतन्त्रता के पूर्व अधिकांश नाटक पौराणिक, ऐतिहासिक रहे। सामाजिक नाटकों की संख्या भी कम न थी, किन्तु १९४७ के बाद समस्याप्रधान नाटक, कृषक, मजदूर एवं जमींदारों के अत्याचारों को आधार बनाकर भी रचे गये। तेलुगु नाटक को एक कला मानकर उच्च शिक्षाप्राप्त परिवारों ने उसके विकास में योगदान दिया। स्वयं स्वर्गीय महाकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर तेलुगु नाटक देखने विजयवाडा गये थे।

आज के नाटककारों में राचकोंड, विश्वनाथ शास्त्री, गोल्लपूडि, मारुति राव, आत्रेय, नरस राजु, भमिडिपाटि, कोर्डाल गोपाल राव, बोम्मिडिल्लि, गुर्रं रार, तिनिनेट्टि, श्री रामपूर्ति अनिसेट्टी, सुब्बाराव, पालगुम्मि

पद्मराजु, सोमंचि यज्ञन्न शास्त्री आदि रेडियो रूपकों की रचना मे सर्वश्री देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री, डॉ० सी० नारायण रेड्डी, आरुद्र, बोम्मिरेड्डीपल्लि सूर्याराव, पिनिशेट्टि आदि के नाम लिये जा सकते है।

तेलुगु साहित्य की अन्य विधाओ का भी आज बडी तेजी के साथ विकास होता जा रहा है। बाल-साहित्य, समीक्षा, गद्य-साहित्य, एकाकी, जीवनियाँ इत्यादि भी प्रतिभाशाली लेखको द्वारा पूर्वाधिक विकास को प्राप्त हो रहे है। कुल मिलाकर हम यही कह सकते हैं कि तेलुगु साहित्य भारत के अन्य साहित्यों की तुलना में किसी भी दशा में कम नही।

———

३
दिगंबर कविता

आधुनिक तेलुगु कविता की नवीनतम प्रवृत्ति "दिगम्बर कविता" कहलाती है। इस कविता के प्रणेता छः प्रमुख कवि जो क्रमश नग्न मुनि, निखिलेश्वर, ज्वालामुखी, चेरंबडराजु, भैरवैय्या और महास्वप्न हैं। इन लोगों ने अपने नाम से दिगम्बर संवत् चलाया है, जिसके क्रमशः छः वर्ष हैं। प्रथम वर्ष नग्नमुनि के नाम से समाप्त हुआ और द्वितीय वर्ष निखिलेश्वर नाम से दिसम्बर १९६६ को प्रारम्भ हो चुका है।

दिगम्बर कविता का प्रथम संग्रह डेढ वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुका था और द्वितीय संग्रह "दिगम्बर कवि—संग्रह २" नाम से प्रकाशित हो चुका है और इस संग्रह का प्रमोचन सन् १९६६ दिसम्बर १९वीं तारीख, रविवार, रात्रि के ठीक बारह बजे चिरंजीवी जंगाल चिट्ट (फिलहाल होटल क्लीनर है) के हाथों से हुआ।

दिगम्बर कवि भाग-२ मे कुल तीस कविताएँ है। कवियों ने अपनी कविता के लिए "दिक" की सज्ञा दी है।

प्रारम्भ में अपने आशय का उद्घाटन करते हुये कवियों ने आठ पृष्ठों मे एक वक्तव्य भी दिया है। उसका शीर्षक "दिगम्बर संवत" से दिया। उपशीर्षक समकालीन जीवन के प्रति दिगम्बर कवियों का दृष्टिकोण तथा "हम क्या चाहते है" नाम से प्रस्तुत किया है।

बंगाल मे "हंग्री जनरेशन", "भूखी पीढी" नाम से कविता का अत्याधुनिक आन्दोलन चल पडा है, जिसके प्रवर्तक बैस रस है, किन्तु प्रमुख दो ही हैं—नन्दीवन चट्टोपाध्याय तथा शक्ति चट्टोपाध्याय। ये लोग एक बुलेटिन भी प्रकाशित कर रहे हैं, जिसमें अपने आदर्शों की चर्चा भी करते है।

उनकी दृष्टि में "इतिहास नामक कोई वस्तु है नही। इतिहास पर गर्व करने की आवश्यकता बिल्कुल नही है। ईश्वर केवल माम का पिण्ड है। मनुष्य के व्यक्तित्व में आत्मा का संयोग करना ही शिल्प है।"

भूखी पीढ़ी की कविता का उद्देश्य विद्रोह, क्रान्ति तथा परम्परागत सम्प्रदायों का ध्वंस ही है। इसी पीढ़ी के कवि अपने हृदय में अशान्ति को स्थान बनाये समाज के प्रति अपना आक्रोश अभिव्यक्त करते हुए उसे परिवर्तित करने की आकांक्षा रखते हैं।

उनका कहना है, शरीर के साथ मन का, हृदय के साथ मेधा का कहीं साम्य नहीं बैठता।

इस पीढ़ी के कवियों ने अपने आन्दोलन का एक प्रयत्न गतवर्ष कलकत्ते में प्रदर्शित किया। मुँह पर विभिन्न रंगों के कागजों के विविध चित्रों को लटकाये सारे नगर में जुलूस निकाला। उन कागजों के चित्रों पर लिखा था— "अपने मुँह पर के घूँघट को हटा दीजिये"। इस पीढ़ी के कवियों ने "ट्राफिक" को बन्द कर जनता की स्वतन्त्रता में रुकावट डाली थी, परिणामस्वरूप उन पर पुलिस ने मुकद्दमा चलाया था।

इस प्रकार हम लोग देखते है कि भूखी पीढ़ी परम्परागत सामाजिक व्यवस्था, विचारधारा तथा सम्प्रदायों के विरुद्ध अपने विद्रोह का स्वर लिये समाज के सम्मुख प्रस्तुत है।

दिगम्बर कवि भी सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक क्षेत्रों में जो गन्दगी फैली हुई है—उसका प्रक्षालन करने के हेतु अपना एक नवीन दृष्टिकोण लिये नई मान्यता स्थापित करने के विचार से अपनी कविता यानी "दिक" प्रस्तुत करते हैं।

जीवन के प्रति इन षड्कवियों का दृष्टिकोण इस प्रकार है—मानव में भौतिक कामना अथवा वाञ्छा सहज है, स्वाभाविक है। इस कामना के साथ अचेतन रूप मे स्थित तीसरा विश्व भी सत्य है। इसी भाँति मानसिक एकाकीपन भी यथार्थ है। किन्तु यह एकाकीपन मात्र ही मानव का अस्तित्व नहीं है। चेतना समन्वित हो आत्मसन्तुष्टि के साथ अग्रसर होने वाला जीवन ही वास्तव में मनुष्य का अस्तित्व है।

सच्चे मानव की कसौटी इन कवियों ने निम्न प्रकार से स्थापित की है :

कठिनाइयाँ मानवता की विषम परीक्षाएँ हैं। उस दशा मे भी तलवार की धार पर चलते जो मानवता को नहीं भूलता और जो अन्तर के संगीत को सुनता है वही सच्चा मानव है।

मानव-जीवन का कोई अर्थ है और परमार्थ है। जीवन निरर्थक नहीं है; इस शून्य मे कहीं न कहीं अणु मात्रा मे सही आशा की किरण छुपी हुई है,

जीवन की प्रत्येक वस्तु तथा घटना के लिए—सार्थकता और नि.

दोनों है । इसमें अपरिचित व्यक्ति अन्धविश्वास में आकर किसी पर अपना दृढ विश्वास बना करके कर्म सिद्धान्त के भय से पत्थरों की पूजा करने वाला ही वास्तव में नास्तिक है ।

हम ऐसे मानव को अपने बुलन्द स्वर में पुकारते है, जो किसी प्रकार के आच्छादन के समक्ष अपना मस्तक नहीं झुकाता तथा किसी प्रकार के भय से संत्रस्त नही होता; ऐसे सजीव मानव-समुदाय का आह्वान करते है ।

दिगम्बर कवियो ने अपनी पुस्तक की भूमिका में अपनी कविता के आदर्शों का जो उल्लेख किया है उनमें समाज, राजनीति, धर्म, इतिहास इत्यादि के सम्बन्ध में भी अपने दृष्टिकोण स्पष्ट किये हैं ।

जीवन की व्याख्या करते हुए कवियों ने जो बाते स्पष्ट की है, वे बहुत ही उपयुक्त है ।

वे कहते है, मनुष्य का अस्तित्व भौतिक आनन्द के साथ मन को सर्वदा सचेतन बनाकर सब मे स्थान बना करके अपने आप मे जीवित होना ही है ।

वे जीवन की तटस्थता का विरोध करते है और सुझाते है कि मनुष्य का जीवन एक द्वीप न बने, बल्कि सहचरों मे भी प्रेरणा-स्रोत बने ।

इस सन्दर्भ मे वे आज के मानव को पथ-भ्रष्ट बताते है—समकालीन वैज्ञानिक युग मे व्यक्ति स्वय अपने आप मे संघर्ष कर रहा है । धन-सम्पत्ति के पीछे पागल हो सुख और लालच के पीछे कुत्ते की भाँति घूम रहा है । अपनी छाया को देख भय-विह्वल हो अकेला रह गया है । सुख प्रदान करने वाले साधन अन्त मे उसकी आत्मा को बाँधने वाली बेडियाँ बन गयी है ।

आखिर वे कहते हैं—अभ्युदय के पथ मे मानव इस धरातल पर छूट गया है । उसकी भटकी हुई आत्मा को पकड सच्चा मानव बनाने की हमारी आकांक्षा है ।

आज के राजनीतिज्ञों की स्थिति का परिचय देते हुए कवि बताते है—सड़ी, गली, जाति, धर्म, वर्ण तथा वर्ग-व्यवस्था रूपी कीचड के गड्ढे मे गिरकर कीड़ों की भाँति राजनैतिक नेता तैर रहे हैं ।

धर्म, सम्प्रदाय तथा विभिन्न राजनीतिक वादो के सम्बन्ध मे भी अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं—परिणाम दशा में मानव के कल्याण के हेतु उसे देवता बनाने के विचार मे भी जो धर्म और सिद्धान्त प्रचलित हुए हैं वे सब युग-परिवर्तन के साथ अपने स्वरूप और स्वभावों को भी खो बैठे हैं । राजनीति के क्षेत्र मे भी जो वैविध्य है उसके भँवर में पड़कर मनुष्य को पिसने वे पसन्द नही करते; इसलिये वे कहते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक

क्षेत्र में मनुष्य को दाँव पर रखकर वाद रूपी पाँसों से छल-कपट का जुआ न खेलना चाहिये।

समाज मे आर्थिक समता लाने के लिये साम्यवाद का समर्थन करते हुए भी वैयक्तिक स्वेच्छा पर जोर देते हैं।

इसी भाँति विश्व-शान्ति के नाम पर निरन्तर जोरदार शब्दो मे भाषण देने वाले लोग अणु-अस्त्रों की परीक्षाओं के नाम पर विश्व के वायुमडल को दूषित करने वाले प्रमुख राष्ट्रो के नेता, चाहे वे किसी वाद विशेष के समर्थक हों, उनके उन कुकृतियो के प्रति दिगम्बर कवि घृणा प्रकट करते हैं।

साहित्य के प्रति अपनी धारणा अभिव्यक्त करते हुए वे विशुद्ध मौलिकता का समर्थन करते हैं और साहित्य के नाम पर कई टन वजन वाला जो वाङ्मय उत्पन्न किया जा रहा है उसको जलाने के लिए आवश्यक रचनाओं का स्वागत करते हैं।

साहित्य में वर्णित मिथ्या, दभ इत्यादि का त्याग करने की सलाह देते हुए आज की काव्य-रचना मे जीवन की यथार्थता, सरलता, युग का सन्देश तथा अनुभूतियो की अभिव्यक्ति को साँस के रूप मे सेवन करने वाले आधुनिक मानव के अस्तित्व का चित्रण दिगम्बर कवि चाहते हैं।

दिगम्बर कवियों ने भावो को व्यक्त करने का जो विधान बनाया है वह प्रशसनीय है। शब्दों के माध्यम से भावो के उद्वेग को जिस रूप में अभिव्यक्त किया है वह अनोखा है, अपूर्व है। कहीं-कहीं अमूर्त भावों को मूर्त वस्तु अथवा प्राणियो के साथ उपमा देकर कवि ने अमूर्त को मूर्त और मूर्त को अमूर्त रूप प्रदान किया है। ऐसे स्थलों पर कवियो के वाक्य हमें कहावतो तथा मुहावरों का स्मरण दिलाते है—

> जैसे तृष्णा गिरगिट की भाँति लचकदार बनी बढी।
> तृप्ति-वन टुकड़े-टुकड़े हो गया।
> अहंकार फूटकर अरिषड्वर्गों का लावा छितराया।
> एकाकीपन दिन-प्रति-दिन ताप की भाँति घनीभूत हो गया।
> जमाना गिरगिट की भाँति तमाशा का रग पा गया।

कवि ज्वालामुखी ने अपना आत्म-परिचय "पुनर्योनी-प्रवेशम्" नामक कविता में दिया है। कहते है—

> शताब्दियों के विकास की प्रगति पर
> अनादि से बढ़ता हुआ अनन्त मानव हूँ मैं।
> — ... ...

दिगम्बर कवियो ने अपने कविता-सग्रह भाग दो के प्रारम्भ मे "दिक" नामक शीर्षक के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया है—जैसे प्रथम सकलन मे हमने अपनी कविता-प्रक्रिया को गद्य कविता नही माना और दूसरो के कहते हुए भी हमने उसे रोकने का विश्वास प्रकट किया। उसी भाँति द्वितीय संकलन से अपनी कविता को "दिक" का नामकरण किया है।

इन "दिक" के उपयोग का महत्व भी बताया है—बीमारी की तहो को चीर कर कास्मिक मार्ग का निर्देशन करने वाली ये "दिक" इनकी सीमाएँ मानवता के मूल्य है।

नमूनार्थ दो-चार कविताओ को यहाँ प्रस्तुत कर रहे है—

मैं अपने देश मे एकाकी हूँ
जब तब समक्ष खडे हो
तलवार निकाल प्रश्न करते है "हाम्लेट"।
देश ने मेरे लिए जो बचा रखा
महान समस्याओ का फदा
प्रति नित्य वह सर पै ऐंठता घूमता
फलत कसती जाती भूख औ
बेकारी की गाँठे
उन गाँठो मे
सुन्दर मुखो के फल
प्रफुल्लित पखुडियो के मध्य
कटे डैनो से
असहाय दशा का विसाद
विसाद की फसलो के बीच
सूर्यमुखी सुमन की भाँति लटकने वाला
चन्द्रमा एक सफेद चमगीदड है।
मेरी संस्कृति ने जब मुझे लात मारा
हजारो वर्षो की प्रगति आँखों के समक्ष
मेरे विचारों के हमलों से शिथिल हो
इतिहास मे कही स्थान न पा
समुद्र तट सारा झाऊ से भरा
नक्षत्र सब अल्यूमिनियम सिक्को की भाँति चमकते जब
मेरे घर की खिडकी मे से दूसरे समुदर की हवा
जोर से वह विश्वासो को ध्वंस करती
एक-एक पृष्ठ के पलटने पर

सृष्टि-योनि में फिसला विचित्र विकार रूप हूँ मैं
अब भी अविकसित मानव हूँ मैं।
पचभूत पयाधरो को निचोड़-निचोड़कर
प्रच प्राणो का पोषण कर बढ़ाया मैंने।
नाद-ब्रह्म में ब्रह्माड को झूला बना झूला हूँ मैं
सतृप्ति रूपी इन्द्रधनुष मे अनुभूतियो की
तन्त्रियो को झंकृत किया मैंने
आनन्द को आकृति दे जलाया मैंने।
उस दिन मानवता के झरने झर-झर उठे
अच्छाई के तीर सुशोभित हो उठे।
पाप-पुण्य से अतीत जगत शाति-ज्योत्स्ना को पाला
वर्ग-विहीन मानव स्वर्ग
नदियो की सभ्यता मे तीर्थ हो भासित हुए।

आगे कवि कहते है—

हृदय-मेधा के मध्य तरलता टूटी
जल से विकास गति गगन तक बढ़ी
विश्व मेरी हथेली पर आशा बनकर नाच उठा।

यह कविता बडी लम्बी है। कही-कही कवि अपना आत्म-परिचय देते हुए जो वाक्य बताते है वे हमे सोचने, समझने और चिन्तन करने को बाध्य करते है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यो पर ध्यान दीजिए—

अश्रु-जल की मधुकरी माँगनेवाला युग-भिक्षुक मैं हूँ
विज्ञान द्वारा प्रसारित विष-किरण से दृष्टि खोया चक्षु मैं हूँ
अहकार रूपी क्राम पर हास किया रक्त गुलाबी मैं हूँ

कवि ने कुछ ऐसे भी प्रयोग किये है जो अपनी अलग विशेषता रखते है; जैसे—

"मन की मस्जिद में नमाज की पुकार की आहट"

चरवन्ड राजू ने अपनी कविताओ का ध्येय बताते हुए आत्मा का महत्व इस रूप मे प्रस्तुत करते है—

निरकाल तक जगत् पर शासन करने वाली आत्माएँ काल
की प्रतिबिंब है
कविता कलियो की गतियो को, रीतियो को सुनाती है।

दिगम्बर कवियों ने अपने कविता-संग्रह भाग दो के प्रारम्भ में "दिक" नामक शीर्षक के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया है—जैसे प्रथम सकलन में हमने अपनी कविता-प्रक्रिया को गद्य कविता नही माना और दूसरो के कहते हुए भी हमने उसे रोकने का विश्वास प्रकट किया। उसी भाँति द्वितीय सकलन से अपनी कविता को "दिक" का नामकरण किया है।

इन "दिक" के उपयोग का महत्व भी बताया है—बीमारी की तहों को चीर कर कासिमक मार्ग का निर्देशन करने वाली ये "दिक" इनकी सीमाएँ मानवता के मूल्य है।

नमूनार्थ दो-चार कविताओं को यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं—

मैं अपने देश मे एकाकी हूँ
जब तब समक्ष खडे हो
तलवार निकाल प्रश्न करते है "हाम्लेट"।
देश ने मेरे लिए जो बचा रखा
महान समस्याओं का फंदा
प्रति नित्य वह सर पै ऐंठता घूमता
फलत. कसती जाती भूख औ
बेकारी की गाँठे
उन गाँठो मे
सुन्दर मुखों के फन
प्रफुल्लित पखुड़ियों के मध्य
कटे डैनो से
असहाय दशा का विसाद
विसाद की फसलों के बीच
सूर्यमुखी सुमन की भाँति लटकने वाला
चन्द्रमा एक सफेद चमगीदड है।
मेरी संस्कृति ने जब मुझे लात मारा
हजारो वर्षो की प्रगति आँखों के समक्ष
मेरे विचारों के हमलो से शिथिल हो
इतिहास मे कही स्थान न पा
समुद्र तट सारा झाऊ से भरा
नक्षत्र सब अल्यूमिनियम सिक्को की भाँति चमकते जब
मेरे घर की खिडकी मे से दूसरे समुदर की हवा
जोर से बह विश्वासो को ध्वंस करती
एक-एक पृष्ठ के पलटने पर

कुक्कुट युद्ध
कुक्कुटों की भांति लड़ने वाले वीर
पानी में ही परस्पर सर काटने वाले
बोब्बिलि के शूर-वीर
वायु के झोंकों से बुझी दीपों की बत्तियां
शेष अटपटे अँधेरे में
कतार में खड़े करेंट के दीपकों में
मैं अपने देश का पराया हूँ
स्नेह न देने वाले देश में
स्नेहहीन प्रत्येक व्यक्ति एक द्वीप है।

"—निखिलेश्वर"

४

तेलुगु का शतक साहित्य

तेलुगु का शतक साहित्य इतना समृद्ध है कि इसने तेलुगु साहित्य में अपना एक युग ही बना लिया है। इसे तेलुगु की एक विशिष्टता कहें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। प्राकृत भाषा में "सत्तसई" अथवा "सप्तशती" नाम से जो काव्य-संकलन चल पड़ा है, वही हिन्दी साहित्य में "सतसई" नाम से व्यवहृत है। तेलुगु का शतक संकलन भी इसी कोटि में आता है। परन्तु सतसई में जहाँ ७०० अथवा ७१३ पदों का संग्रह होता है, वहाँ शतक में १०० अथवा १०८ पदों का संकलन होता है। शतक की रचनाएँ भक्ति, नीति, उपदेशात्मक एवं शृंगारपरक भी हैं। चौथे चरण में मकुट होता है। उसमें कवि अपने इष्टदेव, गुरु, मित्र अथवा अन्य अपने प्रियजनों को सम्बोधन करता है। सतसई की भाँति यह शतक भी मुक्तक काव्य होता है। इसमें भी एक पद से दूसरे पद का बिल्कुल सम्बन्ध नहीं होता है अपितु वे सभी पद भाव से अपने में पूर्ण होते हैं।

तेलुगु के प्रायः सभी ख्यातनामा कवि प्रारम्भ में शतककर्ता ही रहे हैं। यह शतक वाङ्मय बहुत समय तक अज्ञात ही रहा है। कुछ पण्डितों का विचार है कि शतक-रचना अंग्रेजी की भाव-कविता जैसी है। यह साहित्य-शाखा आज इतनी व्यापक बन गयी है कि इस पर अनेक बृहत् ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुके हैं। उनमें श्री वंकूरि सुब्बाराव का "शतक कवुल चरित्र" (शतक कवियों का इतिहास) और श्री वेदमु वेंकट कृष्ण शर्माजी का "शतक वाङ्मय सर्वस्वमु" उल्लेखनीय है। उनके अलावा श्री काशिनाथुनि नागेश्वर-राव जी के "शतक-संग्रह", श्री वीर राघव शास्त्री, श्री एलिकाति सम्भा राव, वाविल्ल प्रेस वालों के शतक-संग्रह इत्यादि भी प्रसिद्ध हैं। इससे हम इस साहित्य शाखा की समृद्धि एवं व्यापकता का परिचय पा सकते हैं। इस प्रकार के लगभग १,००० शतकों का अब तक पता लगा है। विद्वानों का कथन है कि तेलुगु में करीब २,५०० शतक रचे गये हैं। इनमें केवल ६०० [illegible] पर शोध-कार्य हो पाया है।

प्राचीन समय में साहित्यिक महत्व प्राप्त काव्यों की अधिक प्रधानता रही। शतक साहित्य का एक छोटी-सी शाखा मानकर इसका अनादर ही किया गया। महाकाव्य तथा प्रबन्धकाव्य रचना को अधिक गौरव प्राप्त था। प्राचीन आन्ध्र महाकवियों की दृष्टि में शतक उल्लेखनीय कृति नहीं माना गया। परन्तु सख्या की दृष्टि से, काव्य-गुण भावना की प्रौढता इत्यादि में शतक भी अन्य काव्यों से कम नहीं है। समीक्षकों ने भी इस ओर पहले ध्यान नहीं दिया। वे० वमूरि सुब्बारावजी ने जब तक "आन्ध्र शतक कवुल चरित्र" प्रकाशित नहीं किया, तब तक वे सभी शतक आन्ध्र-जगत् के लिए अज्ञात ही रहे। परन्तु "सुमती शतक", "दाशरथी शतक", "भास्कर शतक", "नरसिंह शतक" और कालहस्तीश्वर शतक" को अधिक प्राप्त था। ये सभी स्कूलों में पढाये व कंठस्थ कराये जाते थे। शृंगार, भक्ति एवं नीति शतक प्रचार में थे और उस समय मन्दिर जाते समय ग्रामीण, वृद्ध व युवक भी इनका पाठ किया करते थे। अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से क्रमश वह क्रम जाता रहा।

आज के युग में यह धारणा हो गई है कि वाङ्मय के माने केवल पद्य काव्य ही नहीं है। वह केवल वाङ्मय की एक शाखा मात्र है। उसके साथ अन्य शाखाओं की समुचित एवं सम्पूर्ण वृद्धि करने पर आन्ध्र वाङ्मयरूपी कल्पवृक्ष का सौन्दर्य निखर सकेगा। इस नग्न सत्य को आज के सभी साहित्यिक, समीक्षक, इतिहासकार आदि सब ने पहचाना है। सच पूछा जाए तो काव्य से भी शतक उत्तम कृति माना जा सकता है। काव्यों में कथावस्तु कवि की स्वतन्त्रता को उभी रूप में व्यक्त करने से रोक देती है। वहाँ कवि और काव्य के बीच में कथा उपस्थित रहती है। शतकों में ऐसी बात नहीं है। वह आत्म कविता पद्धति की है।

अब तक के उपलब्ध शतक साहित्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आन्ध्र वाङ्मय में शतक साहित्य का आविर्भाव भक्ति प्रधान शैव सम्प्रदाय द्वारा हुआ। सच पूछा जाए तो तेलुगु का प्रथम शतक श्री यथा-वाक्कुल अन्नमय्या का "सर्वेश्वर शतक" माना जाना चाहिए। परन्तु इतिहासकार श्री मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्युलु के "शिव तत्वसार" को शतक मानकर उसे ही शतक कविता का प्रारम्भिक गौर[illegible] है। नियम [illegible] शतक में सौ पद ही होने चाहिए, किन्तु [illegible] भक्ति पद होने पर भी वह शतक के अन्तर्गत लिया

भक्ति प्रधान है। शैव कवियों ने अपने शतकों की रचना भक्ति एव धर्म प्रचारार्थ की।

क्रमशः साहित्य में भक्ति, नीति, योग-भोग, हास्य, उपदेश आदि समस्त प्रकार के विषय वर्णित होते गये। उनमे शृंगार, करुण, हास्य, अद्भुत व शान्त रसों का भी वर्णन हुआ है। शब्दालंकारों का अभाव भी नहीं है। व्याज-स्तुति, व्याज-निन्दाओं से पूर्ण भक्ति शतक भी हैं और वेदान्त प्रबोधित भी। काव्य की चित्र-कथा-कल्पना को छोड़ शेष काव्य के समस्त प्रकार के लक्षण तेलुगु शतक में आ गये। उनमे अनुपलब्ध वस्तु कोई नहीं है। यहाँ तक कि १८वी सदी मे काव्य-कविता के लक्षण भी शतक कविता मे वर्णित होने लगे। विष्णुपरक—राम, कृष्ण, नृसिंह इत्यादि शतकों मे दशावतार तथा शैव प्रधान शतकों मे त्रिपुरासुर सहार का वर्णन हुआ है। यही नही, महाभारत, रामायण, भागवत् इत्यादि पौराणिक गाथाओं को भी इन शतकों ने जन साधारण तक पहुँचाया और प्रचार किया। १७वीं शताब्दी से १६वीं शताब्दी के बीच मे रचे गये शतकों मे देश, काल, समाज, देशी राज्यों व जमीदारों का अच्छा वर्णन मिलता है। स्वर्गीय श्री सुरवरम प्रताप रेड्डी को "आन्ध्रुल सांघिक चरित्र" (आन्ध्रवासियों का सामाजिक इतिहास) की रचना में शतकों से बहुत बड़ी सहायता मिली है। इस प्रकार इन शतकों का महत्व बहुत बड़ा है। जीवन के प्राय. समस्त क्षेत्रों का वर्णन हमे शतकों मे प्राप्त होता है। इस लेख मे हम एक सहस्र शतकों और उनके रचयिताओं का परिचय तो दे नही पायेंगे। कुछ प्रमुख शतकों व इनके कर्त्ताओं का परिचय देना पर्याप्त होगा।

१. **शिवतत्व सारम**—इसके रचयिता श्री मल्लिकार्जुन पंडिताराध्युलु प्रथम तेलुगु शतक-स्वरूप-निर्माता माने जाते हैं। इनका समय सन् ११६० के लगभग है। इस शतक का मुकुट शिव है। परन्तु कुछ पद्यों मे शिवजी के काव्य नाम "महेशा", "रुद्रा", "भजा" इत्यादि अनेक पर्यायवाची शब्दों का भी प्रयोग इस शतककर्त्ता ने किया है। इस शतक का कतिपय पद्यों में शतक-लक्षण भी दिखलाई नही देते। इतना होते हुए भी "पंडिताराध्य चरित्र" के रचयिता श्री पालकुरिकि सोमनाथ कवि ने शिवतत्वसार को शतक ही माना है। कुछ आधुनिक समीक्षकों ने भी बड़ी छान-बीन के उपरान्त इसे प्रथम शतक का गौरव प्रदान किया है। इस शतक मे अद्वैत मत का खडन तथा आडम्बरपूर्ण पूजा का विरोध किया गया है और साथ ही साथ शिवगण वर्णन, भक्ति की महिमा इत्यादि विषयों पर लेखक ने प्रकाश डाला है। इसी नाम से कन्नड़ में भी एक शतक है, वह इसका अनुवाद माना जाता है। श्री पालकुरिकि सोमनाथ ने यह भी लिखा है कि श्री मल्लिकार्जुन पंडिता-

राध्युलु ने कुल ८३ ग्रन्थों की रचना की। परन्तु केवल "शिवतत्व सार" ही अब तक उपलब्ध हुआ है।

२ सर्वेश्वर शतक—कर्ता —यथावाक्कुल अन्नमय्या (सन् ई० १२१८-१२८५) इसमें १४२ शार्दूल वृत्त हैं। कर्ता ने १३० व १४२ वें पद्यों में अपने शतक रचना-काल के सम्बन्ध में लिखा है कि वह कर्नूल जिले के दुद्दिकोंडा नामक ग्राम के निवासी थे। यों तो वह गोदावरी निवासी थे, लेकिन श्री शैल की यात्रा से लौटते समय पल्नाडु तालुके की एक धर्मशाला में अपना निवास बनाया और वहीं पर अपने सर्वेश्वर शतक की रचना कर बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की। इनके पद्य भक्ति प्रबोधपूर्ण हैं। अधिकाश पद्य अद्वैत भावों से आत्मा अनात्मा विचारों तथा वेदान्त रहस्य तथा नास्तिकों को भी परमात्मा की ओर झुकाने में समर्थ हैं।

कुछ लोग इन्हें पालकुरिकि सोमनाथ कवि का शिष्य मानते हैं। लेकिन यह कदापि सम्मत नहीं है। ये दोनों समस्त विषयों में भिन्नता रखते हैं। गुरु-शिष्य-सम्बन्ध का कोई अन्य प्रमाण भी प्राप्त नहीं हुआ है।

३. वृषाधिप शतक—कर्ता—"कवि ब्रह्म" श्री पालकुरिकि सोमनाथ कवि (१२७०-२२)।

शतक कवियों में सोमनाथ जी का विशिष्ट स्थान है। इन्होंने द्विपद-पद विन्यास के साथ तेलुगु काव्य साहित्य के क्षेत्र में कई नयी रीतियों को जन्म दिया और विद्वत्कवियों की प्रशंसाएँ प्राप्त की। श्री सोमनाथ जी ने समस्त शतक लक्षण समुदाय को अपने वृषाधिप शतक में समलंकृत किया। इसलिए यह समस्त शतक साहित्य का शिरोमणि बना हुआ है।

श्री सोमनाथ ने २८ ग्रन्थों की रचना की है। उनमें ७ पुस्तकें तेलुगु की, आठ संस्कृत और शेष कन्नड की हैं। इनमें "बसव पुराण", "पंडिताराध्युल चरित्रम्" और "वृषाधिप शतकम्" अत्यन्त मुख्य हैं। इस शतक कर्ता के जीवन से सम्बन्धित अनेक अद्भुत कहानियाँ जनपदों में प्रचलित हैं, जो इनकी भक्ति व पाण्डित्य का परिचय देती हैं।

श्री सोमनाथ जी का जन्म 'पालकुरिकि' नामक गाँव में हुआ था। यह ओरुगल्लु (वर्तमान समय के वारंगल) के समीप में है। इससे स्पष्ट है कि वह तेलंगाना के निवासी थे। वह अच्छे भक्त भी थे। शैव सम्प्रदाय एवं आचारों का पालन करते हुए लोगों में शैव धर्म का प्रचार करते रहे। इनके कई शिष्य भी थे। बीच-बीच में ये श्री शैल आदि शैव तीर्थों का सेवन भी करते रहे। कुछ विद्वानों का मत है कि यह सोमनाथ कृत 'वृषाधिप शतक' ही तेलुगु

श्री सामनाथ कवि सर्वतोमुखी प्रतिभाशाली थे। वह वेद-वेदांगों मे पारंगत थे, तेलुगु, तमिल, कन्नड, महाराष्ट्र व सस्कृत भाषाओं मे समान अधिकार रखते थे। वह षट् शास्त्रो मे प्रवीण थे। इन्होने 'वसव पुराण' और 'पडिताराध्य चरित्र' नामक काव्यों को देशी छन्द द्विपद मे रचा था। इनके 'वृषाधिप शतक' मे हम सोमनाथ कवि की अनेक कविता धाराओं का परिचय पा सकते है। ये पुस्तकें उनकी 'बसवेश्वर' (शिव) भक्ति का सुन्दर उदाहरण है। इस शतक के अधिकांश पद्य चपक अथवा उत्पल माला।वृत्त है। इस शतक का मुकुट 'बसवा' अथवा 'वृषाधिपा' है। यह समस्त शतक-लक्षण समन्वित रचना है। मल्लिकार्जुन पडित ने शिवतत्वसार द्वारा शतक के एक स्वरूप को प्राप्त किया तो दूसरी ओर वृषाधिप शतक द्वारा शतक काव्य-कामिनी सर्वालंकारशोभिता हो प्रकाशमान है। इस शतक की शैली संस्कृत समास जटिल है। इसमे कुल १०६ पद्य है। अनुप्रास, नियम और शब्दालंकार वैचिग्य इसकी विशेषताएँ है। कवि की भक्ति अपूर्व एवं अद्भुत थी। पद-पद पर उन्होने अपने आराध्य को पुकारा है।

४. सुमती शतक—कर्ता—वद्देना (भद्र भूपाल १३, १४ सदी)

आन्ध्र देश के आबाल-वृद्धों मे विशेष रूप से प्रचार प्राप्त शतक 'सुमती शतक' है। इसके पद्य कंठाग्र पर न रखनेवाला व्यक्ति आन्ध्र भर मे ढूँढने पर भी नही मिलेगा। इससे जन-साधारण में इस शतक की लोकप्रियता का परिचय पाया जा सकता है। इसका प्रत्येक पद्य सुभाषित-जैसा महत्वपूर्ण है। परन्तु इस शतक के रचयिता के सम्बन्ध में अब तक कोई सर्वमान्य निर्णय नहीं हुआ है। कुछ लोगों का ख्याल है कि 'सुमति' नामक किसी जैन भिक्षु ने 'आत्मनाम संबोधन' द्वारा इस प्रकार की नीतियो का उपदेश दिया है।

श्रीमान् वल्लि रामकृष्ण कवि ने अपने 'नीतिशास्त्र-मुक्तावली' नामक ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है कि सुमति शतक 'भद्रभुपाल कवि' विरचित ही हो सकता है। श्री कूचिमंचि तिम्म कवि ने अपने 'सर्वलक्षण सार संग्रह' नामक लक्षण ग्रन्थ की भूमिका मे इस शतक को भीम कवि कृत बताया है। परन्तु इस शतककर्त्ता के सम्बन्ध में इस समय के अधिकाश विद्वानो की राय है कि यह भद्रभूपाल रचित ही है। यह शतक सुन्दर, सरल एवं सुबोध तेलुगु मे रचा गया है। भीम कवि की शैली संस्कृत जटिल समासयुक्त है।

'सुमती शतक' का प्रत्येक पद एक हीरे के टुकड़े के समान है। इसमे लोकानुभव और नीति का सुन्दर समन्वयात्मक सम्मिश्रण हुआ है। उदाहरण के लिए—

"अपनी सम्पत्ति ही इन्द्र भोग है और अपना
दुःख ही समस्त जगत् की दरिद्रता है।"

"दासी का भी पुत्र क्यों न हो, जिसके पास पैसा है, वही राजा है।"
"प्रेम व विनयपूर्वक देने मे दूध का भी पान नही करते, और जबरदस्ती करने पर विषपान भी करते है।"
अच्छी पत्नी काम के समय अच्छी पत्नी सिद्ध होती है, सेवा के समय दासी, भोजन के समय माता और सोने के समय रंभा।"

यही भाव इस संस्कृत श्लोक मे भी है :

"कार्येषु मंत्री, करणेषु दासी, भोज्येषु माता, शयनेषु रंभा।"
"बिच्छू की पूंछ मे जहर रहता है, मक्खी के सिर में और साँप के दाँत मे, पर दुर्जन के तो सारे शरीर मे विष ही विष भरा है।"

संस्कृत का एक श्लोक है—

"वृश्चिकस्य विषं पुच्छम् मक्षिकस्य विषं शिर:
तक्षकस्य विषं दंष्ट्रा सर्वांग दुर्जने विषं।
"हे सुमती ! इस पृथ्वी मे वचन के लिए प्राण सत्य है। दुर्ग का प्राण उसके वीर रक्षक होते है। नारी का प्राण मान है और चिट्ठी का प्राण हस्ताक्षर होता है।"

वद्देना या भद्र भूपाल से अपरिचित व्यक्ति आन्ध्र मे आपको मिल सकते है परन्तु सुमती शतक के पदो से अपरिचित शायद ही कोई प्रमाण मिलेगा। दस वर्ष पूर्व तक भी सुमती शतक के प्राय सभी पद्य ग्रामीण पाठशालाओं मे बालको से अनिवार्य रूप मे कंठस्थ कराये जाते थे।

५. वेंकटेश्वर शतक—कर्ता—तालपाक अन्नमाचार्युलु (ई० स० १४०८-१५०३)। श्री अन्नमाचार्य जी के वशज सगीत और साहित्य दोनो मे प्रवीण रहे है। ये तिरुपति में स्थित भगवान श्री वेंकटेश्वर के सान्निध्य मे वश परम्परागत रहते आये है। उनमें प्रथम श्री अन्नमाचार्य थे।

भगवान की भक्ति मे लीन हो आशु रूप मे वह प्रतिदिन कुछ कीर्तन बनाकर गाया करते थे। भगवान के प्रति भक्त का निवेदन ही इनके कीर्तन है। गीत-साहित्य मे वह भक्त त्यागराज की कोटि मे आते है।

श्री अन्नमाचार्य जी ने "वेंकटेश्वर शतक" की रचना की है। इसमे एक

सौ चंपक माला एवं उत्पल मालावृत्त है। इस शतक का मुकुट "वेंकटेश्वरा" है। यह एक श्रृंगार प्रधान शतक है। इसमे अलिवेलु मंगा और वेंकटेश्वर की लीलाओं का सुन्दर वर्णन हुआ है। सुन्दर शब्द-योजना, चमत्कार व भाव सौन्दर्य इस शतक की विशेषताएँ है। इनके शतक मे माण्डलिक पदों का प्रयोग हुआ है। भक्ति मे तो ये तेलुगु के महान भक्त कवि पोतन्ना की हमे स्मरण दिलाते हैं।

६. **श्री कालहस्ति शतक**—कर्ता—धूर्जटि कवि।

श्री धूर्जटि कवि कालहस्ती के निवासी और शिव-भक्त थे। इनकी कृति 'श्री कालहस्ति शतक' नाम से विख्यात है। इनकी कविता के सम्बन्ध में 'आन्ध्र वाङ्मय का इतिहास' के लेखक ने लिखा है—"धूर्जटि की शतक रचना गंगा-धारा की तरह वेगमय है।" इस शतक के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद है। कारण, इसकी अनेक प्रतियाँ प्राप्त हुई है। किसी मे १०८ पद्य हैं, किसी मे १२० तो किसी मे १४२-१४८ पद्य है। इस शतक मे ३३ नये पद्यों का समावेश हुआ है। कही-कही अल्प मात्रा मे पाठ-भेद भी है। कुछ विद्वानो का मत है कि कुछ पद्य ऐसे भी आ गये है जो समानार्थ बतलाने वाले है। इस कवि का 'कालहस्ती महात्म्य' अत्यन्त श्रेष्ठ काव्य है।

७. **वेंकटेश्वर शतक**—कर्ता—श्री ताल्लपाक तिरुमलाचार्य। यह अन्नमाचार्य जी के द्वितीय पुत्र थे। स्वयं कवि ने अपने 'वेंकटेश्वर शतक' के अन्तिम पद्य मे इस बात का उल्लेख किया है। इन्होने भी वेंकटेश्वर शतक की रचना की है। इसके अलावा इनके और बारह ग्रन्थ मिले हे। इन बारह ग्रन्थों में से दो शतक हैं। एक नीति प्रधान और दूसरा श्रृंगार रस प्रधान। दोनों का मुकुट 'वेंकटेश्वरा' है। प्रथम शतक सीस छन्द मे कहा गया है। इस छन्द का यही प्रथम शतक है। बाद के शतक इसके अनुकरण पर ही बने हैं। यत्रतत्र लोकोक्तियों का अच्छा प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए—

"कधा क्या जाने सुगंध की बास?"

८. **रंगनाथ शतक**—कर्ता—कोंड राम कवि। इस कवि ने रंगनाथ शतक की रचना की है। वेदान्त विषय होने के कारण इसका उचित प्रचार नही हो पाया है। शतक साहित्य-रचना मे काव्य-लक्षणों का प्रवेश कर इस कवि ने एक नयी रीति को जन्म दिया है। शतक के प्रथम पद्य में इष्ट देवता की प्रार्थना की गयी है। ये तिरुमल देवरायलू के समकालीन थे। इनके गुरु नाग वेंकट रंगनाथ जी थे। इस शतक में विजयनगर साम्राज्य तथा तत्कालीन विभिन्न विषयों का वर्णन भी हुआ है। शतक में कुल १०१ पद्य हैं। मुकुट इस प्रकार है—"गंज पुरंधाम श्रृङ्गार कलित सोम मंगलोद्धाम श्री कलि रंगधाम"। वेदान्त ज्ञान और शब्दालंकार बहुलता इसकी विशेषताएँ हैं।

६. वेमन शतक—कर्ता—वेमना (१५६५-१६२५)

शतक कवियो मे वेमना के सम्बन्ध मे जितनी छानबीन हुई है, उतनी शायद ही किसी अन्य शतककार के सम्बन्ध मे हुई हो। इनके वंशज तथा समय के सम्बन्ध मे विद्वानों मे विशेष मतभेद न रहने पर भी स्थान के सम्बन्ध मे अनेक मतभेद है।

वेमना का जन्म रेड्डी-वंश मे हुआ था। इतिहासकारों का कथन है कि वेमना कोडवीडु सीमा के निवासी थे और उनकी मृत्यु वर्तमान अनन्तपुर जिले के कटारपल्ले मे हुई। वेमना स्थायी रूप से एक स्थान पर नही रहे। वह समस्त आन्ध्र मे भ्रमण करते रहे। हैदराबाद के तेलंगाने मे भी गये। इनके अनेक मठ आज भी वहाँ पर मौजूद हैं। आन्ध्र मे तो आज भी इनके मठों मे उत्सव आदि हुआ करते है।

वेमना ने अपने एक पद्य मे अपने निवास-स्थान के सम्बन्ध मे स्वयं कोंडवीडु के मूग चितपल्ले का उल्लेख किया है। यह स्थान वर्तमान समय के ओंगोल के समीप मे पडता है।

वेमना के अनेक पद्यो से पता चलता है कि वे शैव योगी थे। इसलिए कुछ विद्वानो ने उक्त पद्य मे कोंडवीड का अर्थ कैलास लगाया है। उस कैलास की प्राप्ति के लिए भूडाचिता (मौन ध्यान) नामक गाँव से गुजरना पडता है। तभी मुक्ति मिल सकती है।

योगी वेमना कबीर की भाँति घुमक्कड थे। वे सदा साधु-संत, वैरागियों की संगत मे रहा करते थे। इन मण्डलियो के साथ खूब देशाटन भी किया था। इसी समय वेमना ने योगाभ्यास भी किया था। वैद्यक (दवा-दारू) विद्या तथा हेमकार (स्वर्ण) विद्या भी उन्होंने सीखी थी। क्रमशः इहलोक की ओर से उनका मन पूर्णरूप से उठ गया और अन्तर्दृष्टि को प्राप्त कर सके। धीरे-धीरे अपने शिष्यो का भी संग छोड वे एकान्त जीवन व्यतीत करने लगे और अवधूत की भाँति कौपीनधारी हो तपस्या मे लीन हो गये थे।

अब तक वेमना के ५,००० पद्य उपलब्ध है। अनुसंधानकर्त्ताओं का विश्वास है कि और भी अनेक पद्य अभी अज्ञात है। उनका यह भी विश्वास है कि वेमना के पद्यों मे कुछ प्रक्षिप्त भी है। कुछ लोगो ने अपनी तरफ से कुछ पद्य रचकर वेमना के नाम प्रसारित किये। इससे उनके वास्तविक पद्यों के अनुसधान मे कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित हुई हैं।

वेमना के पद्य तेलुगु के सरल देशी छन्द 'आट वेलदि' और 'तेट गीत' मे है। कबीर जैसे लोगो ने हिन्दी के सरल छन्द दोहे को अपनाया, वैसे ही तेलुगु के लिए ये दोनो छन्द सरल है। इसके चार पाद होते है और चौथे चरण

में मुकुट—'विश्वदाभिराम विनुर वेमा' होता है। अब तक वेमना के पद्यों के अनेक चरण संग्रह प्रकाशित हो चुके है और इनकी जीवनी भी कई विद्वानो ने लिखी है। अब तक वेमना के ३,००० से ३,५०० पद्य ग्रन्थस्थ हो चुके है।

वेमना बहुत बड़े पण्डित भले ही न हों, किन्तु अच्छे विद्वानो का सान्निध्य उन्हे प्राप्त था। उनके पद्यो मे वर्णित महत्तम विषय ही हमे इसका परिचय दे रहे है। उनकी भाषा साहित्यपूर्ण भले ही न हो, परन्तु उनके उपदेशों मे विलक्षणता है, जो आत्म-स्वरूप से अनिभिज्ञ अज्ञानी लोगों को सुज्ञानी बनाने मे समर्थ है।

तमिल भाषा-भाषियो का 'वेद' तिरुक्कुरल' माना जाता है। वैराग्य मे वेमना 'वक्कुवर' (तिरुवक्कुवर) से भी श्रेष्ठ कहे जा सकते है। परन्तु वेमना के महान व्यक्तित्व को हम आन्ध्रवासियो ने पूर्ण रूप से पहचाना ही कहाँ ?

वेमना जन्मजात कवि थे। अनेक सूत्रप्राय नीतियो को सर्वसाधारण के लिए सुबोध शैली मे छोटे-छोटे वाक्यो मे देशी छन्दो मे बिठाने मे उनका सानी नही है। महाकाव्य के प्रणेताओ को वह सफलता प्राप्त नही हुई, जो इन्हे आटवेल्दि छन्द की रचना मे प्राप्त हुई है।

वेमना के पदों मे पादांत, विराम, धारा-शुद्धि, भाव-पुष्टि इत्यादि देखते ही बनता है। उनके पद्यों को पढ़ते समय पाठक के मन मे वे भाव नये विद्युत प्रवाह की भाँति हृदय मे प्रविष्ट हो अज्ञान-तिमिर को दूर करने मे अद्भुत काम करते है।

वेमना परम वैरागी थे। उन्होंने अपने समय की सामाजिक परिस्थितियो का सूक्ष्म निरीक्षण कर प्रजा मे व्याप्त दुर्नीति एवं अन्धविश्वासों का तीव्र रूप मे खण्डन किया। वेद, शास्त्र और पुराणों के प्रति उनकी श्रद्धा थी, लेकिन इनको आधार बनाकर अपनी इच्छा के अनुसार व्यवहार करना उन्हे कतई पसन्द नही था। ऐसे लोगो को वे क्षमा नही कर सकते थे। इनके पद्यो मे स्वर्ग-नरक, अवतार, पुरुष, देवता आदि की प्रशंसा है। परन्तु बाह्याडंबर, यज्ञ-याग उपवास, व्रत, मूर्तिपूजा इत्यादि का घोर विरोध किया है। काम्य-कर्मों का वह विरोध करते थे। 'अहं ब्रह्मास्मि' नामक अद्वैत तत्व ही उनका लक्ष्य था। पवित्र चरित्र (आत्म शुद्धि) पर इस महात्मा ने बहुत अधिक बल दिया है। वह गुरु की प्रधानता मानते थे। गुरु द्वारा मोक्ष-साधन इन्होंने मुकर माना है।

इनके पद्यो मे कुछ 'कूट पद्य' भी है। ठीक कबीर की तरह। उनमें रहस्य भावनाएँ वर्णित हैं। इनका प्रधान छन्द 'आट वेलदि' था। इसमें वेमना ने जो प्रौढ़ता व मधुरिमा दिखाई वह और किसी कवि के लिए भी

संभव नहीं हुई । इनका प्रत्येक पद्य एक सूत्र के समान है जिसका आन्ध्र देश में घर-घर में प्रचार है । कुछ नीतिपूर्ण पद्यों का हम उदाहरणार्थ यहां उल्लेख कर रहे हैं—

"मनुष्य के कर्मों को क्या शकुन रोक सकते हैं ?
क्या शिरोमुंडन से कामनाएँ भी मुंडी जाती हैं ?
पत्थर (शिला-खंड) ही ईश्वर हो जाए तो वह
विश्व को ही निगल जाए ।
जाति और वंश से भी गुण ही प्रधान है ।
बिना हृदय की शुद्धि के ईश्वर की पूजा करने से
क्या लाभ ?
भाल पर अंकित चिह्नों से वह भले ही भक्त जैसे
दीखे, परन्तु उसका मुँह भेड़िये के समान है ।
क्रोध को दबाने से कामनाओं की पूर्ति हो जाती है ।"

इस प्रकार के भाव हम वेमना के प्रत्येक पद्य में देख सकते हैं । इनके पद्य इनका असाधारण लोकानुभव जाहिर करते हैं । इनकी उपमाएँ भी अद्भुत है । इसके अतिरिक्त वे आसानी से समझ में आती हैं ।

इस महात्मा के पद्यों में लोकोक्ति और कहावत का भी समयानुकूल अच्छा प्रयोग हुआ है । इनमें नीति-वाक्य भी देखने योग्य हैं—

"चाहे ये जीवर अच्छे भी क्यों हों—पर कुत्ता,
गाय, खरगोश, बाघ और मच्छर गज कभी नहीं
बन सकते । वैसे ही लोभी आदमी स्वभाव से
अच्छा होने पर भी वह दाता नहीं बन सकता है ।"
"दुष्ट (निम्न जाति के) व्यक्ति को घर में प्रवेश
दिया जाए तो बड़े से बड़े आदमी को भी उसके
द्वारा हानि होती है । जैसे मक्खी पेट में जाकर
तंग करती है ।"
"गधा सुगन्ध को क्या जाने और कुत्ते के पास ऊँची
बुद्धि कहाँ से आए ? वैसे ही नीच व्यक्ति ईश्वर
की उपासना करने के लिए विरक्ति कहाँ से पायेगा ?"

कुछ पद्यों में संस्कृत के श्लोकों की छाया भी दीखती है—

'शूद्रतनमुपो ये शूद्रङगाननि
द्विजुडनुकोनुटेल्ल तेलिवि लेमि ।'
'जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा जायते द्विजः ।'

वेमना ने अपने अनुभवों व अनुभूतियों को स्पष्ट रूप से कहा है, चाहे वे अश्लील भी क्यो न हो। तेलुगु साहित्य के कवियों में वेमना अपने ढंग के अकेले है। दूसरे से इनकी तुलना नही की जा सकती।

१०. कवि चौडप्पा शतक—कर्त्ता—कवि चौडप्पा।

इस कवि के सम्बन्ध मे समुचित निर्णय करने के लिए हमें इन्ही के पद्यो मे आधार मिलते हैं। चौडप्पा ने अपने पूर्व कवियों की स्तुति की और समकालीन राजाओ की प्रशंसा। राजा रघुनाथ राय की महिमा भी इन्होंने गायी है। इससे स्पष्ट है कि वे १७वी शताब्दी के थे। उस समय के शिलालेख आदि द्वारा इनके समय का ठीक-ठीक निर्धारण किया गया, जिसके अनुसार पता चला है कि ये १६००-१६३० के मध्य भाग मे कविता करते रहे।

इन्होने अपने शतक मे आत्मसंबोधन-परक कविता कही है। शतक का मुकुट 'कुदवरपु कवि चौडप्पा' है। 'कुदवर' तो उनका ग्राम माना जाता है और ये उस गाँव के पटवारी थे।

इनके शतक की तीन-चार प्रतियाँ प्राप्त हुई है। एक मे १११ पद्य है तो दूसरी मे ६४ और तीसरी मे ६६ ही। चौडप्पा ने अपनी रचनाओं में आत्मस्तुति भी की है। इनका प्रधान छन्द 'कंद' था। इनकी रचना के प्रधान विषय आत्मस्तुति, नीति बोध, लोभी-निन्दा, भक्ति आदि हैं। अपनी नीति की प्रशस्तता का वर्णन स्वयं कवि के शब्दो मे सुनिए—

> "ऐसे व्यक्ति को हम ढूंढने पर भी नही पा सकते,
> जो मेरी नीति के उपदेश सुनता व पढता हो,
> जिसके शरीर पर सूर्य की किरणो का प्रसार न
> हुआ हो और जो वर्षा में भीग नही गया हो।'
> 'शिवजी का वरदान व्यर्थ साबित हो सकता है।
> देवताओं के गुरु भी नीति-मार्ग से हट सकते है।
> सूर्य और चन्द्रमा भी अपने मार्ग से हट सकते है।
> अयोध्या के राजा रामचन्द्रजी का बाण भी
> निशाना चूक सकता है। परन्तु सरस व चतुर कवि
> चौडप्पा का पद्य कभी नीति मार्ग से विचलित नहीं
> होता।"
>
> "जो व्यक्ति-दूसरों की सम्पत्ति को गाय [illegible]
> के समान देखता है, जो पर-नारी [illegible]
> माता समझता है, वह मनुष्य [illegible]
> नारायण ही है।"

११ कुक्कुटेश्वर शतक और भर्ग शतक—कर्ता—कूचिमंचि तिम्म कवि।

इन दोनों शतकों के कर्ता श्री कूचिमंचि तिम्म कवि (१६८०-१७६०) थे। श्रीनाथ महाकवि के उपरान्त आन्ध्र साहित्य में इन्हीं को 'कवि सार्वभौम' नामक उपाधि प्राप्त हुई। इन्होंने कुल १२ ग्रन्थ लिखे है। जिनमें कुक्कुटेश्वर शतक और भर्ग शतक नामक दो शतक भी है। इनके अन्य ग्रन्थों में 'सर्वलक्षण सार सग्रह', एक श्रेष्ठ लक्षण (रीति) ग्रन्थ है। 'रुक्मिणी परिणय', सारंगधर चरित्र', 'राजशेखर विलास', 'शुद्ध तेलुगु रामायण', 'शिव लीला विलास', रसिक जन मनोभिराम', 'निला सुन्दरी परिणय' आदि भी उत्तम ग्रन्थ हैं।

कुक्कुटेश्वर शतक का आन्ध्र में अच्छा प्रचार है। इसमें सामाजिक दुराचारों का निर्भीकता के साथ खण्डन किया गया है। भावों के आवेग और आवेश के कारण कहीं-कहीं काव्य-लक्षणों का भी अतिक्रमण हुआ है। इस शतक का मुकुट 'कुक्कुटेश' है। प्राय: मुकुट के नाम पर ही शतक का नामकरण होता है। अपने आराध्य देव के नाम पर कवि ने यह शतक रचा है। इस शतक में कुल ६२ पद्य है। इष्टदेव तथा अन्य देवताओं की स्तुति, सुकवि स्तुति, कुकवि-निन्दा, दाता सप्त संतान, खल (दुष्ट), लोभी, सुजन, दुर्जन, संपदा, गरीबी आदि के वर्णन करने वाले पद्यों का इसमें समावेश है जो उस समय की सामाजिक दशा का परिचय कराते है।

इस शतक की एक विशेषता यह है कि इसमें मुहावरों की भरमार है। कहावतें, लोकोक्तियों और उपमान आदि अद्भुत बन पड़े है। 'जातस्य मरणं ध्रुवम्', 'राज्याते नरकं ध्रुवम्' इत्यादि इसके सुन्दर उदाहरण हैं।

यह शतक बाद के कवियों के लिए आधार बन गया है। इसके अनुकरण पर बने अनेक शतकों में 'वेणुगोपाल शतक' इत्यादि मुख्य है। इस कवि का दूसरा शतक भर्ग शतक है। यह समग्र रूप में उपलब्ध है। इसमें कुल मिलाकर १०१ पद्य है। भर्ग शतक की शैली कुक्कुटेश्वर शतक की अपेक्षा प्रौढ़ है। यह कवि की प्रौढ़ावस्था में रचा गया है। यमक आदि शब्दालंकारों की बहुलता पायी जाती है। १८वीं शताब्दी के उल्लेखनीय शतकों में इसका भी स्थान है।

१२. भक्त मंदार शतक—कर्ता—कूचिमंचि जग्गकवि।

ये कूचिमंचि तिम्मकवि के तीन भाइयों में से थे। इस बात का उल्लेख जग्ग कवि ने 'अनि सिंह शैल महात्म्य' में किया है। ये विभिन्न प्रान्तों का भ्रमण कर अनेक राजाओं के दरबारों में गये और कितने ही कवियों को पराजित कर इन्होंने अपनी योग्यता का परिचय दिया। इसके 'चन्द्ररेखा विलापमु' नामक ग्रन्थ के एक पद्य द्वारा मालूम होता है कि इन्होंने 'जानकी परिणय', 'द्विपद

राधा-कृष्ण चरित्र', 'सुभद्रा विवाह', 'चन्द्ररेखा विलापमु' तथा कुछ चाटु प्रबन्ध और शतक लिखे थे। उस पद्य मे 'सोमदेव राजीय' का उल्लेख नही हुआ है। सम्भवतः यह कृति बाद मे रची गयी होगी। उपालभ मे इनसे किसी की तुलना नही हो सकती। चन्द्ररेखा विलाप एक निन्दात्मक काव्य हे।

इन्होंने भक्त मंदार शतक की रचना की। यह कालहस्तीश्वर आदि भक्तिपूर्ण शतकों की समता कर सकने वाला शतक है। इस शतक में नीति व प्रभू (राजा) निन्दात्मक पद्य भी यत्र-तत्र मिलते हैं।

१३. रामलिंगेश्वर शतक—कर्त्ता—आडिदमु सूरकवि (१७२०-१७८५)।

श्री सूरकवि ने अपना परिचय स्वय एक पद्य मे इस प्रकार दिया है—

"कौन-सा ? —चीपुरुपल्ले।
नाम ? सूरकवि, वंश का नाम आडिदमु।
आपके राजा कौन ? विजयराम महाराज।
वह क्या सरस हे ? नही, राजा भोज ही हैं।"

कवि ने कई उत्तम ग्रन्थ-रत्नों का निर्माण किया। 'आन्ध्र चन्द्रालोक', 'आन्ध्र नामशेष', 'कवि संशयं विच्छेद', 'रामलिंगेश्वर शतक' और वेंकट-मंत्ति शतक' इन्ही महाकवि रचित माने जाते है। इनका 'वेंकट मंत्रि शतक तो अपूर्ण है। 'रामलिंगेश्वर शतक' मे १०६ सीस (एक छन्द का नाम) पद्य है। इस शतक का मुकुट 'रामलिंगेश रामचन्द्र पुरवास' है। इसके कुल-देवता रामलिंगेश्वर स्वामी थे। इसलिए कवि ने अपनी समस्त कृतियाँ अपने आराध्य देव को समर्पित की है। इस शतक मे नीति, भक्ति इत्यादि के साथ उस समय के जमीदारो के अत्याचारो का भी वर्णन किया गया है। संदर्भ के अनुसार हास्यरस पूर्ण व्यंग्योक्ति तथा कहावतों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

१४. कृष्ण शतक—कर्त्ता—नृसिंह कवि।

आन्ध्र देश मे सुमती व वेमना के बाद इसी नृसिंह कवि कृत 'कृष्ण शतक' का विशेप रूप से प्रचार है। इस शतक का मुकुट 'कृष्ण' है। कवि ने तेलुगु के महाकवि पोतना और श्रीनाथ की कविता-रीतियो का अनुकरण किया है। नृसिंह कवि बहुत बड़े विद्वान थे, इसलिए इनके पद्यों में छन्द-दोप, प्रास-भंग, व्याकरण-दोष इत्यादि पाये जाते हैं।

१५. दाशरथी शतक—कर्त्ता—कंचर्ल गोपन्ना।

यह सत्रहवी शताब्दी में हुए थे। इनका दूसरा नाम 'रामदास' है। आन्ध्र मे महान भक्तो मे ये भी एक थे। पोतना और त्यागराज के बाद भक्ति में इनका नम्बर आता है। इन्होंने रामचन्द्रजी पर एक शतक लिखा है। दाशरथी शतक नाम से प्रसिद्ध है। शतक का मुकुट 'दाशरथी ...

है। इस शतक के प्राय. सभी पद्य भक्ति एवं नीतिपरक हैं। इस शतक का भी आन्ध्र में अच्छा प्रचार है। श्री रामचन्द्रजी आन्ध्र देश के आराध्य देव हैं। रामदास तो श्रीरामचन्द्रजी के अनन्य भक्त थे। उन्होंने अपनी संपूर्ण भक्ति को मानो शतक के इन पद्यों में उड़ेल ही दिया है।

इनके अलावा अन्य भी कितने ही शतककार हुए हैं। हमने ऊपर केवल ऐसे ही शतकों का परिचय दिया है, जिनका आन्ध्र देश में अधिक प्रचार है अथवा उनके कर्त्ता लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति हैं। बताया जाता है कि महाकवि पोतना ने भी 'नारायण शतक' की रचना की है। यह विवादास्पद विषय होने के कारण उस शतक पर मैंने विचार नहीं किया। अन्य शतकों में श्री एनुगुलक्ष्मण कवि कृत 'भर्तृहरि शतक' (१७२५), तथा इसी नाम का श्री पुष्पगिरि तिम्मना कृत शतक (१७५०) भी प्रसिद्ध हैं।

अन्य शतकों में सीतापति शतक, जानकीराम शतक इत्यादि प्रसिद्ध हैं। परन्तु अनेक कवियों ने एक ही नाम के शतक भी लिखे हैं। तेलुगु में उपलब्ध होने वाले केवल शतक व शतककर्ताओं के नामों का उल्लेख मात्र भी किया जाए तो लगभग एक पोथा बन जाएगा। शतक के प्राय. समस्त प्रमुख विषयों पर मैंने संक्षिप्त रूप से यथाशक्ति प्रकाश डालने का प्रयास किया है। इसी में समस्त तत्वों का समावेश आ गया है। अन्य शतकों की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। परन्तु शतक वाङ्मय में उनका प्रतिनिधित्व कर सकने वाला स्थान नहीं है। यह शतक साहित्य १२वीं शताब्दी से लेकर आज तक बराबर प्रवाहित होता जा रहा है। यहाँ तक कि १९५५ में भी तीन-चार शतक प्रकाशित हो चुके हैं। जब तेलुगु के अन्य अज्ञात शतकों का भी पता लग जायगा, तो तेलुगु का शतक-साहित्य और भी जगमगा उठेगा।

———

५

आधुनिक तेलुगु उपन्यास

आधुनिक युग मे उपन्यास अपनी प्रभावोत्पादकता तथा रोचकता के कारण साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हो गया है। उपन्यास मे मानव जीवन की मीमासा होती है और उसमे मानव-मन की आंतरिक अनुभूतियो का विश्लेषण होता है। मानव-जीवन के सत्य का रसात्मक रूप में उद्घाटन करके वह आनन्द प्रदान करता है। यही कारण है कि यह प्रक्रिया मानव-जीवन के अधिक निकट है।

यो तो भारतीय साहित्य के लिए उपन्यास पाश्चात्य साहित्य की देन है। किन्तु भारतीय वातावरण मे इस प्रक्रिया का आशातीत विकास होता जा रहा है।

तेलुगु का प्रथम उपन्यास स्वर्गीय वीरेशलिंगम पंतुलु कृत 'राजशेखर चरित्र' माना जाता है। यह उपन्यास अंग्रेजी के सुविख्यात लेखक गोल्ड-स्मिथ के 'विकार आँफ वेक्फील्ड' के अनुकरण पर रचा गया है। पंतुलुजी ने उपन्यास की वस्तु और पात्रो मे ही नही अपितु वातावरण की सृष्टि मे भी भारतीयता लाने का सफल प्रयत्न किया, अत. यह एक प्रकार से रूपान्तर होते हुए भी मौलिक प्रतीत होता है।

यह उपन्यास आन्ध्र देश मे इतना लोकप्रिय हुआ कि इससे प्रभावित हो एक अंग्रेज विद्वान ने पुन. अंग्रेजी मे 'फारचून्स ह्वील' नाम से इसका रूपान्तर किया। 'लन्दन टाइम्स' ने इन रूपान्तर की बड़ी प्रस्तुति की। मद्रास के प्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक 'हिन्दू' ने लिखा था—'राजशेखर चरित्र' ने तेलुगु साहित्य मे एक नये युग का शुभारंभ किया है। इस उपन्यास मे वर्णित बैरागी की स्वर्ण विद्या, सुब्रह्मण्यम् की परिहास बुद्धि और कृष्णगजपति की उदारता अविस्मरणीय है। शैली मनोहर एवं सरस है। घटनाओं की रोचकता के कारण अन्त तक पाठक मे औत्सुक्य बनाये रखने में यह उपन्यास

सफल रहा। समाज सुधारवादी दृष्टिकोण को लेकर इस उपन्यास का प्रणयन हुआ है।'

उन्हीं दिनों में श्री खडविल्लि रामचन्द्रुडु ने 'धर्मवती विलास', 'मालती राघवमु' और 'लक्ष्मी सुन्दर विजयमु' नामक तीन उपन्यास रचे। ये तीनों 'चिन्तामणि' पत्रिका द्वारा पुरस्कृत हुए हैं।

प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास :

श्री वीरेशलिंगम पंतुलु के बाद श्री चिलकमर्ति लक्ष्मी नरसिंहम ने न केवल तेलुगु उपन्यास को अपनी अनुपम प्रतिभा द्वारा समृद्ध किया अपितु उसे विविधता, व्यापकता एवं लोकप्रियता भी प्रदान की। आपने 'रामचन्द्र विजयमु' नाम से अपना प्रथम मौलिक उपन्यास प्रकाशित कर 'चिन्तामणि' का पुरस्कार प्राप्त किया। इसमें आन्ध्र देश का जनजीवन प्रतिबिंबित हुआ है। तत्कालीन आन्ध्र समाज का इसे दर्पण कहे तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। इसके पश्चात् आपने क्रमश 'हेमलता', 'अहल्या बाई' और 'कर्पूर मंजरी' नाम से तीन उपन्यासों का प्रणयन किया। ये तीनों चिंतामणि के प्रथम पुरस्कार से सम्मानित हुए। इनमें 'हेमलता' व 'अहल्या बाई' ऐतिहासिक उपन्यास हैं। इस प्रकार चिलकमर्ति जी ने सामाजिक उपन्यासों के साथ ऐतिहासिक उपन्यासों का भी श्रीगणेश किया। आप का 'सौन्दर्य तिलक' पौराणिक कथा से सम्बन्धित उपन्यास है। आप के उपन्यासों में 'रामचन्द्र विजयम्' के पश्चात् 'कर्पूर मंजरी' विशेष लोकप्रिय हुआ है। 'गणपति' आपका हास्य रस प्रधान उपन्यास है। इसका प्रत्येक वाक्य पढ़कर पाठक हँसी के मारे लोट-पोट होता जाता है। शिष्ट हास्य का पोषण होने के कारण इसे सर्वत्र समादर प्राप्त हुआ है। आप के उपन्यासों की लोकप्रियता का मूल मंत्र कथोपकथन में कौशल, मनोहर शैली तथा स्फुट हास्य है। आपकी भाषा निर्दोष एवं प्रभावयुक्त होती है। वातावरण की सजीवता, भावाभिव्यंजन में चुटीलापन आपकी अन्य विशेषताएँ हैं। 'शापमु' कलिंगदेश से सम्बन्धित एक और उपन्यास है। आप एक कुशल मौलिक उपन्यासकार ही नहीं अपितु एक अच्छे अनुवादक भी हैं। बंगाल के यशस्वी लेखक रमेशदत्त कृत 'लेक आफ पाम्पस' का आपने 'सुधा-शरत्चन्द्र' नाम से तेलुगु में रूपान्तर किया है। आपकी तुलना अंग्रेजी उपन्यासकार 'स्काट' से ही की जाती है।

उपन्यास की बढ़ती लोकप्रियता को देख अनेक पुस्तक प्रकाशन संस्थाओं ने उपन्यास प्रकाशित करना प्रारम्भ किया और साथ ही उत्तम कृतियों को पुरस्कृत कर प्रोत्साहित भी किया। 'विज्ञान चन्द्रिका ग्रन्थ मंडली' नामक

पुस्तक प्रकाशन सस्था ने कई एक उत्तम ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाशित किये . उनमे श्री भागराजु नारायणमूर्ति कृत 'विमला देवी' और 'चन्द्रगुप्त', श्री वेलाल सुब्बाराव द्वारा विरचित 'रानी सयुक्ता' और श्री केतवरपु वेंकट शास्त्री का लिखा 'रायचूर युद्धमु' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। श्री वेंकट शास्त्री के अन्य उपन्यासो मे 'अग्रहारमु', 'पूर्णानन्दमु' और 'इन्दिरनी कुमारी' विख्यात हैं। उपर्युक्त उपन्यासो मे शिल्प की प्रमुखता है, भाषा निर्दोष है, शैली मे गति होने के कारण ये पाठको के प्रिय हो गये हैं।

राजनैतिक चेतना का प्रभाव :

देश मे स्वतन्त्र आन्दोलन जोर पकडने लगा। उसका प्रभाव जन-मानस पर ही नहीं अपितु साहित्य पर भी परिलक्षित होने लगा। आन्ध्र के सुप्रसिद्ध देशभक्त एव समाज-सुधारक श्री उन्नव लक्ष्मीनारायण पंतुलु ने 'मालपल्लि' *(हरिजन बस्ती) नाम से एक अत्युत्तम उपन्यास प्रस्तुत किया।* इसमे राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक समस्याओ पर सम्यक् प्रकाश डाला गया। गाँधी जी के आगमन से देश मे जो राष्ट्रीय जागृति पैदा हुई, उसके परिणाम-स्वरूप सामाजिक मान्यताएँ बदलने लगी। ऐसी स्थिति मे गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रमों मे हरिजनोद्धार का कथावस्तु बनाकर लक्ष्मीनारायण पंतुलु जी ने उपयुक्त उपन्यास की सृष्टि की। भाषा, शैली, व्यवहार, विचार-धारा, वातावरण इत्यादि सभी दृष्टियो से यह उपन्यास पूर्णत. तेलुगुपन को लिये हुए है। इसकी शैली ठेठ देहाती और भाषा आम बोलचाल की है। कथोपकथन मे स्वाभाविकता और सहज माधुर्य पढते ही बनता है।

चमार भगत रामदास (संघदास) का पात्र लेखक की अपूर्व सृष्टि है। उसका चरित्र पवित्र है। सहनशीलता, अदम्य आत्मविश्वास और अपने हकों के लिए लडने की प्रवृत्ति ने उसे एक सच्चा देशभक्त बनाया है। उपन्यास मे यत्र-तत्र जेल-जीवन की कठिनाइयो, अधिकारियों के अमानवीय व्यवहार, दलित जातियो पर उच्च वर्ण वालों के रोमाचकारी अत्याचार इतने सजीव बन पड़े है। कि उपन्यास के पढ़ते समय तत्कालीन समाज का चित्र हमारे सामने प्रत्यक्ष होने लगता है। इस प्रकार यह उपन्यास तेलुगु साहित्य का कंठहार बना हुआ है।

उन्नवजी से प्रेरणा पाकर कई लेखक इस दिशा मे अग्रसर हुए। उनमें श्री विश्वनाथ सत्यनारायण का स्थान प्रथम है। सत्यनारायणजी ने एक दर्जन से अधिक उपन्यास लिखे और आज भी लिखते जा रहे है। आपका विशालकाय उपन्यास 'वेयि पडगलु' (सहस्र फण) में आन्ध्र देश के सास्कृतिक एवं सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। लेखक

की सनातन आर्य धर्म और वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति गहरी आस्था है। आस्तिकता, धर्मपरायणता एव प्राचीन मान्यताओं का प्रतिपादन करते हुए नवीनता को लेखक ने अग्राह्य माना है। इसमे धर्मराव का आदर्श चरित्र 'गिरिका' के द्वारा देवदासी प्रथा के मूल मे स्थित सदाशयता तथा 'मंगम्मा' पात्र के द्वारा वेश्या के प्रति भी तिरस्कार के स्थान पर अनुकम्पा के भाव प्रस्तुत किये हैं। सत्यनारायण की शैली पाडित्यपूर्ण, साहित्यिक एवं प्रवाहमान है। ऐतिहासिक उपन्यासो की रचना मे उनकी शैली और भी अधिक निखरी है। यह उपन्यास आन्ध्र विश्वविद्यालय द्वारा पुरस्कृत हुआ है।

एकवीरा—सत्यनारायणजी के उपन्यासों मे विशेष लोकप्रिय कृति 'एकवीरा, है। उपन्यास कला के समस्त तत्वो का इसमे सम्यक निर्वाह हुआ है। कथावस्तु के सगठन मे पात्रो की सृष्टि मे, वार्त्तालाप के संयोजन मे, भावों के प्रदर्शन मे लेखक ने अनुपम कौशल का परिचय दिया है। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है जो मधुरा की पृष्ठभूमि पर रचित है। वातावरण की सजीवता इस उपन्यास को अधिक लोकप्रिय बनाने मे सहायक सिद्ध हुई है।

चेलियलिकट्ट (सिन्धु की वेला)—आपका एक उत्तम सामाजिक उपन्यास है। रचना-कौशल और पात्रों के मानसिक विश्लेषण में लेखक को असाधारण सफलता प्राप्त हुई है। आपके अन्य उपन्यासो मे 'धर्म चक्रमु', 'वीर वल्लडु', 'तेरचि राजु', 'कडिमि चेट्टु', 'मा बाबू', 'हा हा हूँ हूँ', 'स्वर्गानिकि निच्चेनलु', 'अश्वमेध', 'अन्तरात्मा', 'देवतलयुद्धं', 'धूम रेख', 'पुलुल सत्याग्रहं', 'बद्दन्न सेनानि', 'प्रोयु तुम्मेद', 'विष्णु शर्मा इग्लीषु चदुवु', 'समुद्रपु दिब्ब' आदि हैं।

श्री अडवि बापिराजु बहुमुखी प्रतिभासंपन्न कलाकार हैं। उनकी कृतियों मे शिल्प की प्रधानता और कला-पक्ष का निखार देखने योग्य है। भाषा मे काव्यत्व और वार्त्तालाप मे नाटकीयता आपकी अन्य विशेषताएँ है। आपने ऐतिहासिक और सामाजिक दोनो प्रकार के उपन्यास रचे। 'हिम बिन्दु' और 'गोन गन्ना रेड्डी' ऐतिहासिक उपन्यास है, जो क्रमश. शातवाहन तथा काकतीय साम्राज्य के वैभव का सजीव चित्र हमारे समक्ष उपस्थित करते है। इनमे यथार्थ और कल्पना का गंगा-जमुना संगम हो गया है।

बापिराजु की ख्याति का कारण उनका 'नारायण राव' नामक सामाजिक उपन्यास है। इनमे यात्रा सम्बन्धी विषयो के साथ आन्ध्र का जनजीवन चित्रित है। आन्ध्र की जीवन-सरणी का प्रतिविम्ब जिन थोड़े से उपन्यासो मे हुआ है, उनमें 'नारायण राव' भी एक हैं। यह उपन्यास आन्ध्र-विश्वविद्यालय

द्वारा पुरस्कृत हुआ है। आपके अन्य उपन्यासो मे 'मधुर वाणी', 'कोनगी', 'जाजि मल्लि', 'नरड्डु', 'तूफान' आदि प्रसिद्ध है।

सुवर्ण युग के कुछ पन्ने :

ऐतिहासिक उपन्यासो की रचनाओ मे श्री नोरि नरसिंह शास्त्री सिद्धहस्त है। आपने आन्ध्र के इतिहास से सम्बन्धित तीन महायुगों का परिचय कराते हुए क्रमशः 'नारायण भट्टु', 'रुद्रम देवी' और 'मल्ला रेड्डी' प्रस्तुत किये। ये चालुक्य, काकतीय और रेड्डी राजाओ के राज्य वैभव और आन्ध्र की संपन्नता का परिचय देते है। साथ ही राजनैतिक उलझनो, कुतन्त्रो के साथ आन्ध्र की सामाजिक रीति-नीति व धर्म-कर्मों का भी। लेखक के गहन अध्ययन, अनुशीलन एवं अनुसंधान का परिणाम उपर्युक्त उपन्यास है। उपन्यासों के काल्पनिक अंश को हटा दे तो इतिहास मात्र बचा रहेगा। पात्रो के मानसिक विश्लेषण और वातावरण की सजीवता मे लेखक ने अपनी कुशलता का परिचय दिया है। पंडिताऊ भाषा खटकती है।

तेलुगु में ऐतिहासिक उपन्यासो की अपनी परम्परा है। इनमे ऐतिहासिक घटनाओं के साथ मनोरम कल्पना और भावना का समावेश करके तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्र उपस्थित किया गया है। इस श्रेणी के उपन्यासो मे डॉ० काकर्ल नरसिंहम् कृत 'कनकाभिषेकमु' और 'रघुनाथरामुलु', श्रीमति मल्लादि वसुधरा द्वारा रचित 'तंजावूरि पतनमु' और 'सप्तपर्णी', श्री धूलिपाल श्री राममूर्ति का लिखा 'भुवन विजयमु', तेन्नेटि सूरि कृत 'चेंगीज खाँ' प्रशंसनीय है।

समस्यात्मक उपन्यास :

पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से भारतीय समाज मे परिवर्तन होने लगा। आर्थिक अव्यवस्था, राजनैतिक उलझन, धार्मिक जकड़बंदियाँ, नैतिक मापदण्डो मे नये दृष्टिकोण से पुर्नविचार—इत्यादि ने जनजीवन को अस्थिर बना दिया। इन विकृतियो से पूर्ण सामाजिक जीवन को स्वस्थ एवं सुखी बनाने के अभिप्राय से विचारशील मेधावी लेखकों ने समाज का अध्ययन किया। परिणामस्वरूप विभिन्न दृष्टिकोण से मानव-जीवन को केन्द्र बनाकर समाज का मूल्यांकन करने वाले उपन्यासो का प्रणयन हुआ। ऐसे लेखको में श्री कुटुम्बराव, गोपीचन्द, बुच्चिबाबु, जी० वी० कृष्णराव आदि के नाम विशेष प्रसिद्ध है। श्री कुटुम्बराव के उपन्यासों मे 'चदुवु', 'वारसत्व', 'प्रेमिंचिन मनिषि', 'पंचकल्याणि', जीवितम्', 'आडजन्म', 'कुलंलेनि पिल्ल', 'तेचिपोयिन मनिषि', 'कोत्त कोडलु', 'कोत्त अल्लुडु' इस श्रेणी के उत्तम उपन्यास है। सामाजिक व्यवस्था के चौखट मे मनुष्य अपने विचारों को

जब्त करके कैसे खुद बन्दी बने हुए है और उनसे मुक्त होने के लिए संघर्ष करते हुए मानव अपने आशयो की पूर्ति के लिए कैसे प्रयत्नशील है, सामाजिक रुग्णता से पीडित मानव स्वस्थ समाज के निर्माण मे कैसे निरत है और इस सक्राति काल मे मानव की कैसी दशा होती है—इन समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए मामाजिक व्यवस्था मे नारी के उत्थान और पतन का भी समग्र चित्र कुटुम्बरावजी ने अपनी कृतियो मे अंकित किया है।

गोपीचन्दजी ने अपने विशुद्ध मानवतावादी दृष्टिकोण द्वारा अपने उपन्यासो के माध्यम से भावात्मक क्राति का आह्वान किया है। वे एक लेखक ही नही बल्कि विचार एवं तत्ववेत्ता भी थे। अत पात्रो के चरित्रो के चित्रण मे तात्विक दृष्टि से आपका 'असमर्थुनि जीव यात्र' विशेष जनप्रिय हुआ है। 'चीगटि महुलु' नामक उपन्यास मे आपने अपने पिता त्रिपुरनेनि रामस्वामी के जीवन के साथ तत्कालीन आन्ध्र देश की राजनैतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक दशा का सुन्दर चित्र खीचा है। आपने पडित परमेश्वर शास्त्री की 'वीलुनामा' नामक उपन्यास को हाल ही मे साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ है। अन्य उपन्यासो मे 'परिवर्तन', 'पिल्ल तेम्मेर', 'अंतिम विजयं' आदि मुख्य है।

गोपीचन्द की श्रेणी के लेखको मे श्री जी० वी० कृष्ण राव की गणना होती है। आपने तेलुगु को सुन्दर उपन्यास प्रदान किये। उनमे 'कीलु बोम्मलु', 'चैत्र रथं', 'राम सेवलु' और 'पापि कोडलु' प्रख्यात है। श्री उत्पल लक्ष्मण राम कृत 'अतडु'—'आमे' (वह और उसकी) पत्र-प्रणाली पर रचित एक सुन्दर मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। इसमे दो विभिन्न मनोवृत्ति वाले दंपति का सहज मानसिक विश्लेपण हुआ है।

बुच्चिबाबु ने 'चिवरकु मिगिलेदि' (जो शेप होगी) नाम से नवीन शैली मे एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास का प्रणयन किया। यह अपनी शैली की विशिष्टता, चरित्र-चित्रण की मनोवैज्ञानिकता, सजीव भाषा और अभिव्यक्तीकरण चमत्कार के लिए विशेष प्रख्यात हुआ है। मानव-मन की अचेतन भावनाओ की रूप-कल्पना करके मनुष्य के व्यक्तित्व और सच्चे रूप का प्रतिनिधित्व कराने वाले अनेक उपन्यास तेलुगु मे आये। उनमे श्री राचकोड विश्वनाथ शास्त्री कृत 'अल्प जीवि', श्री पिनिशेट्टि श्रीरामुलु द्वारा विरचित 'दत्तत' और 'ममता', श्री पोतुकूचि साम्बशिवरावकृत 'उदय किरणालु', इच्छापुरपु जगन्नाथ राव कृत 'गुलाबी मुल्लु' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

विद्रोह का स्वर :

श्री गुडिपाटि वेंकटाचलम ने मामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध विद्रोह का झंडा लेकर तेलुगु साहित्य मे एक वडी क्राति उपस्थित की। नर और नारी के सम्बन्धो पर अपने क्षोभ प्रकट करते हुए प्राचीन काल से नारी के प्रति जो अन्याय होता आ रहा है, उसे व्यंग्यात्मक कृतियों द्वारा दिखाया और उनकी खिल्ली उड़ायी। आपके उपन्यासो की कथावस्तु अन्धविश्वास, आर्थिक पराधीनता, यौनदासता, नारी की स्वेच्छाहीनता, समाज की रीति-नीति इत्यादि के प्रति असंतोष के साथ विद्रोह की भावना है। इनके चित्रण मे आपने 'देवमिच्चिन भार्य', 'मैदानमु', 'कन्नीटि काल्व', 'मा कर्ममिट्ला कालिंदि', 'शशिरेखा', 'जीवितादर्श' आदि उपन्यास लिखे। 'जीवितादर्श' मे एक प्रकार से लेखक का जीवन प्रतिबिंबित हुआ है। एक विलासी व्यक्ति *भोग-विलास से ऊव कर अन्त में संयम का पाठ पढ़ता है और संन्यासी* होता है। चलम की शैली मे जादू है जो पाठक को अन्त तक अपने साथ खींच ले जाती है। भाव-व्यक्तीकरण का अद्‌भुत कौशल और अनुभूतियो को उसी रूप में *अभिव्यक्त करने की सरस व सजीव भाषा चलम की अनुपम* संपत्ति है। वे एक शैलीकार हैं। तेलुगु साहित्य के 'फ्राइड' माने जाते हैं।

चलम का अनुकरण करते हुए लेखको का एक दल ही तैयार हो गया है। उनमे धनिकोंडा अनुमंतराव, रावूरी भरद्वाज, श्रीमती लता के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। धनिकोंडा के उपन्यासो मे 'मगुव मनसु' और 'जगदेक सुन्दरी किलयोपात्रा' और श्रीमती लता के उपन्यासो मे 'एडारि पुव्वुलु', 'वन किन्नेर', 'राग जलधि', 'वारिज', 'पथ विहीन', 'जीवन स्रवंति', 'चरित्र शेपुलु' आदि प्रसिद्ध है।

तेलुगु उपन्याम वस्तु की विविधता की दृष्टि मे समृद्ध तो है, साथ ही रसो की दृष्टि से भी कम समृद्ध नही है। तेलुगु में विशेष हास्य का पोषण करने वाले असंख्य उपन्यास रचे गये हैं। उनमे श्री मोक्कपाटि नरसिंह शास्त्रीकृत 'वारिस्टर पार्वतीशम्' का स्थान अद्वितीय है। इस में एक सनातन धर्मावलंबी युवक की विलायती यात्रा का रोचक वृत्तात हास्य प्रधान शैली में वर्णित है। *उपन्यास आद्योपान्त हास्यरस से ओतप्रोत है। यह एक चरित्र*-प्रधान उपन्याम है। इस वर्ग के अन्य उपन्यासों में श्री मुनिमाणिक्यम् का 'उपाध्यायुडु', श्री जलसूत्रम् रुक्मिणीनाथ शास्त्री कृत 'देवय्या' उल्लेखनीय है।

राजनैतिक आन्दोलनों का प्रभाव भी, तेलुगु साहित्य के अन्य अंगों पर जैसा परिलक्षित होता है वैसा प्रभाव उपन्यासो में भी देखा जा सकता है।

सभी प्रकार की राजनैतिक विचारधाराओ तथा वादो की पुष्टि मे जो उपन्यास आये, उनमे महीधर जगन्मोहन राव कृत 'रथ चक्रालु', 'ओनमालु', 'दवानलमु' और 'कुन्तल वतेन' विशेष प्रख्यात हैं। वट्टिकोट आल्वार स्वामी कृत 'प्रजल मनिषि' तेलगाना मे निजामशाही के विरुद्ध विप्लव और जागृति का परिचय कराता है।

अन्य युवा पीढी के लेखक भी बडे ही विश्वास के साथ इस क्षेत्र में आगे बढ रहे हैं। शारदा ने अल्पायु मे ही 'एदि सत्यं', 'मंचि चेड्डु', 'अपस्वरालु' नाम से तीन सुन्दर सामाजिक उपन्यासो का प्रणयन किया है। अन्य उपन्यासो मे बलिवाड कान्ताराव का 'दगा पड्डिन तम्मुडु', पोरंकि दक्षिणामूर्ति कृत 'निवेदन' और 'संघ जीवुलु', शिवराजु लिंगमूर्ति विरचित 'रंगुल मेड', मंजुश्री का 'ऋणानु बंधमु', घटिप्ट कृत 'केरटालु', उपश्री का 'ज्वलित ज्वाला', माडभूषि के 'तीरनि बांधव्यालु' और 'बोधवि', इमुकपल्लि लक्ष्मी-नरसिंह शास्त्री कृत 'मंचु तेरलु' और 'सघ जीवुलु', एन० आर० चन्द्रर कृत 'शिक्षा', राघव कृत 'हेम रेखलु' और गोल्लपूडि मारुतीराव के एक दर्जन के करीब उपन्यास इस परम्परा को परिपुष्ट बना रहे है।

महिला लेखिकाओ का योगदान भी तेलुगु उपन्यास मे अविस्मरणीय है। नारी-समस्याओ के चित्रण के साथ नारी दृष्टि मे समाज का मूल्यांकन लेखिकाओ द्वारा नयी रीति मे हुआ है। कुछ लेखिकाओ ने ऐतिहासिक और पौराणिक उपन्यास भी लिखे हैं। इन लेखिकाओ के उपन्यासो मे श्रीमती जयंती सूरम्मा का 'सुदक्षिणा चरित्रमु', पुल्लगुर्ति लक्ष्मी नरसमांबा कृत 'सुभद्रा', 'योगेश्वरी' और 'अन्नपूर्णा', और कनुपर्ति वरलक्ष्म्मा कृत 'वसुमति', डॉ० पी० श्रीदेवी कृत 'कालातीत व्यक्तुलु' मालती चन्दूर का 'चेदस पुरुगु', लक्ष्मी रघुराम का 'धन्य जीवुलु', के० रामलक्ष्मी कृत 'मेरुपु तीगे', 'अवतलि गट्टु', मुप्पाल रंगनायकम्मा के 'कृष्णवेणी' और 'बलि पीठमु', कोड्रि कौसल्यादेवी कृत 'चक्र भ्रमणमु', 'शंखुतीर्थमु' और 'धर्म चक्रमु' डि० प्रमीला कुमारी कृत 'तेगिन तीगलु' उल्लेखनीय है। अन्तिम तीनो लेखिकाओं के उपन्यास 'आन्ध्र प्रभा' साप्ताहिक पत्र द्वारा चलायी गयी उपन्यास प्रतियोगता मे पुरस्कृत हैं।

इस प्रकार आज तेलुगु उपन्यास प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है। अतः हम विश्वास कर सकते है कि तेलुगु उपन्यास का भविष्य उज्ज्वल है।

६

तेलुगु नाटक साहित्य

तेलुगु नाटक साहित्य का इतिहास १०६ वर्ष पुराना है। वैसे १६वी शती मे ही तेलुगु नाटक के अस्तित्व का प्रमाण "लक्षण सार संग्रह" काव्य से प्राप्त होता जाता है। १४वी शताब्दी में श्रीनाथ द्वारा रचित "क्रीडाभिरामम्" एक सफल वीथि नाटक है। १८७० में धारवाड मे स्थापित "आप्तेकर हिन्दू ड्रैमेटिक कंपनी'' ने आन्ध्र के विभिन्न केंद्रों मे ताडपत्रो के पण्डालो मे हिन्दी नाटकों का अद्भुत प्रदर्शन किया। सर्वप्रथम इसी कम्पनी मे शीशे के दीप, धक्-धक् चमकने वाले हार, विभिन्न रंगीन दृश्यो वाले परदे इत्यादि अपूर्व उपकरणों का प्रयोग करके प्रेक्षकों मे नाटक के प्रति अभिरुचि जागृति की। उनकी देखा-देखी आन्ध्र के विभिन्न केन्द्रों में नाटक मण्डलिया स्थापित हुई। असंख्य पौराणिक एवं ऐतिहासिक नाटकों का प्रदर्शन किया। इन नाटकों के द्वारा अनेक कुशल अभिनेता एवं अभिनेत्रियाँ सामने आयी और बडी द्रुत गति के साथ तेलुगु रंगमंच का विकास होने लगा।

विशेषकर राजमन्ड्री, मछली‌पट्टणम्, विजयवाडा, गुटूर, नेल्लूरु, बल्लारी आदि शहरो में स्थापित नाटक कम्पनियो ने तेलुगु नाटक एवं रंगमंच के विकास मे अभूतपूर्व योगदान दिया। बल्लारी मे सरस विनोदिनी सभा के नाम से एक नाटक समाज की स्थापना करके स्वर्गीय धर्मवरम् कृष्णमाचार्युलु ने असंख्य अंग्रेजी, संस्कृत व तेलुगु नाटकों का प्रदर्शन कराया।

तेलुगु रंगमंच में बल्लारी राघवाचार्य के आगमन से एक अपूर्व क्रांति पैदा हुई। श्री राघवाचार्य ने "शेक्सपियर" के कई नाटको का प्रदर्शन बल्लारी मद्रास, विजयवाडा आदि केन्द्रों में ही नही बल्कि लंदन में भी प्रदर्शित करके प्रेक्षकों से प्रशंसा प्राप्त कर ली है। आन्ध्र के महानटों में इनका स्थान सर्वप्रथम माना जाता है। इनके द्वारा अभिनीत नाटकों मे दुर्योधन, कंस, हिरण्यकश्यपु आदि पात्र आज भी उनके यश और अभिनय कुशलता के अद्भुत उदाहरण माने जाते है।

तेलुगु नाटक के इतिहास में "सुरभि नाटक कंपनी" का योगदान अविस्मरणीय है। नाटक कला को ही अपना पेशा बनाकर परिवारों के साथ गाँव-गाँव में जाकर इस कम्पनी ने नाटकों का प्रदर्शन किया। इस कम्पनी का इतिहास भी एक शताब्दी का है।

राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ तेलुगु नाटक साहित्य में भी अभूतपूर्व क्रांति हुई। इस आन्दोलन के प्रभाव से "रोशनारा", "रमपुत्र विजय", "राणा प्रताप", "दुर्गादास", "राजसिंह", "शिवाजी", "चन्द्रगुप्त", "मेवाड़ पतन", इत्यादि असंख्य नाटक प्रकाश में आये। दामराजु पुण्डरीकांक्ष ने "गाँधी विजयम्" नाम से राष्ट्रीय विचारधारा से ओतप्रोत एक नाटक लिखा, जिसके पात्र गाँधीजी, तिलक, मोतीलाल नेहरू इत्यादि ने प्रेक्षकों के दिल में देशभक्ति का बीजारोपण किया।

१६०० से १६३० तक तेलुगु रंगमंच के विकास में जमींदारों एवं सम्पन्न परिवार के उदारमना लोगों ने योगदान दिया। सारा खर्च उठा कर विभिन्न नगरों में प्रदर्शन करवाया। थिएटर निर्मित किये, लेखकों को प्रोत्साहन दिया और नाटक कम्पनियाँ भी चलायीं। लेकिन इसके बाद तेलुगु रंगमंच ठेकेदारों के हाथों में चला गया। जहाँ पहले नाटकों का प्रदर्शन एक विशुद्ध कला मानकर उनकी आराधना होती थी, वहाँ पर १६३० के बाद एक व्यावसायिक रूप धारण करके नाटक अपनी प्राचीन गरिमा से वंचित होने लगे। लगभग इसी समय में सिनेमा का आविर्भाव हुआ, फलत तेलुगु रंगमंच के विख्यात नट और नटी फिल्म-क्षेत्र में चले गये। नाटकगृह सिनेमा गृह के रूप में परिवर्तित होने लगे।

आन्ध्र नाटक कला परिषद—आन्ध्र में एक ओर जहाँ पेशेवर नाटक और ठेकेदार नाटक विस्तृत पैमाने पर चल रहे थे, उसी समय १६२६ में तेनाली में 'आन्ध्र नाटक कला परिषद्' की स्थापना हुई। इससे अनेक नाटककारों, अभिनेता और अभिनेत्रियों में एक नया उत्साह आया। इस प्रकार नाटक कला और रंगमंच के विकास में एक नये अध्याय का सूत्रपात हुआ। वास्तव में नाटक कला परिषद की स्थापना के पश्चात ही अत्यधिक सामाजिक नाटक रचे गये व प्रदर्शित होने लगे। इसके पूर्व भी कतिपय सामाजिक नाटक रचे गये। किंतु उनमें दो-चार नाटक ही विशेष लोकप्रिय हुए। वैसे नाटक कला परिषद की स्थापना १६२६ में हुई। किंतु १६४६ तक परिषद के द्वारा उल्लेखनीय कार्यक्रम प्रस्तुत नहीं हुए। प्रारम्भ में परिषद के द्वारा नाटक प्रतियोगिताएँ संचालित होती थी और श्रेष्ठ नाटकों व कलाकारों को नकद पुरस्कार तथा स्वर्ण पदक देकर सम्मानित किया जाता था। यह कार्यक्रम

१६४६ के बाद पुनः चालू हुआ। उत्तम सामाजिक रचनाओं को पुरस्कार देने की व्यवस्था करके नाटक लेखन व प्रदर्शन के लिये भी कुछ नियम बनाये गए। परिषद का वार्षिक आयोजन एक विशाल सांस्कृतिक समारोह के रूप में होता था। जनता उन नाटकों को देख मनोरंजन के साथ सामाजिक विकृतियों से दूर रहने की प्रेरणा भी ग्रहण करती थी।

१६४६ में नाटक कला परिषद ने नाटक-प्रतियोगिता का आयोजन किया। उस संदर्भ में आचार्य आत्रेय ने श्री कोडमुदि गोपाल राय शर्मा कृत "एदुरीता" (विपरीत तैर) नाटक का प्रदर्शन करके उत्तम अभिनेता तथा दर्शक के पुरस्कार प्राप्त किये। यह नाटक वर्णान्तर विवाहों के समर्थन में रचा गया था। इसके उपरान्त सामाजिक कुरीतियों तथा अन्धविश्वास के खण्डन में अनेक उत्तम नाटक प्रकाश में आये। तदुपरांत १६४६ में आचार्य आत्रेय द्वारा विरचित "एन० जी० ओ०" (गुमाश्ता) सर्वोत्तम नाटक घोषित हुआ। आत्रेय के अन्य नाटकों में "ईनाडु" (आज) हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रबोध करने वाला नाटक पर्याप्त लोकप्रिय हुआ। इनके द्वारा प्रणीत "विश्व शान्ति" (युद्ध की विभीषिका का खण्डन व शान्ति की स्थापना पर बल देने वाला नाटक) "कप्पलु" (मेंढक), "भयं" तथा "सम्राट अशोक" आदि सफलतापूर्वक सैकड़ों बार मंच पर अभिनीत हुए। "कप्पलु" सामाजिक कुरीतियों पर एक व्यंग्यप्रधान नाटक है तो "सम्राट अशोक" प्राचीन इतिहास की समकालीन स्थिति पर व्याख्यात्मक एवं प्रतीकात्मक नाटक है।

वैसे श्री गुरजाड अप्पाराव ने "कन्याशुल्कम" नाटक रचकर तेलुगु नाटक-जगत में उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में ही अभूतपूर्व क्रांति पैदा की थी। तदनन्तर अंग्रेजी भाषा के विख्यात नाटककार इब्सन के नाटकों के आधार पर राजमन्नार, बल्लारी राघवाचार्य इत्यादि ने समाज में नारी के प्रति होने वाले अत्याचारों की कटु आलोचना करते हुए अनेक नाटक रचे। समाज में जमींदारों व नवाबों तथा उच्च वर्ग द्वारा निम्नवर्ग के प्रति होने वाले शोषण पर स्वतंत्रता के पूर्व ही कई नाटक समाज के सम्मुख प्रस्तुत हुए।

परन्तु १६४७ तथा १६५५ के बीच जो नाटक रचे गये उनमें कृषक, मजदूर तथा जमींदारों के बीच होने वाले संघर्ष को अधिक प्राथमिकता देते हुए असंख्य नाटक रचे गये। इन नाटकों के नायक पीडित, शोषित एवं दलित वर्ग के नेता हैं।

आत्रेय ने समाज, शासन-व्यवस्था, पीडित प्रजा का आक्रन्दन, असहन-शीलता, क्रोध इत्यादि सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विषमताओं पर करारे की चोट करते हुए जनता का प्रतिनिधित्व किया। जनता की समस्त

प्रकार की समस्याओं का यथार्थ चित्रण करते हुए उनमें जागृति पैदा करने वाले नाटक रचकर आचार्य आत्रेय आधुनिक नाटक के युगकर्त्ता बन गए।

आत्रेय के अनुकरण पर दलित वर्गों के जीवन से सम्बन्धित निराशा, व्यथा, कुण्ठा अनास्था तथा विषमताओं का चित्रण करते हुए श्री अनिशेट्टि सुब्बाराव ने "गालि मेडलु" (हवामहल), श्री पिनिशेट्टि श्री राममूर्ति ने "कुल लेनि पिल्ल" (निम्न जाति की युवती), "पल्ले पडुचु" (देहाती युवती), "अन्नाचेल्लेलु" (भाई-बहन), "पंजरं लोनि पक्षुलु" (पिंजड़े के पक्षी) रचे जो मंच पर अनेक बार सफलतापूर्वक मंचित हुए।

तेलुगु नाटक-क्षेत्र में आन्ध्र नाटक कला परिषद के साथ दो-तीन अन्य संस्थाओं ने भी अभूतपूर्व प्रयोग किये। उनमे अत्यन्त उल्लेखनीय प्रयास "आन्ध्र विश्व कला परिषद" (आन्ध्र विश्वविद्यालय वालटेर) के द्वारा स्थापित "प्रयोगात्मक नाटक मंच (Experimental Theatre) तथा १६४५ में विजयवाडा में डॉ० राजा राव के पर्यवेक्षण मे स्थापित "प्रजा नाट्य मंडली" द्वारा हुए है। १६४४-१६६३ के बीच आन्ध्र विश्वविद्यालय के नाटक समाज के सहयोग से लगभग १७५ छोटे व बड़े नाटको का प्रदर्शन करके तेलुगु नाटक रंगमंच के क्षेत्र में अभूतपूर्व चेतना पैदा की। १६४३-१६६३ के मध्य जो आन्ध्राभ्युदय उत्सव मनाये गये, उनके द्वारा विद्यार्थी-शिक्षकों के बीच तेलुगु नाटक-प्रदर्शन व प्रयोग सम्बन्धी कार्यक्रमों मे अनुपम जागृति हुई। इन उत्सवो के सन्दर्भ में अन्तरकालेज नाटक प्रतियोगिताएँ आयोजित हुई, जिनमें उत्तम नाटक, अभिनेता, प्रदर्शन एवं नाटककार भी पुरस्कृत किये जाते थे। इस संस्था की ओर से दर्जनो सामाजिक, ऐतिहासिक, समस्याप्रधान, संगीत व नृत्य रूपक, गेयात्मक मूक नाटक तथा अंग्रेजी व हिन्दी नाटक भी प्रदर्शित हो प्रशंसित हुए है।

१६४५ मे स्थापित प्रजा नाट्य मण्डली की ओर से श्री सुंदर सत्यनारायण तथा वासिरेड्डी भास्कर राव द्वारा संयुक्त रूप मे रचित "मुंदडुगु" (आगे कदम) तथा "मा भूमि" (हमारी जमीन) अनेक नगरो मे सफलतापूर्वक मंचित हुए। १२ प्रदर्शनो के पश्चात तत्कालीन शासन ने 'मुंदडुगु' नाटक के प्रदर्शन पर रोक लगा दी और वह नाटक जब्त हुआ।

तेलुगु नाटक रंगमंच के विकास मे अनुपम योगदान देने वाला नाटक "समाज तेलुगु लिटिल थिएटर" है। इसके संस्थापक श्री कोप्परपु सुब्बाराव ने न केवल अनेक नाटक रचकर सफलतापूर्वक उनका प्रदर्शन कराया अपितु नाटक कला सम्बन्धी सैकड़ों तेलुगु व अंग्रेजी की पुस्तकों का एक सुन्दर पुस्तकालय भी स्थापित किया।

इसके अतिरिक्त आन्ध्र प्रदेश नाट्य संघ, आन्ध्र नाटक कला परिषद, संगीत नाटक अकादमी इत्यादि के संयुक्त तत्वावधान में प्रतिवर्ष नाटकोत्सव मनाये जाते हैं। इन संस्थाओ ने नाट्य विद्यालय का भी संचालन किया। तेलुगु नाटक-क्षेत्र मे पुनर्जागरण पैदा करने के विचार से राजमहेन्द्री के "राघव कला समिति", "वेंकटगिरि नाटक समाज" बापट्ला की "कलावाणी", विजयवाडा का "रसना समाख्य", श्रीकाकुलम का "नटराज कला मन्दिर", अनन्तपुर का "ललित कला मन्दिर", पालकोल्लु की "आन्ध्र नाट्क मंडली", कोप्परपु सुब्बाराव की "नाटक कला परिषत्तु", नरसापुरम की "नाटक कला परिषत्तु" कूडूर का "संस्कृति सम्मेलन" तथा अन्यान्य ललित कला परिषत्तु, रायल नाटक कला परिषत्तु, इत्यादि असंख्य नाटक समाजो ने नाटक प्रदर्शन की प्रतियोगिताएँ चलाकर उत्तम नाटक, नटन्नटी, प्रदर्शन, रंगकर्मी इत्यादि को पुरस्कार, पदक, प्रमाण-पत्र एवं आर्थिक सहायता प्रदान करके तेलुगु रंगमंच के विकास मे अनुपम योगदान दिया।

इस प्रकार नाटक समाजो व संस्थाओं द्वारा प्रोत्साहन पाकर नाटक लेखक कला व प्रदर्शन मे अनेक नवीन प्रयोग किये गये। नाटक वस्तु मे आश्चर्य-जनक परिवर्तन आया, सामाजिक चेतना, "कमिटमेंट" प्रधान नाटक रचे गये। नारी पात्रों के बिना भी नाटक लिखे गये। फ्राइड, कार्लमार्क्स, फ्रेडरिक आदि मनीषियों के विचारो को प्रतिबिम्बित करने वाले नाटक भी रचे गये।

कोर्रपाटि गंगाधर राव ने ८८ नाटक रचकर विभिन्न प्रकार के प्रयोग किये। "तस्मात जाग्रत", "लोक पोकडा" आदि इनके नाटक प्रेक्षकों मे अभिरुचि पैदा करने मे सफल रहे।

तेलुगु के सुप्रसिद्ध नाटककारों मे भीमन्ना, कोडालि गोपाल राव, वेन्नम-कोंड रामदास, अंगर सूर्याराव, टी० वी० नरसराजु, रावि कोंडल राव, कोर्लपाटि श्रीराममूर्ति, वेदात कवि, पडाल, चिल्लर भाव नारायण, भमिडि-पाटि कामेश्वर राव, राधाकृष्ण, के० एल० नरसिंहाराम, गोल्लपूडि मारुती रा, श्रीवास्तव, सोमंचि यज्ञन्न शास्त्री आदि प्रमुख है।

श्री सी० नागभूषणम 'शशि थिएटर्स' की ओर से "रक्त कन्नीरु" (खून के आँसू) अब तक ३०० बार आन्ध्र मे प्रदर्शित करके तेलुगु रंगमंच मे तहलका मचा दिया। सर्वश्री राचकोंड विश्वनाथ शास्त्री, कोडमुदि श्रीराम-मूर्ति, मंथा वेंकट रमण, आर० वि० एम० गणेश पात्रो, एन० आर० नंदी, पलिगुम्मि पद्मराजु, राघव, रामस्वामी, बुच्चिबाबू, सच्चिदानन्द शास्त्री, कुंदुबरावा, सी० नारायण रेड्डी, गोरा शास्त्री, अमरेन्द्र, हितश्री, अमंचर्ल गोपाल राव, चिल्लर भाव नारायण, वेणु, के० वी० रमणा रेड्डी नार्ल

वेकटेश्वर राव आदि असंख्य नाटककारो ने तेलुगु नाटक साहित्य के विकास मे अनुपम प्रतिभा का योगदान किया है।

आज आन्ध्र मे सामाजिक चेतना को दृष्टि मे रखते हुए तेलुगु रंगमंच मे प्रयोगात्मक नाटक प्रस्तुत किये जा रहे है। श्री बी० नरसिंग राव ने "जन नाट्य मंडली" (हैदराबाद) स्थापित कर "Street Corner Plays" (नुक्कड नाटक) प्रदर्शित करना प्रारम्भ किया। "थिएटर आर्ट्स की ओर से गद्दर भी इस विधा को अधिक लोकप्रिय बनाने मे संलग्न है। गली-कूचों के नुक्कडो पर ३०-४५ मिनट के अन्दर किसी प्रकार के अलंकारों के बिना गाँव व शहरों में भी ऐसे नाटक प्रदर्शित किये जा रहे हैं। इन नाटको की विशेषता यह है कि गली के किसी नुक्कड पर साधारण दरजे से पर्दे का उपयोग करके नाटक प्रदर्शित किये जाते हैं। एक व्यक्ति समय, संदर्भ व घटना के आधार पर अनेक पात्रों का रूप धरकर अभिनय करता है। इस प्रकार मंचित होने वाले अनेक तेलुगु नाटको के साथ बगला के प्रख्यात नाटककार श्री बादल सरकार का जुलूस "ऊरेगिंपु" नाम से बीसो बार मंचित होकर जनप्रिय हुआ है।

अन्त में तेलुगु नाटक एवं रंगमंच की लोकप्रियता का यही एक उदाहरण माना जा सकता है कि आजकल तेलुगु मे एक हजार के लगभग नाटक तथा ६००० के करीब एकांकी रचे गये है और तेलुगु नाटक देखने कवीन्द्र रविन्द्र-नाथ टैगोर स्वयं विजयावाडा पधारे और नाट्य-सम्राट स्वर्गीय पृथ्वीराज कपूर ने तेलुगु नाटक परिषद के वार्षिकोत्सव में उपस्थित होकर न केवल प्रमुख कलाकारों को पुरस्कार प्रदान किये अपितु गद्‌गद् होकर तेलुगु रंगमंच की सफलता की हार्दिक प्रशंसा भी की।

७

तेलुगु का समीक्षा-साहित्य

तेलुगु मे समीक्षा-साहित्य का प्रादुर्भाव १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध मे हुआ और वह बराबर प्रगति को प्राप्त करता जा रहा है। तेलुगु के सम्पूर्ण-समीक्षा साहित्य को हम स्थूल रूप से दो भागो मे विभक्त कर सकते है। तेलुगु भाषा से सम्बन्धित समीक्षा और दूसरा साहित्य से सम्बन्धित समीक्षा। पाश्चात्य भाषा शास्त्रवेत्ताओं ने बडी छान-बीन के उपरान्त अपनी भाषाओ के लिए जो सिद्धान्त निर्धारित किये, उनका अपनी भाषाओ के साथ समन्वय कर नयी रीतियों में यहाँ के विद्वानों ने विमर्शनात्मक ग्रन्थ प्रस्तुत किये। कुछ ऐसे भी ग्रन्थ रचे गये है जिनमे केवल तेलुगु भाषा से सम्बन्धित समीक्षा ही नही अपितु तेलुगु के साथ अन्य दाक्षिणात्य भाषाओ के सम्बन्ध पर विचार किया गया है। ये समीक्षा-ग्रन्थ भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्व-पूर्ण हैं। इस प्रकार तेलुगु मे समीक्षा-शास्त्र ग्रन्थों के प्रणयन का सूत्रपात हुआ।

गद्य साहित्य के विभिन्न अंग एवं उपांगो का विकास भी होने लगा था। "गद्य ब्रह्म" नाम से विख्यात श्री वीरेशलिंगम् ने "विवेकवर्धिनी", "सतीहित बोधिनी" और "हास्य संजीवनी" नामक पत्रों मे विमर्शनात्मक लेख लिखना प्रारम्भ कर दिया। श्री वीरेशलिंगम् केवल कवि, नाटककार, कहानीकार और उपन्यासकार ही नही थे अपितु वे आलोचक भी थे। उन्होने देखा कि लोग मनमाने ढंग पर रचनाएँ करते जा रहे हैं। उनका समुचित रूप से परिष्कार न किया जाए तो साहित्य के विगडने की संभावना थी। अतः उन्होने उन रचनाओ पर आलोचना रूपी अंकुश का प्रहार किया। ये तेलुगु साहित्य के "महावीर प्रसाद द्विवेदी" कहे जा सकते है। इन्होंने भी द्विवेदी जी की तरह पत्र-पत्रिकाओं में अपने आलोचनात्मक लेखो द्वारा काव्य और कवियों के गुण-दोषो का निरूपण किया। साथ ही साथ आलोचनात्मक ग्रन्थ भी प्रकाशित किये है। इनका प्रथम समीक्षा ग्रन्थ 'कोक्कोड वेंकटरत्न कविकृत

विग्रहतत्र विमर्शनम्' है। उसमें साहित्यिक समीक्षा-रीतियों का अभाव नहीं, परन्तु इसमें व्यक्ति-दूषण खटकता है।

तेलुगु में समीक्षा-साहित्य का प्रारम्भिक समय पत्र-पत्रिकाओं में विमर्शनात्मक लेख प्रकाशित करने तक सीमित रहा है। उसमें 'विवेकवर्धिनी', 'अमुद्रित ग्रन्थ चिंतामणि', 'कलावती', 'आन्ध्र भाषा संजीवनी' आदि पत्रिकाओं में विशेष रूप से समीक्षा प्रधान निबन्ध प्रकाशित होते थे और इनमें 'रेफद्वय', 'पात्रोचित भाषा' आदि विषयों पर आलोचना चलती थी। क्रमश यह आलोचना पुस्तक रूप में होने लगी। श्री टी० एम० शेषगिरि शास्त्री जी ने 'अर्धानुसार तत्व' और 'आन्ध्र शब्द तत्वम्' नाम से दो समीक्षा-ग्रन्थ प्रकाशित किये। यह सन् १८७३ की बात है। फिर ५ वर्ष के उपरान्त श्री गोपालराव नायुडु ने तेलुगु भाषा के सम्बन्ध में बड़ी छान-बीन की और इस अनुसंधान के परिणामस्वरूप 'आन्ध्र भाषा चरित्र संग्रहम्' (तेलुगु भाषा का इतिहास संग्रह) नामक ग्रन्थ तेलुगु वाङ्मय को भेंट किया।

भाषा सम्बन्धी आलोचनात्मक ग्रन्थों के साथ अलंकार शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना अधिक होने लगी। श्री वीरेशलिंगम पंतुलुजी ने बालकों के उपयोगार्थ 'काव्य संग्रह' और 'अलंकार संग्रह' नामक दो पुस्तकें लिखीं। 'अलंकार संग्रह' नाम से श्री पी० रंगाचार्युलुजी ने भी एक पुस्तक लिखी है। श्री ए० वरदाचारीजी ने 'तेलुगु वचन (गद्य) रचना' नाम से गद्य साहित्य पर एक समीक्षात्मक ग्रन्थ उपस्थित किया। श्री एम० एच० सुब्बरायुडु जी ने 'उपाध्याय बोधिनी' और 'उत्कलेखन चन्द्रिका' लिखी। श्री परवस्तु रंगाचार्युलु कृत 'वर्ण निर्णय' भी एक उत्तम कृति है। श्री काशीभट्ट ब्रह्मय्य शास्त्री ने भास्कर कवि पर 'भास्कररोदंतम्' नामक एक समीक्षात्मक ग्रन्थ लिखा।

प्रेस की स्थापना के उपरान्त धड़ाधड़ प्राचीन ग्रन्थ, जो अमुद्रित थे, प्रकाशित होने लगे। उस समय उन ग्रन्थों की भूमिका के रूप में उन उन काव्यों की जो समीक्षात्मक भूमिका लिखी गयी, वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। ये आमुख अत्यन्त मूल्यवान व उपयोगी साबित हुए। ये आमुख ५-१० पृष्ठ की साधारण आलोचनाएं नहीं अपितु ५० पृष्ठों से लेकर सौ-डेढ़ सौ पृष्ठ के हैं। हिन्दी में श्री रामचन्द्र शुक्लजी और लाला भगवानदीन ने इस प्रकार की भूमिकाएँ लिखी हैं। इसी काल में श्री वेन्नेटि रामचन्द्र रावजी ने 'मनु-वसु चरित्र-रचना विमर्शनम्' नामक ग्रन्थ लिखा जो तेलुगु साहित्य के उत्तम महाकाव्य 'मनु चरित्र' और 'वसु चरित्र' पर समीक्षात्मक है।

तेलुगु भाषा और साहित्य के क्षेत्रों में खोज का कार्य बढ़ता गया, फलत. समीक्षा-साहित्य का समुचित रूप में विकास होने लगा। धीरे-धीरे

पाश्चात्य नवीन समीक्षा-पद्धति का प्रभाव तेलुगु पर पूर्ण रूप से लक्षित होने लगा। प्राचीन अलकारिक पद्धति पर जो समीक्षा चलती रही, क्रमश वह लुप्तप्राय होने लगी। तेलुगु साहित्य मे नूतन पाश्चात्य समीक्षा-पद्धति पर प्रथम ग्रन्थ प्रस्तुत करने वाले श्री मट्टमंचि रामलिगा रेड्डी जी थे। इन्होने महाकवि पिंगलिसूरन्ना की कविता-शक्ति का निरूपण करने के अभिप्राय से 'कवित्व तत्व विचारम्' नामक एक सुन्दर समीक्षात्मक ग्रन्थ प्रस्तुत किया। यह अपने ढंग का अद्वितीय है। इसमें समीक्षा सम्बन्धी कई नये सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है। इस ग्रन्थ ने तेलुगु साहित्य मे तहलका मचा दिया। नये आलोचकों को प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। फिर क्या था? श्री वंगूरि सुब्बाराव जी ने तेलुगु साहित्य का अच्छी तरह से अनुसधान करके 'आन्ध्र वाङ्मय चरित्र' (तेलुगु साहित्य का इतिहास) लिखा। इससे वे सतुष्ट नही रहे, अन्वेषण का कार्य चलता रहा, फलस्वरूप तेलुगु साहित्य को 'शतक कवुल चरित्र', 'वेमना' आदि अनेक विमर्शनात्मक ग्रन्थ प्रदान किये। इनके उपरांत तेलुगु साहित्य का इतिहास कई लोगो ने अपने ढंग से खोज करके प्रस्तुत किया है। उनमे श्री के० वेंकटनारायण का 'आन्ध्र वाङ्मय चरित्र संग्रहम्', श्री काशीनाथुनि नागेश्वरराव पंतुलु कृत 'आन्ध्र वाङ्मय चरित्र' उल्लेखनीय है। श्री खंडवल्लि लक्ष्मीरंजनमजी ने भी तेलुगु साहित्य का संक्षिप्त इतिहास 'आन्ध्र साहित्य चरित्र सग्रहम्' नाम से दो भागो मे प्रस्तुत किया है।

तेलुगु साहित्य अत्यन्त विस्तृत है। उसका सपूर्ण साहित्य एक ही ग्रन्थ मे प्रस्तुत करना कठिन था। अलावा इसके कि कुछ आलोचकों ने इस क्षेत्र मे गहरी छान-बीन करके दो-तीन ग्रन्थ (साहित्य का इतिहास) प्रस्तुत किये थे, अत. बाद के आलोचको ने तेलुगु वाङ्मय के एकाध युग को अथवा गद्य या पद्य सम्बन्धी किसी एक शाखा को लक्ष्य मे रख कर खोज की और उससे सम्बन्धित समीक्षा-ग्रन्थ तैयार किये। ऐसे लोगो मे श्री टेकुमल्ल अच्युत राव प्रथम है। इन्होने केवल तेलुगु साहित्य का स्वर्ण-युग कहे जाने वाले विजयनगर साम्राज्य के समय के साहित्य पर शोध-कार्य किया और 'विजय नगर साम्राज्य मंदलि 'आन्ध्र वाङ्मय चरित्र' नाम से एक उत्तम विमर्शनात्मक ग्रन्थ प्रस्तुत किया। श्री गोव्वूरि वेंकटानंद राघवरावजी ने तेलुगु के गद्य साहित्य की खोज की और 'आन्ध्र गद्य वाङ्मय चरित्र' नामक समीक्षा-ग्रन्थ लिखा। श्री भोगराजु नारायणमूर्ति ने भी तेलुगु कविता की छान-बीन करके उस पर 'आन्ध्र कवित्व चरित्र' नामक एक आलोचनात्मक ग्रन्थ तैयार किया है।

मद्रास विश्वविद्यालय की तरफ से श्री निडदवोलु वेंकटराव ने अनुसंधान का अच्छा कार्य किया। इनके अनुसंधान के फलस्वरूप अब तक 'तेलुगु कवुल

चरित्र' (तेलुगु कवियों का इतिहास), *'आन्ध्र वचन (गद्य) वाङ्मयम्'* और 'दाक्षिणात्याघ्र साहित्य चरित्र' उल्लेखनीय है। उन्होंने तेलुगु की प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'भारती' मे शैव वाङ्मय तथा अन्य विषयों पर जो समीक्षात्मक लेख प्रकाशित किये, वे अधिक स्थायी मूल्य रखते है।

इस समय तेलुगु के समीक्षा-साहित्य को समृद्ध करने में अनेक अनुसधान-कर्ता लगे हुए है। श्री चागटि शेषय्याजी तेलुगु वाङ्मय के समस्त कवियो का समग्र परिचय एक बृहत् समीक्षा ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे है। उसका नाम है 'आन्ध्र कवितरगणि'। इसके अब तक ४-५ भाग प्रकाशित हो चुके हैं। दस भागो मे प्रकाशित करने की योजना है। इसमे कवियों का व्यापक परिचय ही नही दिया जाएगा अपितु उसके साथ उस समय की सामाजिक, राजनैतिक आदि परिस्थितियो का भी परिचय दिया जाएगा, जो साहित्य के इतिहास का ही काम देने वाला सिद्ध होगा।

तेलुगु के कवियो की जीवनियो व परिचय अनेक लोगों ने प्रकाशित किया है। श्री वीरेशलिगमजी ने 'तेलुगु कवुल चरित्र' नाम से तेलुगु कवियों का पूर्ण परिचय (इतिहास) तीन भागो में प्रकाशित किया है। यह अपने ढंग का अनूठा ग्रन्थ है। इससे अनेक लोगो को मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। जहाँ कवि और लेखको ने कवियो की जीवनियाँ प्रकाशित की वहाँ कवयित्री व लेखिकाएँ भी चुप नही रही। श्रीमती ऊटुकूरि लक्ष्मीकातम्माजी ने 'आन्ध्र कवयित्रुलु' (आन्ध्र कवयित्रियाँ) नामक समीक्षा-ग्रन्थ लिखा जिसे 'तेलुगु भाषा समिति' का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ।

डॉ० नेलटूरि वेकटरमणय्या ने मधुरा और तजाऊर के नायक राजाओं के समय के आन्ध्र वाङ्मय की समीक्षा करते हुए उस युग की समस्त साहित्यिक प्रवृत्तियो पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला और 'दक्षिणाध्र वाङ्मय चरित्र' नामक एक सुन्दर समीक्षा-ग्रन्थ प्रस्तुत किया। यह ग्रन्थ आन्ध्र वाङ्मय के केवल एक युग पर प्रकाश डालने वाला मात्र है। विजयनगर साम्राज्य के समय मे तेलुगु साहित्य ने बडी उन्नति की। इसके बाद तंजाऊर और मधुरा के राजाओ के दरबारो मे तेलुगु साहित्य ने अच्छा विकास प्राप्त किया था। श्री वेकटरमणय्या ने इस युग के साहित्य की बडी छान-बीन की और अनेक अज्ञात ग्रन्थो एवं कवियो का परिचय आन्ध्र-जगत् को कराया है।

स्वर्गीय श्री सुवरम प्रताप रेड्डी जी ने आन्ध्रवासियो के सामाजिक जीवन का अच्छा अध्ययन किया और प्राचीन समय मे आज तक के आन्ध्र जीवन का परिचय देने वाला एक बृहत् ग्रन्थ 'आन्धुल साधिक चरित्र' (आन्ध्र-वासियो का सामाजिक इतिहास) प्रस्तुत किया। इस ग्रन्थ को १९५५ मे भारत सरकार मे ५००० रुपये का पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

आज तो गद्य व पद्य के प्राय समस्त प्रकार के अग और उपागो का बड़ी तेजी के साथ विकास होता जा रहा है। वाङ्मय की प्रत्येक शाखा व उपशाखा की बडी सूक्ष्मता के साथ खोज की जा रही है। उस शाखा से सम्बन्धित सभी विवरणो का विस्तृत रूप से परिचय भी दिया जा रहा है। मानव अधिक जिज्ञासु होकर वस्तु की जड तक पहुँचने और उसके रहस्यो के उद्घाटन करने में प्रवृत्त है। इसमे अनेक नये विषयों का पता लग रहा है और मानव का मस्तिष्क भी विकसित होता जा रहा है। आज तक जो अनादृत वाङ्मय माना जाता था, वह भी आज साहित्य के अतर्गत माना जा रहा है। उदाहरण के लिए लोक-साहित्य की ही बात लीजिए। इसकी बड़ी छान-बीन इस समय हो रही है। इस साहित्यिक शाखा के उद्धार मे और इसकी सम्यक् रूप से समीक्षा करके विस्तृत रूप से समाज को परिचित कराने के हेतु कई विद्वान लगे हुए हैं। श्री हरि आदिशेषुवुजी ने इस शाखा की खोज करके 'जानपद गेय विमर्श' (लोकगीतो की समीक्षा) नाम से उत्तम आलोचनात्मक ग्रन्थ तैयार किया है। लेखक के अनुसधान कार्य की प्रशस्ति सर्वत्र हुई। तेलुगु भाषा समिति ने पुरस्कार द्वारा लेखक को गौरवान्वित भी किया है। श्री मदनूरि संगमेशम जी ने भी 'तेलुगु साहित्य में हास्य रस' नामक एक विमर्शनात्मक ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ को भी तेलुगु भाषा समिति का पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

समीक्षा-साहित्य को इस समय तेलुगु भाषा समिति द्वारा खूब प्रोत्साहन प्राप्त हो रहा है। १६५५ मे तेलुगु भाषा समिति ने 'दक्षिणात्युल नाट्य कला चरित्र' (दक्षिणात्यो की नृत्य-कला का इतिहास), जिसे श्री नटराज रामकृष्ण ने तैयार किया था, पुरस्कार मिला। इसके अलावा 'कवित्तय', श्रीवास्तव कृत 'उप: किरणालु' आदि अनेक समीक्षा-ग्रन्थो को तेलुगु भाषा समिति ने पुरस्कृत किया है।

तेलुगु साहित्य के अनुसंधानकर्त्ताओ मे श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री, श्री कोमर्राजु लक्ष्मण राव पंतुलु, श्री मल्लादि रामकृष्ण शास्त्री, श्री राल्लपल्लि अनंतकृष्ण शर्मा, श्री नेलटूरि वेंकटरमणय्या, श्री पिंगलि लक्ष्मीकांतम् विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन लोगों ने अनेक आलोचनात्मक लेख लिखे है जो बाद को पुस्तकाकार मे प्रकाशित हुए है। उनके द्वारा तेलुगु वाङ्मय व इतिहास का अच्छा परिचय मिलता है। इन लेखो के अलावा श्री प्रभाकर शास्त्री ने कवि सार्वभौम श्रीनाथ चरित्र शृंगार नैषध पर 'शृंगार श्रीनाथम्' नाम से एक श्रेष्ठ समीक्षा-ग्रन्थ लिखा है। वैसे ही श्री अनंत कृष्ण शर्माजी का 'वेमना' भी उत्तम कोटि का समीक्षा-ग्रन्थ है। इन्होंने नाटक साहित्य पर जो भाषण दिये वे भी समीक्षा-साहित्य में स्थायी मूल्य रखते हैं।

८

यक्ष गान

'यक्ष गान' आन्ध्र का एक प्राचीन लोकगीति नाट्य है। इसमें साहित्य, संगीत, नृत्य, अभिनय इत्यादि कलाओं का अच्छा संगम हुआ है। उन दिनों में संस्कृत से रूपक, उपरूपक आदि केवल सभ्य समाज के मनोरंजन के साधन बने हुए थे। सर्वसाधारण प्रजा का मनोरंजन यक्षगान-जैसे देशी लोकगीति नाट्य ही किया करते थे।

यों तो मानव की नाटक कला की तृष्णा एवं रूपक प्रदर्शन की अभिलाषा भिन्न वर्गों मे, भिन्न रूपों मे अभिव्यक्त हुई। आन्ध्र देश का प्रथम नाट्य-कला का रूप 'कुरवंजि' माना जा सकता है। 'कुरव' एक जंगली जाति है, 'अंजि' का अर्थ कदम होता है। इस प्रकार कुरवंजि = 'कुरव' + 'अंजि' दो शब्दों के संयोग से बना है—अर्थात् कुरव नामक एक जंगली जाति का (नृत्य मुद्रा समन्वित) कदम। उनका प्रारंभिक नाट्य रूप कुरवंजि कहलाया। कुरव जाति के लोग दक्षिण मे—मुख्यत आन्ध्र मे तिरुपति, श्री शैलम् इत्यादि पुण्य तीर्थों मे यात्रियों के विनोदार्थ नृत्य किया करते थे। कुरवंजि आन्ध्र मे ही नहीं अपितु समस्त दक्षिण प्रदेश मे प्रचलित है। आन्ध्र मे ज्ञान कुरवंजि, जीव कुरवंजि तथा सत्यभामा कुरवंजि नाम से उसके तीन रूप प्रसिद्ध थे। किन्तु आज वे सब केवल नाम मात्रावशेष हैं।

कुरवंजि के अनुकरण पर यक्षगानों का निर्माण हुआ है। जक्कुलु नामक जाति ने जिस देशी संगीत नाट्य को जन्म दिया, वही जक्कुल पाट याने 'यक्ष गान' नाम से विख्यात हुआ। यक्ष जाति से सम्बन्धित गीत या गान होने के कारण कालान्तर मे यक्षगान कहलाये। इसका देशी रूप ही जक्कुल पाट है। यक्षगान 'नाटक' नाम से भी व्यवहृत है।

प्रथम पाल्कुरिकि सोमनाथ ने अपने ग्रन्थों मे समकालीन तथा प्राचीन अनेक देशी नृत्य, संगीत एवं साहित्य की प्रक्रियाओं का उल्लेख किया है। तदुपरान्त कविसार्वभौम श्रीनाथ ने (ई० सन् १४३० के लगभग) अपने काव्य 'भीम खण्ड' मे द्राक्षाराम पुण्य तीर्थ की प्रस्तुति करते हुए लिखा है—

'कीर्तितु रंद्दानि कीर्ति गंधर्वुलु
गांधर्वमुन यक्षगान सरणि'

अर्थात्, 'गन्धर्व यक्षगान की शैली मे संगीत मे जिसका यश गाते हैं।' यहाँ पर यक्षगान सरणि का जो प्रयोग हुआ है, इससे अभिप्राय यही है कि गन्धर्वों ने यक्षगान पद्धति, रीति अथवा शैली में गान किया था। गान कला की निपुणता के लिए गन्धर्व प्रसिद्ध हैं ही। वे गान कला की विविध रीतियों से भलीभाँति परिचित थे। उस सन्दर्भ मे उन लोगों ने यक्षगान की रीति पर गान किया था।

जक्कुलु नामक जिस जाति ने यक्षगान को अपनाया, उसे प्रचलित एवं लोकप्रिय बनाया, वास्तव में उनकी जाति कोई भिन्न रही होगी। परन्तु यक्षगान के अभिनय को उस जाति ने अपना पेशा बनाया। यक्ष-गान को पेशा बनाने के कारण उनकी असली जाति का नाम लोप होता गया और वे 'यक्ष' कहलाये गये होंगे। यक्ष से 'जक्कु' हो गये। तदुपरान्त तेलुगु का 'लु' बहुवचन रूप जुड़ने के कारण 'जक्कुलु' हुए। इस प्रकार हम देखते हैं कि पेशेगत शब्द क्रमश. जातिवाचक रूप में परिणत हुआ होगा।

'जक्कुलु' जाति के लोग आन्ध्र देश के गुण्टूर, गोदावरी आदि जिलों में ही नही अपितु रायलसीमा मे भी फैले हुए थे। आज भी अनन्तपुरम् जिले में जक्कुलचेरुवु (जक्कों का तालाब) नाम से एक बड़ा गाँव है। इस समय वह मद्रास और बम्बई के रास्ते में एक रेलवे-स्टेशन भी है।

१५वी शती में विरचित 'क्रीडाभिराममु' में 'जक्कुल पुरन्ध्रि' नामक गान-कला की बड़ी प्रस्तुति हुई है। उसमे यक्ष-कन्याओं (जक्कु युवतियों) का वर्णन भी हुआ है। उसी शती के उत्तरार्द्ध में श्री चेन्नशौरि द्वारा रचित 'सौरभ चरित' जक्कुजाति के संगीत रूप कथाख्यान पद्धति मे प्रस्तुत हुआ है। 'जक्कुल पुरन्ध्रि' यक्षगान का प्रारम्भिक रूप है। इस नृत्य विशेष के अनुरूप वेष धारण करके, नेपथ्यसंगीत एवं वाद्य विशेषों की सहायता से गान करते तथा गीत के अनुरूप अभिनय करते और कथा सुनाया करते थे। यह सब क्रिया-कलाप एक ही पात्र द्वारा संपन्न होता था। विभिन्न व्यक्तियों द्वारा भिन्न पात्र-धारण करने की दशा तक उस समय की कला पहुँची न थी।

१७वी शताब्दी मे रचित 'तंजापुरान्नदान' नाटक का प्रदर्शन जक्कुल रंगसानि की सराये मे संपन्न हुआ था। इस कृति द्वारा विदित होता है कि जक्कु जाति के लोग गीत एवं अभिनय कला में प्रवीण थे।

स्वर्गीय सुरवरम प्रताप रेड्डी ने लिखा है—"यक्ष गानों का नामकरण यक्ष (जक्कुल) जाति के आधार पर ही किया गया है। यक्ष अक्षस प्रान्त,

या यक्षी नामक मंगोल जाति के अथवा यूक्षॅन् प्रदेश के लोग होंगे। यह सम्बन्ध कुछ दूर का अवश्य प्रतीत होता है। यक्ष और गन्धर्व गान विद्या में प्रवीण थे। अत हमारे पूर्वजों ने नृत्ययुक्त गान का नामकरण 'यक्ष गान' किया होगा।

श्री सण्डवल्लि लक्ष्मीरंजनम् ने यक्ष गान प्रकरण में लिखा है—यक्ष गान संगीतप्रधान नाटक है। तेलुगु का प्राचीनतम, नाटक-रूप ही यक्ष गान है। यह 'यक्षगान नाटक तथा 'यक्षगान प्रबन्ध' नाम से भी व्यवहृत है। यक्षगानो मे नाटक के लक्षण, वार्त्तालाप तथा प्रवन्धात्मक वर्णनो का भी सुन्दर समन्वय हुआ है; अत यक्षगान इन दोनो नामों मे प्रचलित हुए है।

आज यक्षगान देशी शैली का नाटक माना जाता है। संस्कृत के रूपक एवं उपरूपको के लक्षणो से भिन्न होने के कारण यह लोकनाटक कहलाता है। आज यक्षगान भी नाटक की रीतियों पर अच्छा विकास कर चुका है। प्राचीन यक्ष-गानों में संस्कृत के रूपकों की भाँति नान्दी-प्रस्तावना, अंक-विभाग, सन्धि-नियम इत्यादि दिखाई नही देते। इनमे रगड विकारमु (ताल प्रधान), द्विपद तथा एलनु, अर्द्धचन्द्रिक आदि पद थे। ये सब देशी छन्द की प्रक्रियाएँ है।

प्राचीन यक्षगानो मे गद्यभाग कम था। यत्र-तत्र कथा-संविधान के अनुरूप गीत-भागों को जोडने वाले गद्यभाग मात्र थे।

यक्षगानों के प्रदर्शन के समय प्रारम्भ मे इष्टदेवता की प्रार्थना, गणेश की स्तुति होती। तदनन्तर प्राचीन कवियों का स्मरण, कृतिपति का वर्णन, कृति-कर्त्ता का परिचय होता। तत्पश्चात् ही यक्षगान का नामोल्लेख करके सूत्रधार कथा का परिचय देता. कथा-सन्धियो का परिचय सूत्रधार देता और नटी गीत गाते-गाते अभिनय करती।

कुरवंजि और यक्षगानों मे अनेक प्रकार की भिन्नताएँ हैं। कुरवंजि मे जहाँ दो-तीन पात्र होते है वहाँ यक्षगान में अनेक पात्र होते है। कथा-सूत्र को मिलाने के लिए बीच-बीच मे यक्षगानों मे गद्य का प्रयोग किया जाता है। ऐसे गद्य भाग का वाचन सूत्रधार करता है। पात्र के प्रवेश के समय नाटककार उसके वेष धारण का वर्णन करता है। वर्णन के समाप्त होते ही पात्र प्रवेश करके अपने अभिनय का प्रदर्शन करते हुए गीत गाते हैं। नाटककार के परिचय वाक्य तथा वर्णन जिन यक्ष गानो में कम होते हैं, वे नाटकीयता के अधिक निकट होते हैं। जिनमें वर्णन का अंश अधिक होता है, वे प्रबन्ध काव्य जैसे होते हैं।

यक्षगानो मे देशी छन्दों के साथ ताल और लय से युक्त गीत भी होते

हैं। ये गीत अधिकतर लोकगीतों की परम्परा के होते हैं, जिनमे माधुर्य गुण की प्रधानता होती है। अत्यन्त श्रव्य होने के साथ भावपूर्ण होते हैं। इसी श्रेणी के वीथि नाटक आन्ध्र देश मे बहुत प्राचीन समय से प्रचलित है जो बाद को वीथि भागवत नाम से विख्यात भी हुए हैं। उनमें भक्ति और शृङ्गार की प्रमुखता होती है। इन परम्परा के देशी रूपकों में भागवत की कथा मुख्य है। भागवत कथा के प्रदर्शन में कूचिपुडि भागवतो (भागवत का अभिनय करनेवालों) को विशेष आदर प्राप्त हुआ है। उन कथाओ मे 'पारिजातापहरण' पर्याप्त जनप्रिय हुआ है। कूचिपुडि भागवतों मे शास्त्रीय नृत्य प्रधान है। यही कारण है कि वे भरत नाट्य के उत्तम नमूने माने जाते हैं। इनकी विशेषता यह है कि नारी पात्रों का वेष धारण पुरुष ही करते हैं।

यक्षगानों की कथावस्तु मुख्यतः पौराणिक होती है। आधुनिक युग मे सामाजिक एवं राजनैतिक घटनाओं को इतिवृत्त बनाने का प्रयत्न हुआ है, किन्तु नब्बे प्रतिशत यक्षगानों की कथावस्तु पौराणिक ही है। पुराण प्रसिद्ध कथाओं को ग्रहण कर यक्षगानों की रचना हुई है। रामायण, भागवत तथा महाभारत की कथाओं के साथ नल, हरिश्चन्द्र इत्यादि पुराण पुरुषों की कथाएँ ही यक्षगानों का आधार बनी हुई हैं। किन्तु युग का प्रभाव यक्षगानों पर भी परिलक्षित होता है। २०वी शती मे पट्लोरि वीरप्पा ने 'क्रोधापुरि रेतु विजयमु' (क्रोधापुरि के कृषकों की विजय) नामक यक्षगान लिखा है जिसमें भारत माता की प्रार्थना, गान्धीजी की स्तुति इत्यादि भी देखी जा सकती है। इसकी कथावस्तु सामाजिक समस्याओं से परिवेष्ठित राजनैतिक समस्याएँ हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि यक्षगान भी युग के अनुरूप अपने स्वरूप को परिवर्तित करके जनता के मनोरंजन का साधन बना हुआ है।

प्राचीन समय में आन्ध्र में रंगमंच का विकास नही हुआ था। आन्ध्र देश में जो भी लोकनाट्य थे वे सब चलते-फिरते प्रदर्शन मात्र थे। लोकनाट्य के अभिनेता एक जगह कही स्थिर रूप से रहते न थे, गाँव-गाँव घूम-घूमकर अपने नाटकों का प्रदर्शन करना पड़ता था। रंगमंच का विकास बहुत समय तक हो नही पाया। वे जिस गाँव में पहुँचते, उस गाँव के मुहाने पर,—चौपाल अथवा मन्दिर के सामने तत्काल ही पण्डाल डालते। उस पण्डाल मे ही यक्षगानों का प्रदर्शन होता। पण्डाल के सामने और दायें-बायें भी जहाँ तक दृष्टि जाती है, खुला प्रेक्षागार ही होता।

रंगमंच की साधन-सामग्री क्या थी, यों वे प्रदर्शनकर्ता आवश्यक सामग्री अपने साथ ले जाते थे, लेकिन वैसे वे जिस किसी भी गाँव में पहुँच जाते वहीं उन्हें वह सामग्री उपलब्ध होती। मंच अथवा पण्डाल के सामने

सफेद परदा लटकाया जाता, यह परदा कोई बड़ा दुपट्टा होता या दो-तीन खादी के दुपट्टों को जोड़कर बड़ा तथा मंच के अनुरूप बना लिया जाता। परदे के दोनों तरफ दो मशाल रख दिये जाते, जिनकी रोशनी मे प्रदर्शन होता। क्रमश मशालों की जगह पेट्रोमाक्स लालटेनों ने ले ली। परदे के पीछे प्रबन्धकर्त्ता या सचालक, गाने मे साथ देने वाले, ढोल या मृदंग तथा जन्त्रना देनेवाले होते है। परदे के सामने सूत्रधार होता है, वही प्रदर्शन का प्रवर्त्तक होता है।

सूत्रधार पात्रों के प्रवेश की सूचना देता है, पात्रों से वार्तालाप कराता है, नेपथ्य मे गाने वाले गायकों को टेक पहुँचा देता है, अभिनय के अनुरूप ताल देता है, सन्धि-गद्य का वाचन करता है और समय-समय पर हास्य-प्रसंग करता है।

यक्षगान भाव, राग, ताल इत्यादि के साथ नृत्य, गीत और अभिनय के सुन्दर समन्वय के रूप है। समीक्षकों का कथन है कि यक्षगान नृत्य नाट्य सम्प्रदाय के रूपक हैं। इनमे नृत्य मुख्यत तीन रूपों में प्रस्फुटित हुआ है। गीत के साथ नृत्य तो होता ही है, साथ ही ताल, गमक आदि के अनुरूप दूसरी पद्धति का नृत्य होता है। तृतीय दशा में उद्धत नृत्य अथवा ताण्डव नृत्य होता है। नाट्य-शास्त्र प्रणेता भरत मुनि द्वारा निर्देशित प्राचीन ताण्डव नृत्य के लक्षणों का यक्षगानों मे अनुकरण हुआ है। प्राचीन यक्षगानो के आधार पर उनका पुनरुद्धार करने के इच्छुक नाट्य-शास्त्रियों के लिए आवश्यक लोक-नृत्य की सामग्री उनमे उपलब्ध होगी। इस कार्य के लिए उपयुक्त यक्षगान प्राच्य लिखित पुस्तक भाण्डागार में तालपत्रों तथा लिखित प्रतियों मे उपलब्ध है। उसमे उषा चरित्र, उषा परिणय, कालीय-मर्दनमु आदि अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

कुछ विद्वानो का विचार है कि अब तक प्राप्त यक्षगानो मे ओबय मन्त्री कृत 'गरुडाचलम्' अत्यन्त प्राचीन है। कतिपय समीक्षकों का विश्वास है कि कन्दुकूरि रुद्रय द्वारा विरचित 'सुग्रीव विजयम्' उपलब्ध यक्षगानों में प्राचीनतम है। सुग्रीव विजय के कर्त्ता कृष्णदेवराय के समकालीन माने जाते है।

सुग्रीव विजय की कथावस्तु रामायण से ग्रहीत है। वीर हनुमान का राम-लक्ष्मण के दर्शन से प्रारम्भ होकर वालि-वध तथा सुग्रीव के पट्टाभिषेक के साथ समाप्त होता है। इसमें बालि-सुग्रीव का युद्ध, वालि-वध, तारा का वालि-वध पर दुखी होना और रामचन्द्र की निन्दा करना अत्यन्त मनोहर बन पड़ा है। वीर और करुण रसो के पोषण मे कवि को असाधारण सफलता प्राप्त हुई है।

तेलुगु साहित्य में कृष्णदेवराय का युग 'प्रवन्ध युग' नाम से विख्यात है, किन्तु फिर भी इस युग मे यक्षगानो के प्रति आदर का भाव था। इतिहास इस बात का साक्षी है कि कृष्णदेवराय की नाट्यशाला मे यक्षगानो का प्रदर्शन होता था। बताया जाता है कि कृष्णदेवराय की पुत्री ने 'मरीची परिणय' नामक यक्षगान का प्रणयन किया था। शिलालेखो द्वारा इस बात की पुष्टि होती है कि कृष्णदेवराय की नाट्यशाला मे 'तालुकोंड' नामक नाटक का प्रदर्शन होता था और उस युग मे नागय्या नामक नट अपने अभिनय के लिए बहुत ही प्रसिद्ध था।

गराज भक्त शिरोमणि तो थे ही, साथ ही सगीतसार्वभौम थे। 'प्रह्लाद चरित्र' में भक्ति की परवशता तथा ब्रह्मानन्द साक्षात्कार देखते ही बनते है। इष्ट देवता की स्तुति से नाटक शुभारंभ करके पूर्व कवि की स्तुति के बदले प्राचीन भक्त तुलसीदास, रामदास, नामदेव, तुकाराम, जयदेव, श्री नारायण तीर्थ इत्यादि भक्तो का स्मरण किया है। इसमे ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति का गंगा-जमुना संगम हुआ है। यह कृति श्री रामचन्द्र को समर्पित है। प्रस्तावना के पश्चात् दौवारिक तथा सूत्रधार का संभाषण होता है। नाटक का उल्लेख कर प्रह्लाद को नागपाश मे बाँधकर समुद्र मे फेंकने के वृत्तान्त से प्रारम्भ करते है। अन्त मे हरि का साक्षात्कार कराते हैं।

नौकाभग अथवा 'नौका विजयम्' भक्ति तथा शृंगार का समन्वित रूप है। गोपिकाएँ बालकृष्ण के साथ यमुना नदी में नौका-विहार के लिए चल पडती है। सौन्दर्यगर्विता गोपिकाओ का गर्व भंग करते है बालकृष्ण। नौका मे पानी आता है, उन रन्ध्रो को पहले चोलियो तथा बाद को साडियो द्वारा भरने का गोपाल गोपिकाओ को आदेश देता है। अन्त मे गोपिकाएँ अपनी देह का अभिमान त्याग प्राणों की रक्षा के लिए वैसा ही करती है। इस प्रकार भवसागर के तारणहार कृष्ण अपनी लीला का परिचय देते है। इस श्रेणी की रचनाओं मे 'लेपाक्षिरामायणमु' अत्यन्त उल्लेखनीय है। इसमे प्रारंभ मे आराध्य की प्रार्थना, गुरु-वन्दना, पूर्व कवि-स्तुति, वंश वर्णन है। यह पूर्णत: दृश्य प्रबन्ध है। प्रदर्शन की दृष्टि से अन्य यक्षगानों की अपेक्षा यह अधिक सफल रहा है।

इस परम्परा मे कवि वेंकटदासु कृत 'धेनुकोंड विराट पर्व नाटक' अत्युत्तम है। 'रामदास' भी इसी श्रेणी का एक उत्तम यक्षगान है। इनके अतिरिक्त अन्य लोकप्रिय यक्षगानो मे 'किरातार्जुनीयमु', 'गंगा गौरी विलासमु', 'एरुकलवेसं कथ, 'त्रिपुर-संहारम्', दारुवन क्रीड', 'मृत्युजय विलासम्', 'शिव पारिजातम्', 'गोपाल विलासम्', 'रंगपुरि पारिजात नाटकम्', 'तारा शशाकम्',

'सीता कल्याणम्', 'सुन्दर काण्ड नाटकम्' तथा कंकटि पापराजु कृत 'विष्णु माया विलासम्' सुप्रसिद्ध हैं।

तंजाऊर के नायक राजाओं के समय मे यक्षगान नाटक अथवा दृश्य-प्रबन्ध नाम से भी व्यवहृत होने लगे। क्रमश: यक्षगानों में टेक का स्थान राग लेने लगे। कविता का स्थान पद या गीत लेने लगे। कविता की अपेक्षा गद्य, विषय-क्रम को जोडनेवाले गद्य के स्थान पात्रों का परस्पर सम्भाषण प्रधान माना गया। उस समय के यक्षगानों में नायक राजाओ के विवाह, शृङ्गार आदि के साथ आस्थान या दरबार का वैभव, उनके राज्य का प्रजा-जीवन, नगर के राजमार्ग पर जुलूस मे जाने वाले नायक अथवा राजा को देख नायिका का मोहित हो जाना, विरह-वर्णन आदि की प्रचुरता होने लगी।

महाराष्ट्र के राजाओं ने भी तेलुगु के यक्षगानो के विकास मे अच्छा योगदान दिया था। शहाजी ने (ई० १६८४-१७१२) ने छ:-सात उत्तम यक्षगानो की रचना की है, यो तो उनकी संख्या तीस तक बतायी जाती है। इस युग में कथा का साराश द्विपद छन्द में बतला दिया जाता था, तदनन्तर गणेश की स्तुति, कथा सन्धान, सूत्रधार के प्रसंग, विदूषक इत्यादि की प्रधानता रही। इस प्रकार की रचनाओं मे दर्भा गिरिराजु का स्थान उल्लेखनीय है। इस युग मे कुरवंजियों का पुन: यक्षगानो में प्रवेश हुआ। कुरवंजि पात्र को प्रधानता दी गयी। मैसूर के कण्ठीरव राजा ने 'आन्ध्र कौरवंजि' नामक एक रूपक की रचना की। त्यागराज आदि की श्रेणी के मेलत्तूरु वेंकट्राम शास्त्री ने जो रचनाएँ की वे 'मेलत्तूरु भागवतमेल नाटक' नाम से विख्यात है।

तैलंगाना मे १८वी शती में ही यक्षगानों की रचना प्रारम्भ हुई और १०० के करीब यक्षगान उस प्रदेश मे रचे गये। वहाँ पर यक्षगान पर्याप्त लोकप्रिय भी हुए। १७८० मे शेषाचल कवि कृत 'धर्मपुरि रामायण', १८३४ मे श्री मुद्दय कवि द्वारा रचित 'मंथेन रामायण' काफी प्रसिद्ध है। वहाँ के अन्य नाटककारो में गोवर्धन नरसिंहाचार्युलु पट्टें पापकवि, शेषभट्टर कृष्णमाचार्युलु, आदि के नाम आदर के साथ लिये जा सकते है।

आन्ध्र विश्वविद्यालय ने यक्षगानो के पुनरुद्धार का बीडा उठाया। अब तक पाँच जिल्द प्रकाशित भी हो चुके है। कुल २५ जिल्द प्रकाशित करने की इनकी योजना है। अत. हम विश्वास कर सकते है कि संपूर्ण यक्षगानों के प्रकाशन के साथ तेलुगु वाङ्मय की यह विधा समृद्ध हो तेलुगु भारती के लिए अलंकारप्राय होगी।

———

९

तेलुगु साहित्य में हास्य

मानव की मानसिक प्रसन्नता को व्यक्त करने वाला साधन ही हास या हँसी है। यह एक शारीरिक प्रक्रिया है। बच्चों की हँसी मे उनके मानसिक आह्लाद का परिचय मिलता है। हास से पूर्ण मुखमुद्रा प्रसन्न चित्त का द्योतक है। हर्ष का बाह्य चिह्न ही हँसी है। किसी विषय को देखते, सुनते या सोचते समय उस विषय के अन्तर्भूत वैपरीत्य, वैषम्य, अतिवास्तविकता, कृत्रिमता इत्यादि गुणों के कारण ही हमे हँसी आती है। हँसने के पूर्व हमे उस हँसाने वाली वस्तुओं के ज्ञान का होना आवश्यक है। वस्तुस्थिति मे उत्पन्न विकृत आभास भी हमे हँसा देता है—

> "चाकिवानि तोड जगडाल पड लेक
> सिरिगलाडु पट्टु चीरगट्टे
> शिवुडु तोलु गप्पे छी यनि मदि रोसि
> भैरवुंडु चीर पार वैसे।"

अर्थात्, धोबी की झंझट से मुक्त होने के लिए विष्णु ने पीतांबर धारण करना प्रारम्भ किया तो शिवजी ने चर्म पहनना शुरू किया। भैरव ने वस्त्र ही त्याग दिया; वैसे ही—

> 'शिवुडद्रिनि शयनिंचुट
> रविचन्द्रुलु मिंटनुंट राजीवाक्षुं
> डविरलपुग शेषनिपै
> बर्वलिचट नल्लिबाध पडलेक सुमा।"

अर्थात्, शिवजी का हिमाद्रि पर शयन करने, सूर्य तथा चन्द्र का आकाश मे रहने व विष्णु भगवान का शेष नाग तल्प पर शयन करने का कारण खटमलो की झंझट से मुक्त होने के लिए ही है। यह चित्रण पढते ही हम हँसी के मारे लोटपोट हो जाते है। विकृति हास को जन्म देती है।

मानव का जीवन सुख-दुःख रूपी अनुभूतिद्वय से प्रारम्भ होता है। बच्चों के हास-रुदन मे हमें ये ही दो अनुभूतियाँ दिखाई देती है। किन्तु हमारी इच्छा, ज्ञान व क्रियाशक्तियो के विकास के साथ बाह्य विषय की वैविध्यता के साथ आतरिक सुख-दुःख से पूर्ण अनुभूतियाँ भी जन्म लेने लगती हैं।

हास एक स्थायी भाव है। यही हास्य के रूप में परिणत होता है। काव्यानंद का दूसरा नाम ही रस है। काव्य, नाटक इत्यादि के अध्ययन, श्रवण एवं दर्शन से हमारे हृदयों के भीतर जो अनुभूतियाँ उत्पन्न होती हैं तथा जो हमें शुद्ध आनन्द प्रदान करता है, वही आनन्द रस है। उसी आनन्द-अनुभूति को रसानुभूति कहते है। जिस भाव को हम अनुभूति मे लाकर आनंद पाते है, उसी भाव के नाम पर उस रस का व्यवहार करते हैं। यही कारण है, कि कुछ लोगो ने रस के अन्तर्गत एक ही माना है कि वास्तव मे रस एक है, वही आनंद का स्वरूप है। स्थायी भावों के आधार पर रस नौ हैं, उनमे हास्य एक है।

हास के लिए आनंद, उद्दीपन एवं विभाव के रूप मे लाक्षणिको ने इस प्रकार बताया है—

'विकृताकार वाक्चेष्टं यमालोक्य हासेज्जन ।
तदत्रालंबन प्राहुस्तच्चेष्टोद्दीपनं मतम् ॥'

जिन विकारो के कारण हम किसी व्यक्ति या विषय को देखकर हँसते हैं वह व्यक्ति या विषय हमारे हास का आलंबन है और उसके अन्य विकार उद्दीपन है।

वाङ्मय में हास्य के भी भेद है। लाक्षणिको की दृष्टि से साधारण भौतिक हास निम्नकोटि का है। दूसरों को दुखाने वाला मध्यम तथा सब को प्रसन्नता एवं सुख प्रदान करने वाला उत्तम कोटि का हास्य माना जाता है। पंडित रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार आलंबन के प्रति प्रेम उत्पन्न करने वाला हास्य ही उत्तम हास्य है।

हास्य आलंबनप्रधान रस है। आलबन के विस्तृत एवं सुस्पष्ट वर्णन से हास का उदय होता है। हास का आश्रय प्रेक्षक ही होते है। मुख्यत. हास्य दो प्रकार का होता है पहला आत्मस्थ और दूसरा अन्यस्थ। आलंबन को देख हँसने वाला आत्मस्थ है, तो अन्यो को हँसते देख उनके साथ हँसना अन्यस्थ है। रीति ग्रन्थकारों ने शृंगार और वीर-रस को काव्य और नाटको का प्रधान रस माना है। हास्य को सहायक रस के रूप मे अंगीकार किया

गया है। हास्य और शृंगार रस के बीच सुन्दर मैत्री है। वैसे ही वीर रस के लिए हास्य सहायक रस के रूप में स्वीकृत है। सच पूछा जाय तो हास्य के बिना शृंगार रस मे सरराता नही आती। किन्तु असभ्य शृंगार को हास्य के रूप में ग्रहण कर हमारे साहित्य हास्य का उपहास किया गया है।

प्रधानत नाटक के नायक के नम्र सचिवो मे एक विदूषक होता है। 'हास्य प्रायो विदूषकः' बताकर इस पात्र का चित्रण केवल हास्य के लिए करते है। नाटक मे विदूषक ही नही बल्कि कोई भी पात्र हास्य का प्रयोग कर सकता है। वाक्-चमत्कार के द्वारा हास्य का उदय होता है। प्रहसन और शतक-साहित्य मे हास्य का विशेष पोषण हुआ है। मुख्यत: कहावतो, लोकोक्तियों, यमक, श्लेष, व्याज-स्तुति, व्याज-निंदा, वक्रोक्ति, अनुकरण इत्यादि के द्वारा हास्य को ध्वनित करते है।

भारतीय लाक्षणिको की दृष्टि मे हास्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। उनका मत है कि किसी वस्तु मे विकृति और आरोपण में हास्य का उदय होता है। पाश्चात्य वाङ्मय मे हास्य 'ह्यूमर' और 'विट' नाम से दो प्रकार का माना जाता है। उनका मत है कि ह्यूमर मे विकृति सहज होती है और विट में विकृति का आरोप किया जाता है। इनके अतिरिक्त भारतीय साहित्य मे और तेलुगु में भी 'पैराडैज' और अधिक्षेप हास्य अपना विशिष्ट महत्व रखते है। तेलुगु मे इस प्रकार की रचनाओ मे श्री पिंडिप्रोलु लक्ष्मण कवि कृत 'रावण दम्भीयमु', तिरुपति वेंकटद्वय कृत 'गीरतम्', श्री अनंतपतुल रामलिंग स्वामी कृत 'शुक्लपक्षमु' अधिक्षेप काव्यो मे आदर के साथ लिये जा सकते है। श्री जलसूत्रम रुक्मिणीनाथ शास्त्री कृत पैराडैज आन्ध्र मे काफी लोकप्रिय हुए है।

किसी भी साहित्य मे रचित हास्यरस सम्बन्धी ग्रन्थो पर विचार करते समय हम उन ग्रन्थों के लिए आवश्यक लक्षण निश्चित रूप से निर्धारित नहीं कर सकते। हाँ, उसके काव्यो की शैली, घटना—चित्रण इत्यादि के आधार पर हास्य ग्रन्थ का निर्णय किया जा सकता है। तेलुगु के कवियों ने यों तो अनेक रीतियों को हास्य-ग्रन्थों की रचना मे अपनाया है। उसमें मुख्यत: पाँच रीतियाँ उल्लेखनीय हैं— १. शब्द सम्बन्धी विकृति पैदा करना, २. अर्थ सम्बन्धी विकृति, ३. कथावस्तु की गति में वक्रता लाकर घटना मे विकृति पैदा करना, ४. आलंबन वर्णन और ५. रसाभास पैदा करना।

तेलुगु साहित्य के हास्य का समग्र परिचय प्राप्त करना है तो उसके दोनों प्रकार के साहित्यो का अवलोकन करना आवश्यक हो जाता है। प्रथम प्रकार

का लोक-साहित्य और दूसरा मार्ग अथवा ग्रन्थस्थ साहित्य। प्रत्येक जाति के आचार-विचार, रीति-रिवाज इत्यादि का दर्पण उसका साहित्य होता है। अनाहत अथवा अनुश्रुत वाङ्मय जो कि लोक-साहित्य के नाम से प्रचलित है, शिष्ट समाज का आदर भले ही प्राप्त कर चुका हो, परन्तु अनुभूतियों से दोनों के बीच विशेष अन्तर नहीं होता है। तेलुगु में लोक-साहित्य विपुल मात्रा में उपलब्ध हुआ है और उसमें हास्य का विशेष स्थान है। पूर्ण रूप से लिपिबद्ध न होने पर भी गत २५-३० वर्षों में इसके उद्धार का विशेष प्रयत्न हुआ है।

इस साहित्य के श्रवण और अध्ययन से श्रोता एवं पाठकों का मन रसोद्रेक में उछलने लगता है।

व्यावहारिक जीवन में लोक साहित्य इस प्रकार जुड़ा हुआ है कि उसे अलग नहीं किया जा सकता। जन्म-मृत्यु, पर्व-त्योहार, शादी-ब्याह में ही नहीं बल्कि जीवन के पग-पग पर जनपदों में इस साहित्य का व्यवहार है। ढेकली चलाते, नाव खेते, धान कूटते, खेतों में धान रोपते, कटाई करते, मेलों में, सामूहिक कार्य-कलापों में यह साहित्य लोकजीवन का आलंबन बना हुआ है। मांगलिक कार्यों में जहाँ शिष्ट गीतों का गायन होता है वहाँ अश्लील गीतों का भी। हास्य-रस के अंतर्गत विकृत शब्द-सम्बन्धी होने के कारण अन्य भाषाओं में उसका उसी रूप में अनुवाद संभव नहीं है। फिर भी नमूने के लिए एकाध उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

तेलुगु का देशी नाट्य 'भामा कलापम' में से एक उदाहरण लीजिए। हास्यकर्त्ता नायक कृष्ण के हाथों में नायिका को समर्पित करते हुए नायक को उपदेश देता है। तदुपरान्त राधा को समझाता है—

बाव मरदुलु निन्नु एव्वरेमन्ना,
कदुरेरंगाकालियकंटलोनपेट्टू
तोडिकोडलु बिड्ड कूटि केडुस्ते, पीट चेक्कातोनु
पेणतुडगोट्टु
इरुगु पोरुगुलवार निन्नेमि यन्ना,
यिल्लुतगुवेट्टि मल्लिरावम्मा
बुद्धुलेरतगदु बालमद्दुले कानि,
बुद्धुलोच्चेदाक दिद्दुकोव्वम्मा'

अर्थात् हे बेटी ; देवर-जेठों ने तुमसे कुछ कहा तो तकली गरम करके उनकी आँखों में भोंक दो। देवरानी व जेठानी के बच्चे खाने के लिए रोयें तो चौकी

से खोपड़ी उड़ा दो। अड़ोस-पड़ोस वालो ने तुमसे कुछ कहा तो उस घर मे आग लगाकर मायके लौटना। हे दूल्हे, यह तो अबोध मुग्धा है, लाड़-प्यार से पली है, इसके समझदार बनने तक सहानुभूति दिखाना।

शिष्ट साहित्य मे हास्य प्रारम्भिक युग से उपलब्ध होता है। तेलुगु का प्रथम काव्य महाभारत है। इसका प्रणयन महाकवियो ने किया है, ये तीन महाकवि हैं। नन्नयभट्ट आदि कवि माने जाते है। इन्होने वायुपुत्र भीमसेन के चित्रण मे हास्य का संदर्भानुसार अच्छा पोषण किया है। भीम के जन्म के दसवें दिन जब राजा पाडु, कुन्ती देवी को साथ लिये बच्चे सहित एक पर्वत पर स्थित देव-मन्दिर जा रहे थे, अचानक एक शेर ने उन पर धावा किया। कुन्ती भय-कपित हो उठी। उसके हाथो से बच्चा भीम पर्वत के पत्थरो पर गिर पड़ा तो वे सभी पत्थर चूर्ण हो गये। इसके वर्णन मे कवि ने जिस स्वाभाविकता, विकृति एवं व्यंग्य को ध्वनित किया है, वह अत्यंत प्रशसनीय है।

एक दूसरी घटना भी पाठको को हँसाकर लोट-पोट करने म समर्थ है। कुन्ती देवी द्रौपदी को भीमसेन को खाना खिलाने का तरीका यो बतायी है—भीम का उदय छोटा है। लेकिन वह बलवान है, जरा ज्यादा खिलाओ। इस वाक्य मे जो व्यंग्य है, और तेलुगु में जिस चतुरता के साथ कविता मे वर्णित है, उसका आनन्द लेते ही बनता है।

ऐसे उदाहरण तेलुगु के गत सहस्र वर्षों से रचित ग्रन्थो मे से सैकड़ो की संख्या मे दिये जा सकते हैं। परन्तु इस छोटे से लेख में विपुल परिचय संभव नही है। अतः हम कुछ चाटूक्तियाँ और नमूने के तौर पर कुछ पद्यो का उदाहरण देते है।

तेलुगु के कवि सार्वभौम श्रीनाथ प्रकाण्ड पंडित थे। उन्होंने प्रौढ़ कविता मे सरसता का भी समावेश किया। उनकी असंख्य चाटूक्तियाँ आज भी उपलब्ध है। वे आन्ध्र की पलनाडु सीमा मे पयन कर रहे थे, प्यास लगी। उस क्षेत्र मे पानी का अभाव था। इस पर श्रीनाथ ने अपने आराध्य शिवजी से प्रार्थना की जो कि हास्य से परिपूर्ण है—

'सिरिगलवानिकि चेल्लुनु
तरुणुल पदियारुवेल दग बेड्लाडन्
दिरिपेमुन किद्दरांड्ला
परमेशा गंग विडुमु पार्वति चालुन्'

अर्थात्, धनी व्यक्ति सोलह हजार तरुणियों से भी शादी करे तो भी वह मान्य हो सकता है। (यहाँ विष्णु मुख्यत कृष्ण की सोलह हजार गोपिकाओं की ओर सकेत) हे ईश्वर, तुम तो भिखारी हो, तुम्हे दो पत्नियो की क्या आवश्यकता है ? गंगाजी को छोड दो (मैं अपनी प्यास बुझा सकता हूँ) तुम्हे तो पार्वती पर्याप्त है।

भक्त शिरोमणि महाकवि ने अपने भागवत मे शिष्ट हास्य का पोषण किया है। यह वात्सल्य और श्रृंगार रस के चित्रण मे सहायक बन कर अत्यन्त सहज रूप मे वर्णित है। कृष्ण अवस्था मे छोटे है, पर बडो के कार्य कर बैठते है। इस विरोधाभास मे स्थित विकृति ही सहज रूप मे हास्य का आलंबन बन जाती है। एक दो उदाहरण लीजिए। बालकृष्ण गोपिकाओं के यहाँ खेलने जाते है और क्या-क्या करते है—

> 'आडजनि वीरल पेरु
> गोडक नी मुतुड्डु द्रावि योकयिचुक मा
> कोडलि मूतिदुडिचिन,
> गोडलु मुच्चन्नुमुनत्त कोट्टे लतांगी'

यशोदा से एक गोपिका शिकायत करती है—"हे लतांगी, देखो, तुम्हारा लडका खेलने के बहाने घरो में घुस आया और सारा दही पीकर थोडा-सा उस घर की बहू के मुँह पर पोत दिया। सास ने यह सोचकर कि उसी की बहू चोर है, उसकी खूब खबर ली।"

एक और गोपिका यशोदा से शिकायत कर रही है—

> "नम्मि निदर बोव नापट्टि जुट्टु मा
> लेग तोक तोड लील गट्टि
> वीथुलडु द्रोले वेलदि नी कोमरुंडु
> राचबिड्डडैन रव्व मेले"

हे माई, तुम्हारे पुत्र ने यकीन के साथ सोनेवाली मेरी पुत्री के जूड़े को हमारे बछड़े की पूँछ से बाँध दिया और उस बछड़े को गलियों मे खदेड़ दिया।

इसके अतिरिक्त सोमन्ना के उत्तर हरिवंश, जक्कन के विक्रमार्क चरित्र, अल्लसानि पेद्दन्ना के मनुचरित्र, पिंगलि सूरन्ना के कलापूर्णोदय, नंदि तिम्मन्ना के पारिजातापहरणम्, चामकूर वेंकट कवि के विजय विलास, तेनालि

रामकृष्ण के चाटुपद्य, अप्पकवि कृत शशिरेखापरिणयम्, इत्यादि काव्यो मे हास्य का अच्छा वर्णन किया है। एक उदाहरण देखिए—

> निदुर वोगोट्टु ग्रममुगानेत्ति केक्कु
> गलुपत घटिंचु गुडयु गरंयु दने
> चेति कोनगूर्चु नदिगान जेपनगु ले
> वेश्यकुनु नश्यमुनकुनु भेदमिलनु।

अर्थात्, निद्रा को तिलाजलि दिलाकर क्रमश. सर पर चढती है। शरीर और हृदय को भी कलुपित करती है और हाथ मे लाठी और घडा पकडा देती है। अब सूंघनी और वेश्या मे अतर क्या है? अर्थात् दोनो से एक ही प्रकार की हानि होती है। वेश्या के द्वारा अप्रतिष्ठा, धन का सर्वनाश होता ही है। भिक्षा-पात्र और लाठी हाथ मे पकडा देती है। इस प्रकार दोनो मे श्लेष को ध्वनित कर कविद्वय ने उचितज्ञता का परिचय दिया है।

काव्यों मे हास्य रस का जैसा पोषण हुआ है, वैसा ही हम गद्य-ग्रन्थ शतक और चाटु कविता मे भी पाते है। यहाँ पर नमूने के तौर पर कतिपय उदाहरण प्रस्तुत करेंगे। शतक कवियों मे श्रीकवि चौडप्पा ने हास्य के लिए गालियों की आवश्यकता बतायी है। वह लिखते है—

> "नीतुलकेमि योकिंचुक
> बूताटकदोरक नव्वु पुट्टदु धरलो
> नीतुलु बूतुलु लोक
> ख्यातुलुरा कुदवरपु कवि चौडप्पा।

उपदेशों का क्या अभाव है? निन्दा और गालियों के बिना इस जगत् में हँसी नही होती। नीति, उपदेश, निंदा और गालियाँ तो जगत् की ख्याति के चिह्न है।

आगे वही कवि बताते हैं कि दस उपदेश और दस गालियाँ, दस श्रृंगार-प्रधान कविताएँ सभा में जो पढ़ता है, वही श्रेष्ठ कवि माना जाता है।

शतक कवियो में सात वेमना का अपना विशिष्ट स्थान है। विस्तार के भय से इनके पद्यो का सारांश मात्र देते हैं। एक स्थान पर वे लिखते हैं—

१. क्षीर-सागर मे शयन करने वाले विष्णु गोपिकाओं के घरों में दूध चुराने क्यों गये? दूसरों की वस्तुएँ सब को भली लगती है।

२ गुफाओं में जाकर लोग गुरु को ढूंढने लगते है, यदि हिंस्र पशु उसमे से निकला तो मुक्ति का मार्ग अवश्य वह जल्दी दिखा देता है।

३ लोभी को मारने के लिए इस जगत् मे किसी दवा की जरूरत नही उसका तो उपाय कुछ और है। उससे धन माँगिएगा तो वह जल-भुनकर मर जायेगा।

४ बकरी के गल-थनो के पीने से भूख नही मिटती, केवल मात्र आशा ही है *वैसे ही लोभी व्यक्ति से धन माँगने पर लाभ क्या है ?*

तेलुगु मे भाव कविता के उदय होने पर उसका परिहास करते हुए एक कवि ने लिखा है। भाव कविता हिन्दी मे छायावादी कविता कहलाती है। भाव कवि का कथन है—

भाव कवि के लिए तेलुगु मे पढना-लिखना जान लेना काफी है। अंग्रेजी ज्ञान की कोई आवश्यकता नही। देशाटन करते रहना चाहिए, नौकरी के पीछे उसे पागल नही रहना है। कल्पना की उड़ाने भरनी है और प्राचीन कवियो की निन्दा करनी है। भाव-गीतो का गान करते रहना है। अप्पकवि (वैय्याकरण और रीति ग्रन्थकार) के लक्षणो की उपेक्षा करनी है और केशों को इस तरह बढ़ाना है कि वे कर्णद्वय को ढँक दे। नयी वेश-भूषा मे जनता के सामने आना है। यही संक्षेप मे हमारी समिति के सदस्यो के नियम है।

स्वर्गीय भोगराजु नारायणमूर्ति का "पंडुग कट्नमु" (पर्व का उपहार) चार आश्वासो वाला विशुद्ध हास्य-ग्रन्थ है। इसमे से सैंकडो उदाहरण दिये जा सकते है।

आज की दहेज-प्रथा की कड़ी आलोचना करते हुए कवि ने एक स्थान पर बतलाया है कि एक युवक ने विवाह के समय हजारो रुपये दहेज लेकर सास-ससुर को राह का भिखारी बना दिया और पत्नी को ससुराल मे छोड़ कर ऊँची शिक्षा का बहाना बतलाकर लन्दन चला गया। आज दस साल *बीत रहे है, वह लौटकर नही आया है। लोगों का कहना है कि वहाँ किसी* रखेली के साथ रंगरेली करते हुए भारतीय सभ्यता से भ्रष्ट हो गया है।

इसके अतिरिक्त श्री हट्टि नरसिंहम् कृत "प्रयास शाप विमोचनम् श्री वीरेशलिंगम् के प्रहसन, श्री चिलकमर्ति नृसिंहम् के गणपति और दुंदुभि, श्री गुरजाड अप्पाराव का कन्याशुल्कम्, श्री वेदुम वेंकटराय शास्त्री का प्रतापरुद्रीयम् श्रीपाद सुब्रह्मण्यम् की कहानियाँ, श्री भमडिपाटि कामेश्वर राव कृत प्रहसन, कहानियाँ और लेख, श्री विश्वनाथ कविराज कृत एकाकी,

श्री मल्लादि वेंकट कृष्ण शर्मा के प्रहसन, श्री चिन्ता दीक्षितुलु की हास्य कथाएँ तेलुगु हास्य रस प्रधान साहित्य मे आदर के साथ गिनी जाती है ।

परन्तु श्री पानुगंटि लक्ष्मीनृसिंह राव के निबन्ध संग्रह "साक्षी" के छ भाग, उन्ही के "वृद्ध विवाह", "कंठाभरण" नाटक, श्री मोक्कपाटि नरसिंह शास्त्री कृत "बारिस्टर पार्वतीशम्", श्री मुनि माणिक्यम् नरसिंह राव की कहानियाँ एवं ममिडि कामेश्वरराव के प्रहसनो पर आन्ध्रवासियो को अभिमान है । हास्यप्रधान साहित्य मे इनकी रचनाएँ किसी भी भाषा की समता कर सकती है ।

१०

तेलुगु काव्य मे राष्ट्रीय भावना

भारतीय स्वाधीनता सग्राम की उज्ज्वल पृष्ठभूमि के दर्शन क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य मे किये जा सकते है। इस विशिष्ट मोर्चे पर तेलुगु ने, जो साढे छ करोड से भी अधिक लोगो की भाषा है और अपनी असीम मधुरता के कारण "पूर्व की इतालवी" कहलाती है, कीमती योग दिया है। राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति के माध्यम से तेलुगु के मनीषी लेखको ने साहित्य और जनता के वीच की कृत्रिम दूरी को मिटाने के साथ-साथ हमारी आजादी की लडाई का पथ भी प्रशस्त किया। राजा-रानी की जगह सामान्य जन एवं उनके सुख-दु ख इनकी रचनाओ के प्रधान विषय बने। स्वाधीनता के युग ने तेलुगु के साहित्य को ओजस्वी तो बनाया ही, उसके द्वारा पूरे प्रदेश मे नये सिरे से प्राण फूंके तेलुगु साहित्य के इसी रूप की यह एक रोचक झाँकी।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा अर्थात् कांग्रेस की स्थापना के साथ ही इस देश मे नये सिरे से राष्ट्रीय भावना का सूत्रपात हुआ। तब देश भर में समाज-सुधार के आन्दोलन की जो प्रबल लहर बही, उससे आन्ध्र भी अछूता नही रह सका।

साहित्यिक, सास्कृतिक, सामाजिक और कुछ अशो मे धार्मिक क्षेत्र में भी नवीन धारा प्रवाहित हुई और क्राति की भावनाएँ उभरी। परिणाम-स्वरूप देशवासियों मे नयी चेतना और जागृति की नयी लहर दौड़ पडी।

तेलुगु साहित्य मे यह भावात्मक क्राति तीन महानुभावों के द्वारा संपन्न हुई। श्री गिडुगु राममूर्ति पंतुलु ने भाषा के क्षेत्र मे मौलिक क्राति उपस्थित की; श्री वीरेशलिंगम पंतुलु ने समाज-सुधारवादी आन्दोलन को जन्म दिया और गुरजाड अप्पाराव ने उपर्युक्त दोनों आन्दोलनों को आत्मसात् करते हुए नये विचार दिये। इसी समय से तेलुगु कविता मे भावात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा।

गुरजाड अप्पाराव ने तेलुगु काव्य को नयी वस्तु, नया छंद, नये भाव और नयी शैली प्रदान की तत्कालीन युग की सामाजिक प्रगति और परिवर्तन के चिह्न इनकी कविता मे परिलक्षित होते हैं।

तेलुगु काव्य मे राष्ट्रीय भावना सर्वप्रथम अप्पारावजी की रचनाओं द्वारा ही मुखरित हुई। ऐसा यदि कहा जाए, तो गलत नही होगा। अप्पाराव ने अपने काव्य का आदर्श नीचे की पंक्तियों मे व्यक्त किया है —

"आकुलंदुन अणगि मणगि
कवित कोयिल पलुक वलनोय्
पलुकुलनु विनि देशमं—
दभिमानमुलु मोलकेत्त वलेनोय्।"

अर्थात्—पत्तो की आड मे छिपी रह कर कवितारूपी कोयल कूक उठे और उसकी वाणी सुनकर जनता मे देश-प्रेम की भावनाएँ जागृत हो जाएँ।

अप्पाराव की देशभक्ति आदर्श रही। उन्होने "देशभक्ति" नामक कविता मे अपने भावो को ओजस्वी रूप में अभिव्यक्त किया है—

"देशमुनु प्रेमिचुमन्ना
मंचियन्नदि पेंचुमन्ना
ओट्टि माटलु कट्टिपेट्टोय्
गट्टि मेल् तलपेट्टवोय्।"

अर्थात्—देश से प्यार करो' अच्छाई को बढाओ, बेकार की बकवास बन्द, करो, जन-हित के लिए कोई ठोस कार्यक्रम बनाओ।

आगे ये कहते है—

"हे भाइयों, श्रम करो,
मांस-मज्जावाला व्यक्ति ही मानव है।
मास-मज्जा खाद्य-पदार्थों से निर्मित होते हैं।
खाद्य-पदार्थों के उत्पादन के लिए श्रम करना आवश्यक है।
विभिन्न विद्याओं और कलाओ का अध्ययन करो।
देश को समृद्ध बनाओ।
विद्याओं (के क्षेत्र) में ही स्पर्धा की भावना बढाओ।
व्यर्थ का कलह न बढाओ।
देश-प्रेम का ढोंग रचकर गप्पें हाँकते न रहो।
जनता के हित के हेतु कोई महत्वपूर्ण कार्य कर दिखाओ।
अपने स्वार्थ को त्यागकर पड़ोसी की सहायता करो।

देश के माने मिट्टी नही है, देश के माने मानव है ।
चाहे धर्म विभिन्न प्रकार के क्यों न हों, किन्तु हृदय एक हो
तभी इस जगत् का कल्याण होगा ।
देश रूपी सुन्दर वृक्ष, प्रेम रूपी पुष्पों को मंजरित करे
और मानव के स्वेद मे भिचकर धरती स्वर्णिम फसल
उगत उठे।''

जातीय और राष्ट्रीय भावनाओ को एक साथ ध्वनित करने वाले आचार्य रायप्रोलु सुब्बाराव का भी तेलुगु काव्य मे कम महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। आपने जनता को प्रबुद्ध करने वाले कई गीत "उद्बोध" शीर्षक से लिखे है जो राष्ट्रीय गीतों का काम दे रहे हैं । उनका निम्नलिखित गीत बहुत ही विख्यात है—

"ए देश मेगिना एन्दु कालिडिना
ए पीठ मेक्किना एवरेदुरैना
पोगडरा नी तल्लि भारतिनि
निलुपरा नी जाति निडु गर्वम्मु
लेदुरा इदुवंटि भूदेवि येंदु
लुरा मनवंटि धीरुलिकेन्दु
अवमानमेलरा अनुमानमेलरा
भाग्त पुत्रडनंचु भक्तिलो पलुक !"

भावार्थ—चाहे तुम किसी भी देश मे पग रखो, चाहे किसी भी आसन पर क्यो न विराजमान हो जाओ, चाहे किसी से भी तुम्हारा सामना हो जाए, तुम अपनी माता भारत की स्तुति करो, अपनी जाति के अभिमान की रक्षा करो । हे भाई मेरे ! ऐसी भू माता अन्यत्र नही है । हमारे जैसे धीर-वीर भी कहीं नहीं है । अपने को भारत पुत्र कहलाकर सभक्ति ऐसा घोषित करने मे तुम्हें सन्देह क्यो ?

आगे कहते हैं—

"ए पूर्वपुण्यमो एक योग बलमो
जन्मिंचिनाडवी स्वर्ग खण्डमुना
ए मंचि पूवुलनु प्रेमिंचिनावो
निनु मोसे ई तल्लि कनक-गर्भमुना
पोलमुल रत्नालु मोलिचायि रा इट
वार्धिलो मुत्यालु पंडाइरा इचट
पृथ्वि दिव्योषधुलु पिदिकेरा मनकु !"

अर्थात्—न जाने किस पूर्वजन्म के पुण्य और योग के बल से तुम स्वर्गतुल्य इस भू-भाग में जन्म ले चुके हो। तुमने किन सुन्दर सुमनों से प्यार किया होगा जिसके फलस्वरूप इस माता ने तुम्हें अपने स्वर्णगर्भ में ढोया है। यहाँ के खेतों से रत्न उगे हैं, सागर से मोती पैदा हुए हैं। पृथ्वी ने (यहाँ) दिव्य औषधियों को निचोड़ा है।

ऐसी भूमि में पैदा होने का तुम्हें अभिमान होना चाहिए। इसमें सन्देह और अपमान अनुभव करने की आवश्यकता नहीं है।

इसी भाँति आचार्य रायप्रोलु ने अपनी मातृभाषा की माधुरी पर विमुग्ध होकर उसकी प्रस्तुति का गान जिन शब्दों में किया है, वे गुनगुनाने योग्य हैं —

> "ए प्रफुल्ल पुष्पंबुल नीश्वरुनकु
> पूज सलिपितिनो येनु पूर्वमन्दु
> कलदयेनि पुनर्जन्म कलुगनाकु
> मधुर-मधुर मैन तेलुगु मातृभाषा।"

अर्थात्—मैंने किन विकसित सुमनों से प्राचीन काल में ईश्वर की उपासना की थी, ज्ञात नहीं, इसी के कारण मुझे इस जन्म में मातृभाषा के रूप में तेलुगु उपलब्ध हुई है। मैं सर्वशक्तिमान ईश्वर से यही निवेदन करता हूँ कि यदि मुझे पुनर्जन्म प्राप्त हो तो अत्यंत मधुर तेलुगु ही मातृभाषा के रूप में (मुझे) प्रदान करें।

राष्ट्रीयता का बिगुल

देश भर में राष्ट्रीय आन्दोलन का बिगुल बज उठा। उस राष्ट्रीय यज्ञ के लिए आन्ध्र वासियों ने भी एक ओर समिधाएँ दीं, तो दूसरी ओर १९१३ ई० में से पृथक आन्ध्र प्रदेश की स्थापना का आन्दोलन जोर पकड़ने लगा। फिर भी प्रान्तीयता की इस भावना को राष्ट्रीयता के मार्ग में सुब्बाराव ने बाधक बनने न दिया। आपने वर्ण वर्ग, जाति, धर्म इत्यादि संकुचित भेद भावों का बड़ी निर्भीकता के साथ खंडन किया। निम्न पंक्तियाँ इनके विशाल दृष्टिकोण का परिचय देने के लिए काफी हैं—

> "कुलमु दाटक, पोलिमेर गोल पडक
> बोयवले तल्लि पल्लकी मोयुमांध्र।"

हे आन्ध्रवासी! जाति, वर्ण आदि विभेदों की सीमा में न जाकर एक कहार की भाँति अपनी माता की पालकी ढोओ।

सुब्बाराव जहाँ आन्ध्र के प्राचीन वैभव का स्मरण दिलाकर ...

को अतीत के समान स्वर्णिम बनाने की प्रेरणा प्रदान करते है, वहाँ वर्तमान की पतनावस्था पर भी खेद प्रकट करने मे नही चूकते; जैसे—

"कृष्णा की तरंगो पर कदम रख
जब आन्ध्र की नौकाएँ नृत्य करती
थी,
जब क्षेत्रीय साहित्य रूपी दीपकों के
द्वारा आन्ध्र का कोना-कोना
आलोकित था,
रमणीय शिल्प संसार में आन्ध्र की
प्रवीणता प्रतिस्पर्धा कर रही थी,
जब समर-भूमि मे सेना-व्यूह की
विजयी पताकाओं के नीचे आन्ध्र का
पौरुष अपने दर्प का परिचय दे
रहा था,
उसका अवलोकन कर प्रसन्नतावश
सिर चालन करते
अभिमान के साथ आन्ध्र के युवक-
युवतियाँ शांति का अनुभव करेंगे,
तब तक हमे विराम नही है
और न यह युद्ध की पोशाक उतारने
का समय ही है !"

एक अन्य छंद मे आन्ध्रवासियो के तेज एवं पौरुष का परिचय कवि इन शब्दो मे देते है—

"जब कोंडवीड़ के रेड्डी युवक कुदा-
लियो को पिटुवे के डंठलो की
भाँति झुकाकर उनमे गाँठें लगा
देते थे
पलनाटि के वीर योद्धा बड़े-बड़े
पहाड़ो को नवनीत के ढेलो के
समान तोड-तोड़ कर चकनाचूर
कर डालते थे
अद्दंकि के वीर भटो ने तालाब के
छेदो से बहनेवाले प्रवाह को इस तरह रोका

था जैसे शिवजी ने गंगा की धारा को
रोका
जब तेलंगाना के भटों ने विशाल
शिला के कपाटों को अपने घूसों से
तोड़ डाला था
हे आन्ध्रवासी ! देखो तो सही, ऐसे
वीर इस आन्ध्र भूमि में पैदा हुए हैं
और उन लोगों ने विजय कन्या का
वरण किया था
ऐसी शेरनी का पेट अब चींटियों
का बिल बन गया है
अतः तुम अपने आलस्य को त्याग
दो।"

गाँधीजी के आगमन के साथ आन्ध्र प्रदेश में राष्ट्रीय भावना और भी प्रबल हो उठी। १९०७ में गोदावरी मण्डल महासभा का आयोजन हुआ था। श्री विपिन चन्द्र पाल इसमें प्रधान वक्ता थे। उस सभा में चिलकमर्ति लक्ष्मी नरसिंहम ने, जो "आन्ध्र के मिल्टन" के नाम से विख्यात रहे, एक छंद गाया था, जिसमें अंग्रेजों द्वारा भारत के शोषण का परिचय मिलता है :

"भारत खंडबु चक्कनि पाडियावु
हिन्दुवुलु लेगदूडलै एड्चुचुंड
तेल्लवारनु गड्डसरि गोल्लवारु
पिदुकुचुन्नारु मूतुलु बिगिय कट्टि"

अर्थात्—भारतवर्ष एक सुन्दर दुधारू गाय है, हिन्दू सब उसके बछड़े बन रुदन कर रहे हैं। गोरे नामक चतुर ग्वाले इन बछड़ों के मुँह बाँधकर गायों का दूध दुह रहे हैं।

यह कविता सुनकर गोरे अफसर कवि पर अत्यंत कुपित हुए, परन्तु डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या ने उस छंद में श्लेष घटित या ध्वनित कर उन्हें शांत किया था। "तेल्लवारनु" शब्द का अर्थ "गोरे" और "सवेरा" होता है।

फा०—७

नवयुग के उद्गाता

"कवि सम्राट" विश्वनाथ सत्यनारायण के कण्ठ मे राष्ट्रीयता का स्वर जिस रूप मे मुखरित हुआ है, वह अत्यन्त ही प्रशंसनीय है। प्राचीन आन्ध्र साम्राज्य के वैभव की कहानी के स्मरण मात्र से उनका हृदय पुलकित हो उठता है।

आन्ध्र की महिमा के प्रसंग में कवि विश्वनाथ ने "आन्ध्र पौरुष" तथा "आन्ध्र प्रशस्ति" नामक दो खंडकाव्यों का प्रणयन किया है। "झाँसी की रानी" और "कुमाराभ्युदयम्" देशभक्ति एवं राष्ट्र-प्रेम को उद्बोधित करने वाले इनके दो दूसरे अनुपम काव्य ग्रन्थ है।

आन्ध्र की इसी परम्परा मे कवि कोकिल दुव्वूरि रामिरेड्डी का योगदान स्मरणीय है। इनके द्वारा विरचित प्रायः प्रत्येक काव्य में राष्ट्रीय भावनाएँ ओतप्रोत हैं। विशेषकर खडकाव्यों मे यह भावना प्रबल रूप मे पायी जाती है।

रामिरेड्डी ने "स्वतंत्र रथम" शीर्षक कविता में स्वतत्रता देवी का साक्षात्कार ही किया है। अपनी "नैवेद्य" कविता में ये कहते है—

"प्रोद्दुपोड्डुन नी पाद पूज कोरकु
कविनि तेच्चिति दोसिट गन्नेरुपूलु
वलिवित्तदिक निरनंबु वेलुगुनटुल
हृदयपु मुगंधदीप मर्पितु गोनुमु।"

अर्थात्—सूर्योदय के समय तुम्हारे चरणो की पूजा करने के हेतु, मैं (कवि) अपनी अंजलि में कर्णर के पुष्प लेकर प्रस्तुत हुआ हूँ, लो, निरंतर प्रज्ज्वलित दीप को भी समर्पित कर रहा हूँ, ग्रहण करो।

इस प्रकार ये अपने हृदय के सुरभित सुमनों को अर्पित कर धन्य हो गये।

"गौतमी कोकिल" नाम से विख्यात श्री वेदुल सत्यनारायण शास्त्री ने अपनी राष्ट्रीय भावना का पुष्प की अभिलाषा के माध्यम से भलीभाँति अभिव्यक्त किया है, जो सहज ही हमे माखनलाल चतुर्वेदी "एक भारतीय आत्मा" की "फूल की चाह" की याद दिलाती है। रचना इस प्रकार है—

"नाकु, दलंपुलेदु···
··················
नीचपु दास्यवृत्ति मन
नेरनि शुरत मातृदेश से

वाचरणमुनं दसुवु
लर्पण सेसिनवारि पार्थिव
श्री चेलुवारुचोट, तद
स्थग्रुचुलन विकर्मिचि, वासनल्
वीचुचु रालिपोवग व
लेन, तदुदात्त ममाधि मुक्तिकन्''

अर्थात्—रमणियो की वेणियो मे गुथे जाने अथवा प्रिया के कण्ठ मे सुशोभित हो इठलाने की मेरी कामना नही है। मैं चाहता हूँ कि नीचतापूर्ण दासता के प्रति विद्रोह करके स्वतंत्र होने की अभिलापा मे जिन वीरो ने मातृभूमि के पवित्र चरणो मे अपनी वीरता का प्रदर्शन करते हुए प्राणो की आहुति दी, उनका अवशेप जहाँ अपने यश का परिचय दे रहा हो, वहाँ पर विकसित हो अपने मौरभ को बिखेरते हुए उस उदात्त मृण्मय ममाधि पर झर जाऊँ।

पुष्प की यही आकाक्षा कवि के हृदय की अभिलाषा है।

इसी परम्परा मे श्री तुम्मल सीताराममूर्ति, जी० जापुवा, राल्लपल्लि अनंत कृष्ण शर्मा, मल्लमपल्लि, गडियारम, दर्भा, मल्लवरपु नालमकृष्णाराव आदि के नाम उदार के माथ लिये जा सकते हैं। इनके राष्ट्र गान, आत्मकथा, उदय-गान, पेनुगोड लक्ष्मी, पेनुकोड, हंपीक्षेत्र, शिव भारतमु, राणा प्रताप चरित्र इत्यादि काव्यों ने आन्ध्र प्रदेशीय जनता को प्रबुद्ध, प्रोत्साहित और प्रेरित किया। गीतो के रूप मे इन भावनाओं का अपेक्षाकृत अधिक प्रचार-प्रसार हुआ। ऐसे गीत अनगिनत है। बसवराजु अप्पारावु, गरिमेल्ल सत्य-नारायण और देवुलपल्लि कृष्ण-शास्त्री के गीत प्राय: प्रत्येक आन्ध्रवासी की जबान पर चढकर अमर हो गये हैं, ऐसा यदि कहा जाए तो एकदम गलत नही होगा।

गाँधी गान

बसवराजु अप्पाराव महात्मा गाँधी के अनोखे व्यक्तित्व मे इतने प्रभावित हुए कि उनके अन्त:स्तल से उस महामानव की प्रशस्ति मे एक अपूर्व गीत यूँ प्रस्फुटित हुआ—

"कोल्लायि गट्टितेनेमि
मा गांधि मालडै तिरिगितेनेमि
वेन्नपूस मनमु कन्नतल्लि प्रेम

पंइंटि मोमु पै ब्रह्म तेजस्सु
नालुगु परकल पिलक नाट्यमाडे पिलक
नालुगु वेदाल नाण्यमेरिगिन पिलक
बोसिनोविप्पुते मुत्याल तोलकरि
चिरुनव्वु नव्वितें वरहाल वर्षमे
चकचका नडिस्ते जगति कंपिचेनु।"

माने—हमारे गांधीजी अंगोछा पहने तो क्या, हरिजन बन फिरने से क्या? उनका मन मक्खन जैसा (कोमल) है, उनका प्रेम माता का-सा है। उनके मुखमण्डल पर ब्रह्म तेज शोभायमान है। उनकी चोटी में चार ही बाल है, पर वह चोटी नाचना (औरों को नचाना) जानती है। चारों बाल चारों वेदों के सार से अभिभूत हैं। बापूजी यदि अपने पोपले मुँह को खोलते हैं तो उसमें से मोतियों की बौछार हो जाती है। यदि वे मुस्करा पड़ते हैं तो रत्नों की वर्षा हो उठती है। अगर वे जल्दी-जल्दी पग पर डग धरने लगते हैं तो जगत ही कांप उठता है।

इस प्रकार के असंख्य मधुर एवं पुलकित करने वाले भावों को गीतों का रूप देकर आन्ध्र के कवियों ने तेलुगु भाषा-भाषियों में उष्ण रुधिर का संचार ही नही किया, देश के प्रति उनमें अपार प्रेम भी जगाया।

गरिमेल्ल सत्यनारायण जैसे कवियों ने अंग्रेज सरकार के प्रति जन-असंतोष एवं विरोध प्रकट करते हुए अपने स्वर को अधिक विद्रोही बनाया। इनका निम्नलिखित गीत बहुत ही जनप्रिय हो चुका है—

"माकोद्दु ई तेल्ल दोरतनमु
नूट नलुवदि नालुगु
नोटिकि तगिलिचि
माटलाडवद्दंटाडु मम्मु,
पाट पाडवद्दंटाडु मम्मु,
टोपी तीसि वीपुन बादुताडु—
माकोद्दु"

हमें गोरो का यह शासन नही चाहिए। वह एक सौ चालीस की धारा लगाकर हमारा मुंह बन्द करता है और कहता है, तुम बात मत करो, गीत मत गाओ। उल्टे जबर्दस्ती गाँधी टोपी हमारे सिर पर से उतार कर पीठ पर

कोड़ों की बौछार करता है। हम इस शासन से तंग आ गये है। यह शासन हमें नही चाहिए, नही चाहिए"।

राष्ट्रीय भावना को मुखरित करने वाले अन्य प्रमुख तेलुगु कवियो मे श्री श्री, नारायणबाबू, जलसूत्रम्, काटूरि, पिंगलि आदि है। भारत के स्वतंत्र होने के बाद यह भावना और भी यथार्थ रूप मे प्रस्फुटित हुई है। सर्वश्री मधुना पंतुलु सत्यनारायण शास्त्री कृत "आन्ध्र पुराणम्" के दो भाग, श्री दाशरथी कृत "महादोदयम्" और नारायण रेड्डी कृत "नागार्जुन सागरमु" नयी तेलुगु काव्य रचनाओ मे अपना विशिष्ट स्थान रखते है।

"आन्ध्र पुराणमु" के प्रथम खड में इक्ष्वाकु-वंशी नरेशों से लेकर काकतीय काल तक की कथा वर्णित है। बौद्धयुगीन वैभव, शिल्प, चित्रकला इत्यादि समर्थ भाषा एव सशक्त शैली मे तेलुगु काव्य में वर्णित है।

आन्ध्र भू-भाग को दो टुकडो में बँटता देख श्री दाशरथी को दु ख हुआ और उन्हे एक ही शासन के अन्तर्गत लाने की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुए उन्होंने निजामशाही के विरुद्ध विद्रोह का जो शंखनाद किया, वह ऐतिहासिक महत्व रखता है। तेलंगाना में जब एक करोड के लगभग तेलुगु भाषी निजाम के शासन के अन्तर्गत थे, तब कवि ने उनके प्रति अपनी भावनाएँ इन शब्दो मे व्यक्त की थी :

"कोटि तुम्मुल कड रेंडु कोट्ल तेलुगु
टन्नलनु गूर्चि वृत्तातमंदजेसि
मूडु कोट्ल नोक्कटे मुडि बिगिंचि
पाडिनाडमहान्ध्र सौभाग्य नीति।"

एक करोड़ छोटे भाइयों के समक्ष दो करोड़ बड़े भाइयों का समाचार रखकर तीन करोड़ तेलुगु भाषा-भाषियों को एक ही प्रेम-सूत्र मे बांध कर मैंने महान आन्ध्र के सौभाग्य के गीतो का गान किया है।

इस परम्परा मे आन्ध्र भर में राष्ट्रीय गीत के रूप में गान किये जाने-वाले दो-चार गीतो का यहाँ उल्लेख न किया जाए तो यह लेख अपूर्ण ही माना जाएगा। ऐसे गीतों मे श्री देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री कृत

"जय जय जय प्रिय भारत जनयित्री !"

तथा

"युव पताक, नव पताक
अरुणारुण जय पताक..."

प्रमुख है, जो आन्ध्र भर में प्रत्येक सभा के प्रारम्भ एवं अन्त में गाये जाते हैं।

इसी भाँति –

"मा तेलुगु तल्लिकि मल्लेपू दंड
मा कन्न तल्लिकि मंगलारतुलु"

अर्थात्—हमारी तेलुगु माता को चमेली के पुष्पों की माला अर्पित है, हमारी जनन धात्री माता के लिए मंगलमय आरती है।

इस गीत में अनेक उदात्त भाव हैं। इस प्रकार तेलुगु काव्य-साहित्य राष्ट्रीय भावनाओं से पुष्ट, सम्पन्न एवं सुशोभित हो भारत की राष्ट्रीय एकता में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता है।

———

११

तेलुगु वाङ्मय में राम चरित

भारतीय काव्यो मे ही नही अपितु विश्व के काव्य-ग्रन्थो मे भी रामायण आदि-काव्य माना जाता है और वाल्मीकि आदि-कवि। रामायण भारतीयो के लिए आदर्श ग्रन्थ है। वह इतिहास है, आध्यात्मिक ग्रन्थ है, एक कथा, समस्त विषयो का ज्ञान-कोष है। उसमे धर्म, नीति, परिवार, राज्य एव सामाजिक व्यवस्था इत्यादि समस्त बातो का चित्रण है और भारतीय संस्कृति, वाङ्मय तथा ज्ञान-विज्ञान का वह काव्य-भण्डार है। उसके पात्र आदर्श गुणो से पूर्ण एवं उत्तम है। राम जैसे सम्राट, सीता जैसी पत्नी, लक्ष्मण जैसे भ्राता, हनुमान जैसे सेवक, सुग्रीव जैसे सखा,भरत जैसे भक्त तथा दशरथ जैसे करुणामूर्ति विश्व के अन्य वाङ्मय मे दुर्लभ है। ऐसे उत्तम काव्य की सृष्टि करके वाल्मीकि धन्य हो गये है :

रामायण काव्य की उत्पत्ति का हेतु क्रौंच मिथुन की कथा है :

"मानिषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शशाश्वती स्समाः।
यत् क्रौंच मिथुना देकमवधीः काममोहितम् ॥"

महर्षि वाल्मीकि के मुँह से उक्त श्लोक के वहिर्गत होने के पूर्व वैदिक वाङ्मय को छोड़ लौकिक वाङ्मय मे छन्दोबद्ध वाणी नही थी। महर्षि स्वयं इस वाणी पर चकित थे कि ब्रह्मा ने प्रत्यक्ष होकर उन्हें आदिकवि कह कर आशीर्वाद दिया और राम-चरित लिखने का आदेश दिया। तदनंतर नारद मुनि द्वारा रामचन्द्र जी के उदात्त गुणो का वर्णन सुनकर वाल्मीकि ने रामायण की रचना की।

रामायण केवल काव्य मात्र नही है, वह एक आध्यात्मिक ग्रन्थ भी है। राम चरित के महत्व का वर्णन नही किया जा सकता है। श्री मैथिली शरण गुप्त के शब्दों में सुनिए—

"राम तुम्हारा वृत्त स्वयं काव्य है।
कोई कवि बन जाय, सहज संभाव्य है॥"

हिन्दी मे तुलसीदास रचित "रामचरितमानस" काफी लोकप्रिय है। तुलसीदास उच्चकोटि के भक्त, प्रकाण्ड पंडित तथा कवि थे। उनकी कृतियो से हमे इस बात का भलीभाँति परिचय मिल जाता है। तुलसी भावुक थे और उनका लोकानुभव भी परिपूर्ण था। यही कारण है कि उन्होने जीवन के मर्मस्पर्शी स्थलो का चित्रण चित्र बडी मार्मिकता एवं योग्यता के साथ किया है। तुलसी ने वाल्मीकि रामायण से कथा मात्र ग्रहण कर ली और उसे अपने ढग से लोकभाषा में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। वे जिन घटनाओ से अधिक प्रभावित हुए, उनका वर्णन कुछ विस्तारपूर्वक तथा उनमे मग्न होकर किया है। वाल्मीकि ने रामचन्द्रजी को अवतार पुरुष नही माना, बल्कि कालातर में रामचन्द्र अवतार पुरुष हुए। तुलसी तो राम के अनन्य उपासक तथा सेवक थे। उन्होंने समस्त जगत् को सीताराममय देखा .

सिया राम मय सब जग जानी।
करौ प्रणाम जोरि जुग पानी ॥

भक्ति के आवेश मे तुलसी ने काव्य के लक्षणो का निरादर नही किया। काव्य की प्रौढ़ता का उन्होने सदा ध्यान रखा और औचित्य तथा पात्रो के चरित्रों की परिस्थिति का अपने आदर्शानुकूल पोषण किया। कवि का अपने पात्रो के प्रति जिस प्रकार भाव होता है तथा जिस आदर्श को कवि अपने काव्य द्वारा समाज के सम्मुख उपस्थित करना चाहता है, उसी के अनुरूप अपने पात्रो की सृष्टि करता है। यही कारण है कि एक ही कथावस्तु को ग्रहण करने पर भी विभिन्न कवियो की रचनाओं में भिन्नता दिखायी देती है। साथ ही साथ कवि जिस समाज में निवास करता है, उस युग की देश-कला परिस्थितियो का प्रभाव भी काव्य मे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप मे परिलक्षित होता है।

केशवदास केवल मात्र पडित और आचार्य थे। वे भक्त नही थे। जितने अंशों मे वे पंडित थे, उतनी मात्रा में वे कवि नही थे। पंडित और आचार्य में कवि की अपेक्षा तार्किक विचारो की अधिक प्रधानता होती है। इस कारण से उनकी रचनाओ मे कलापक्ष का भले ही विकास हो किन्तु हृदय-पक्ष कमजोर पडता है। तुलसी की रचना मे कही-कही इन दोनों पक्षों का संतुलन होने पर भी मार्मिक स्थलों में हृदय-पक्ष का पलड़ा भारी दिखायी देता है। वे भक्त होने के कारण उस भावुकता मे बहते दिखाई देते है। ऐसे प्रसंग तुलसी रामायण मे अनेक मिलते हैं। केशव ने जहाँ अपने पात्रो द्वारा वार्तालाप कराया है, वहाँ पर उनकी तार्किक शक्ति का अच्छा परिचय मिल जाता है। गिद्ध और रावण का संवाद पढ़ते ही बनता है। लेकिन तुलसी की कृति में

राम और भरत का मिलन, राम का वन गमन, केवट-प्रसग, जनकपुर में स्वयंवर से पूर्व सीताजी का रामचन्द्र को देखना, लक्ष्मण का शक्ति लगने से मूर्च्छित होना, इत्यादि प्रसग अत्यंत उत्तम एव नूतन बन पडे हैं। इन प्रसंगो के आधार पर हम अन्य रामायणो से मेल खाने वाली घटनाओ की समानता एवं असमानताओ पर विचार करेंगे।

तेलुगु मे राम-चरित को लेकर अनेक काव्य, शतक एव लोक-कथाएँ रची गयी है। कुछ पंडितो एवं कवियो ने मूल कथा को आधार बनाकर अनुवाद-कार्य मात्र किया तो कुछ ने कथा-संगठन मे अपनी रुचि के अनुकूल उसम काफी परिवर्तन किया। आन्ध्र देश मे महाभारत और भागवत को जो लोक-प्रियता प्राप्त है, वह रामायण को नही। फिर भी आन्ध्र के आराध्य देव राम है। आन्ध्र के कोने-कोने मे स्थित राम मन्दिर इसकी पुष्टि करते है। भक्त पोतन्ना, भक्त रामदास तथा त्यागय्या ने अपनी कृतियो द्वारा आन्ध्र देश मे राम-भक्ति का अच्छा प्रचार किया। काल की दृष्टि से देखा जाए तो रंगनाथ रामायण प्रथम मानी जाती है। इसके कवि गोन बुद्धा रेड्डी ने कथा संविधान मे नवीन कल्पनाओं तथा लोक प्रचलित वृत्तातो को स्थान देकर काव्य को और भी रोचक बनाने का अच्छा प्रयत्न किया है।

तुलसी के सम्मुख लोक-संग्रह भावना का आदर्श था। उनके नायक राम सब के लिए अनुकरणीय हैं। तेलुगु में महाभारत और महाभागवत के कवियों के सम्मुख यह आदर्श था। रामायण की रचना करते समय कवियों ने केवल मात्र काव्य के आदर्शो को ही अपने सामने रखा। रगनाथ रामायण "द्विपद" छन्द में रचा गया है। कवि काव्य-लक्षणों के निर्वाह मे सजग रहे। गोन बुद्धा रेड्डी ने रामचन्द्रजी के चरित्र को आदर्शपूर्ण एवं उज्ज्वल तो बनाया साथ ही साथ रावण को भी अपार शक्ति-संपन्न, वीर, शिव भक्त तथा उत्तम चक्रवर्ति के रूप में चित्रित किया। गोन बुद्धा रेड्डी के रावण सत्व और तमोगुणों से युक्त है। उसमे अच्छाइयाँ भी हैं और बुराइयाँ भी। पात्र-चित्रण मे कवि की सहृदयता, सहानुभूति तथा समभावना प्रशंसनीय है। रावण के सभी भाई राम के भाइयो जैसे आज्ञाकारी है। मंदोदरी कौसल्या जैसी पति-भक्तिन तथा सुलोचना (रावण की बहू तथा इंद्रजीत की पत्नी) सीताजी जैसी पतिव्रता थी। इनके आदर्श सबके लिए अनुकरणीय हैं। हाँ, केवल रावण के अपराध से उस वंश पर जो कलंक का टीका लगा, बस उस के कारण सब बदनाम हुए। वैसे तो रघुकुल में भी कैकेई-जैसी स्वार्थिन ने अपने कलुष का परिचय दिया है।

रंगनाथ रामायण के रावण रामचन्द्रजी के भक्त थे। वह जानते थे कि

रामचन्द्रजी के हाथों में प्राण त्याग देने का सौभाग्य सब को प्राप्त नहीं होता है। जब युद्ध भूमि में मंदोदरी आकर रावण से प्रार्थना करती है कि युद्ध बन्द कर दे तब रावण कहते हैं—"मैं किसी भी हालत में रामचन्द्रजी को छोड़ नहीं सकता हूँ। मैं उन्हें सीताजी को नहीं दूँगा। यदि युद्धभूमि में मैं राम के बाणों के आघात से प्राण त्याग दूं तो मुझे मुक्ति मिल जायगी। देवता मेरी प्रशंसा करेंगे। उस वैकुण्ठ के सामने सारी लंका और तुम सब बलिहारी हे।" ऐसे ज्ञानी थे रंगनाथ रामायण के रावण। रावण का ऐसा उज्ज्वल पक्ष किसी भी रामायण में हमें उपलब्ध नहीं होता है। वाल्मीकि ने रावण को लम्पट, क्रूर एवं हठी के रूप में चित्रित किया है। तुलसी की भी समभावना नहीं थी। यद्यपि रावण सीताजी के साथ राक्षस विवाह करना चाहता था। लेकिन उन दिनों में राक्षस विवाह करने के लिए भी एक साल की अवधि नारी को दी जाती थी। इस अवधि के भीतर ही रामचन्द्र ने रावण पर विजय पाकर सीताजी को मुक्त किया।

तुलसीदास ने केवट-प्रसंग में अपनी विमल एवं धवल भक्ति का अच्छा परिचय दिया है। केवट का राम के चरण धोकर नाव पर चढाना, उतराई लेने से बचना, यह मार्मिक प्रसंग पाठकों के हृदयों में गुदगुदी पैदा कर देता है। भरत मिलाप के समय भरत के हृदय की पवित्रता, कैकेई का पश्चात्ताप, अयोध्या की प्रजा की राज-भक्ति, रामचन्द्रजी की सच्चरित्रता का वर्णन पढ़ते ही बनता है। जनकपुर में धनुष-यज्ञ के पूर्व राम और सीता की मुलाकात कराकर उनमें परस्पर प्रेम की भावनाएँ पैदा कर कथा-वस्तु में औचित्य की रक्षा की है। उनके विवाह को तुलसी प्रणय-विवाह साबित करना चाहते थे। उनकी दृष्टि में रामचन्द्रजी अपनी शक्ति का परिचय देकर किसी कन्या से शादी कर लें, तो वह वैवाहिक-आदर्श उत्तम नहीं है। समयोचित कल्पना द्वारा अपने काव्य को तुलसी ने सजाने एवं सँवारने में कोई कसर उठा नहीं रखी। तुलसी के राम मानव रूपधारी परमात्मा थे। वे मर्यादा पुरुषोत्तम राम के उपासक थे। उन्होंने रामचन्द्रजी के शील, शक्ति एवं सौन्दर्य के रूप विभिन्न घटनाओं के द्वारा पाठकों के सम्मुख रखे। इन आदर्शों के द्वारा तुलसी ने असहाय जनता को संबल देकर धर्म की रक्षा की। यही कारण है, तुलसी-रामायण आज भी जनता का कण्ठहार बना हुआ है।

गोन बुद्धा रेड्डी के रंगनाथ रामायण में द्राविड आदर्श एवं दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। इन्होंने अपने काव्य में संदर्भ के अनुसार औचित्य की रक्षा करते हुए कई नये प्रसंगों को स्थान दिया है जो तुलसी और वाल्मीकि

रामायणो में भी हमे नहीं मिलते। उनमें ४-५ प्रसगो का हम यहाँ परिचय देते हैं—

यों तो सभी रामायणकारो ने पंचवटी मे शूर्पणखा का प्रवेश कराया है; किन्तु कथा औचित्य की दृष्टि से अचानक शूर्पणखा का प्रवेश कुछ विचित्र-सा लगता है। इस ओर किसी रामायणकार का ध्यान नही गया। गोन बुद्धा-रेड्डी ने एक अपूर्व कल्पना द्वारा पंचवटी में शूर्पणखा के प्रवेश को अत्यंत स्वाभाविक बना दिया है।

१. जंबुमाली वृत्तांत—जंबुमाली शूर्पणखा का पुत्र था। रावण ने जंबुमाली के पिता विद्युज्जिह्व का अपमान किया था। उसका बदला लेने के लिए जंबुमाली एक सघन वन मे सूर्य के प्रति तपस्या कर रहा था। सूर्य भगवान ने उसकी तपस्या पर प्रसन्न हो एक सुन्दर खड्ग भेजा। लेकिन जम्बुमाली ने उसे ग्रहण करने से इसलिए इनकार किया कि स्वयं सूर्यदेव ने आकर उसे नहीं दिया। खड्ग को आकाश की ओर वापस लौटते लक्ष्मण ने देखा। लक्ष्मण उस समय कंदमूल और फल के लिए आये थे। उस खड्ग को अपने हाथ में लेकर देखा, उसकी धार पैनी थी। उसकी जाँच करने के विचार से लक्ष्मण ने पास में स्थित एक बाँस के झुरमुट पर खड्ग चलाया। उसके साथ उसमें तप करने वाला जम्बुमाली भी कट मरा। इससे लक्ष्मण भयभीत हो राम के पास गये। वही पास मे बैठकर तप करने वाले मुनियो द्वारा उन्हे मालूम हुआ कि जम्बुमाली एक राक्षस है। थोडी देर के बाद शूर्पणखा आयी और अपने पुत्र की मृत्यु को देख विलाप करती रही। जब उसे भी मुनियो द्वारा मालूम हुआ कि एक मुनिवेषधारी राजकुमार ने उसका संहार किया तो वह बदला लेने के लिए राम की पर्णशाला के निकट आयी। रामचन्द्रजी के अपार सौन्दर्य को देख वह अपने क्रोध को भूल गयी और उनसे विवाह करने की कामना प्रकट की।

२. सुलोचना का वृत्तान्त—रंगनाथ रामायण में सुलोचना (इन्द्रजीत की पत्नी) का चरित्र अत्युत्तम बन पडा है। सीता के समान पातिव्रत्य का प्रतीक सुलोचना-वृत्तान्त है। सुलोचना को विवाह के समय उनके पिता ने वरदान दिया था कि उसका पति यदि युद्धभूमि में जाते समय उससे कह करके जाये तो उसकी कभी मृत्यु नही होगी और चाहे विपक्षी दल के, जितने भी बड़े वीर क्यों न हो, उसका वध नहीं कर सकेंगे। राम रावण के युद्ध के दिनो में एक दिन शीघ्रता में इन्द्रजीत अपनी पत्नी की अनुमति लिये बिना चला गया। उस दिन युद्ध में लक्ष्मण के हाथों से मारा गया। पतिव्रता सुलोचना अपने पति के मृत शरीर के साथ सती होना चाहती है। इसलिए

और ससुर से कहती है कि वे उसके पति का शरीर मँगवायें। लेकिन रावण बताते है कि युद्धभूमि मे जाकर शत्रुओं के बीच से इन्द्रजीत का मृत शरीर लाना सम्भव नही है। इस पर वह अपने ससुर से आज्ञा माँगती है कि युद्धभूमि मे स्वय जाकर अपने पति के मृत शरीर को ले आने की अनुमति दे। विवश हो रावण मान लेता है। सुलोचना उड़ती हुई शत्रु के शिविर के निकट पहुँच जाती है। पहले हनुमान वगैरह सशंक हो जाते है, बाद को समझ लेते है। रामचन्द्रजी से अपने पति का शरीर मांगती है तो वे बताते हैं कि युद्धभूमि मे वीरों को शरीर मिलना कठिन है। क्योंकि कही धड, कही सर कटे गिरे होते हैं। तब हनुमान कहते है—तुम पतिव्रता हो, ऐसा करो कि तुम्हारे पातिव्रत्य के बल मे धड और सर एक साथ मिल जाय। सुलोचना के प्रार्थना करने पर ऐसा ही होता है। उसके पातिव्रत्य से प्रसन्न हो राम कहते है, तुम चाहो तो कोई वर माग सकती हो। इस पर हनुमान घबरा उठते है, क्योंकि यदि सुलोचना अपने पति को पुनर्जीवित करने का वर माँगे तो फिर इन्द्रजीत का वध करना किसी के लिए सम्भव नही है। इसलिए हनुमान तुरन्त सरस्वती देवी से प्रार्थना करते है कि वह सुलोचना के जिह्वा पर बैठ कर उसके मुँह से यह वरदान निकलवाये कि वह अपने मृत पति को पुनः जीवित करने का वर न माँग बैठे। सरस्वती हनुमान की प्रार्थना को स्वीकार कर लेती है और सुलोचना के मुँह से कुछ दूसरा वर ही प्रकट कराती है। सुलोचना रामचन्द्रजी से कहती है—'भगवन्, यदि आप मुझ पर प्रसन्न है तो ऐसा वर दीजिए कि दूसरे जन्म में हम दोनो फिर पति-पत्नी के रूप मे जन्म धारण करें। रामचन्द्र जी ऐसा वर देते है। सुलोचना बडे आनन्द से अपने पति के शवसहित सती हो जाती है।

जब उस महापतिव्रता का सम्पूर्ण समाचार जानने की जिज्ञासा लक्ष्मण प्रकट करते हैं, तब रामचन्द्र जी बताते है, "हे लक्ष्मण, यह सुलोचना और कोई नही, तुम्हारी पुत्री ही है।" लक्ष्मण मे निर्वेद की भावना पैदा होती है। वह अपने जामाता की मृत्यु अपने हाथो से होने तथा अपनी पुत्री के मंगलसूत्र को आप ही तोडने के अपराध में खिन्न हो जीवन से विरक्त हो जाते हैं। तब रामचन्द्रजी अपने विष्णु के अवतार का रहस्य खोलकर उपदेश देते है— "मैं जब विष्णु के अवतार मे था, उस समय तुम मेरे वाहन शेषनाग थे। उस अवतार मे तुमने अपनी पुत्री सुलोचना का विवाह इंद्रजीत के साथ किया था।"

इस वृत्तात से पता चलता है कि रामायणकार ने आर्य और द्राविड़ संस्कृतियों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध की सृष्टि करके दोनो के प्राचीन औन्नत्य

का उत्तम परिचय दिया है। सुलोचना का चरित्र रंगनाथ रामायण में इतना अद्भुत बन पड़ा है कि उसके सामने सीताजी का चरित्र कुछ फीका-सा मालूम होता है। सुलोचना द्राविड नारियों की प्रतिनिधि है। यहाँ की नारियों के पातिव्रत्य, पतिपरायणता, वीरता इत्यादि का सुन्दर परिचय सुलोचना के चरित्र द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

३. **ऊर्मिला देवी की निद्रा**—वाल्मीकि तथा तुलसी ने ऊर्मिला के चरित्र तथा त्याग की महानता का एक प्रकार से अनादर किया। इस पर गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी अपना क्षोभ प्रकट किया है। लेकिन श्री मैथिली शरण गुप्तजी ने ऊर्मिला के महान त्याग का सुन्दर परिचय दिया है। लक्ष्मण और ऊर्मिला का आह्लादपूर्ण वैवाहिक जीवन का भी सुन्दर चित्र खींचा है और साथ ही साथ उनके विरह का भी विस्तृत परिचय उपस्थित किया है। इस प्रकार उपेक्षिता ऊर्मिला का त्यागमय जीवन साकेत में चित्रित हुआ है। ऐसा अद्भुत परिचय अन्यत्र दुर्लभ है। ऊर्मिला के प्रति गुप्तजी की सहानुभूति तथा उनके महान त्याग का आदर प्रशंसनीय है। ऊर्मिला को ही काव्य की नायिका बनाकर यह साबित किया है कि सीताजी से भी ऊर्मिला का त्याग महान है।

परन्तु गोन बुद्धा रेड्डी ने ऊर्मिला का दूसरा पक्ष उपस्थित किया है। ऊर्मिला के प्रति बुद्धा रेड्डी की सहानुभूति और आदर की भावना उनके इस वृत्तांत से प्रकट होती है। रामायणकार चाहते है कि ऊर्मिला उद्दाम यौवन के समय पति के वियोगानल मे जलती न रहे, इसलिए एक ऐसी कथा की सृष्टि की जिससे ऊर्मिला को वियोग की वेदना का अनुभव न हो। यही कथा ऊर्मिला देवी की निद्रा है। वह यों है—

लक्ष्मण पंचवटी मे अर्ध रात्रि के समय एक दिन नित्य की भाँति पहरा दे रहे थे। हठात् निद्रा देवी ने अपनी सपूर्ण शक्ति के साथ उन पर हमला किया। वीरवर लक्ष्मण यदि सो जाते तो वे अपने कर्त्तव्य-पथ से गिर जाते, इसलिए उन्होंने निद्रादेवी से सविनय प्रार्थना की—"हे माता, मुझे तो अपने भाई-भाभी की सेवा करना है। मेरे वियोग में ऊर्मिला बड़े कष्ट से अयोध्या मे अपने दिन बिता रही है। आप कृपया उन पर अपनी कृपा दृष्टि प्रसारित करें, ताकि वह १४ वर्षों तक मेरे वियोग की व्यथा का अनुभव न करे।" लक्ष्मण की प्रार्थना निद्रा देवी ने मान ली। जब १४ वर्ष के बाद लक्ष्मण अयोध्या लौटते हैं तो रामचन्द्रजी उनसे कहते हैं कि वह तत्काल ही ऊर्मिला के कुशल होने का पता लगावे। भाई की आज्ञा पाकर लक्ष्मणजी अंत.पुर में

पहुँच जाते हैं। किन्तु देखते क्या है कि ऊर्मिला गाढ़ निद्रा में निमग्न है। लक्ष्मण ऐसी ध्वनि करते है कि ऊर्मिला जाग पड़ती है। अपने महल में आये हुए व्यक्ति को परपुरुष मानकर वह धमकाती है कि यह समाचार उनके पति लक्ष्मण तथा उनके भाई रामचन्द्रजी को मालूम हो जाएगा तो जान की खैर नहीं। इसके उपरांत वह रघुवंश की बड़ाई करती है। लक्ष्मण अनेक उदाहरणों द्वारा यह साबित करते हैं कि वे ही लक्ष्मण हैं और वनवास समाप्त कर अयोध्या लौटे हैं। सारी कहानी को सुनकर ऊर्मिला लक्ष्मण के चरण छू लेती है।

देवर लक्ष्मण की हँसी—इस वृत्तांत मे गोन बुद्धा रेड्डी ने लक्ष्मण के त्यागमय जीवन पर प्रकाश डाला है। वनवास करने का आदेश केवल रामचन्द्रजी को ही मिला था, फिर भी लक्ष्मण भाई और भाभी की सेवा के लिए उनके साथ चल पड़ते हैं प्राण प्यारी पत्नी को भी छोड़कर; वह भी अपनी इच्छा से। ऐसे महान त्यागी पुरुष के पवित्र चरित्र पर प्रकाश न डालें तो उनके प्रति अन्याय ही होगा। कथा-सार यों है—

अयोध्या मे रामचन्द्रजी का दरबार लगा हुआ था। विभीषण, सुग्रीव, हनुमान इत्यादि उस सभा में उपस्थित थे। सीताजी रामचन्द्रजी के अंक पर शोभायमान थी। अचानक लक्ष्मण हँस पड़े। सीताजी ने सोचा कि भरी सभा मे रामचन्द्रजी की गोद मे बैठे देख लक्ष्मण हँस रहे हैं। तुरन्त उनका कमल-जैसा मुख-मण्डल म्लान हो उठा। विभीषण और सुग्रीव ने सोचा कि दोनो ने अपने भाइयो के प्रति अन्याय किया है। इसकी याद करके लक्ष्मण हँस रहे है। हनुमान ने सोचा कि उनके जैसे बड़े वीर को रामचन्द्रजी के चरणो के पास बैठे देख लक्ष्मण हँस रहे है। इसी प्रकार सभी उपस्थित सदस्यों के चेहरे विवर्ण हो गये। रामचन्द्रजी ने सारी सभा के म्लान हो जाने का कारण लक्ष्मण ही को मान बिना कुछ सोचे-विचारे लक्ष्मण का वध करने का आदेश दिया। इस पर वशिष्ठ, विश्वामित्र इत्यादि मुनियों ने रामचन्द्रजी से निवेदन किया कि बिना हँसी का कारण जाने वध करने की आज्ञा देना उचित नहीं। इस पर रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण जी से कारण पूछा तो उन्होंने निद्रादेवी की सारी कथा सुनायी और कहा—आज पूरे १४ साल हो गये है। निद्रादेवी से मैंने पंचवटी मे प्रार्थना की थी; आज उस अवधि के समाप्त होते ही उसने मेरे ऊपर ही हमला बोल दिया है। रामचन्द्र जी को वनवास की सारी कहानी याद आयी। लक्ष्मण ने निद्रा और आहार त्याग कर उनकी सेवा की थी। ऐसे भ्राता को तुरन्त वध करने का आदेश दिया, रामचन्द्र ने अपने इस अपराध पर पश्चाताप किया। मुनियो ने प्रायश्चित्त का विधान लक्ष्मण के

चरण छूने का बताया। लक्ष्मण के सोते समय रामचन्द्र जी ने अपनी भूल का प्रायश्चित्त किया। इस रामायण के कई प्रसंगो को आज भी लोक-कथाओ के रूप में पुतली खेल, बुर्रकथा, हरिकथा, इत्यादि के प्रदर्शन के समय जनपदो में व्यवहार मे ला रहे हैं। साधारण प्रजा मे इस रामायण को जो लोकप्रियता प्राप्त है वह अन्य रामायणों को नहीं।

इस रामायण का प्रत्येक पात्र वाल्मीकि तथा तुलसी रामायण से भिन्न उत्तम आदर्शों को लेकर प्रस्तुत हुआ है। विस्तार के भय से हम उन सब का वर्णन नही कर रहे है। यों तो संख्या की दृष्टि से तेलुगु मे ३०-३२ रामायण रचे गये हैं। हम यहाँ केवल ३-४ रामायणों की चर्चा मात्र करेंगे।

रंगनाथ रामायण के उपरान्त भास्कर रामायण का नम्बर आता है। भास्कर रामायण की रचना ४-५ कवियों ने की है। इसमे राम का आदर्श अत्यन्त उत्तम बन पडा है। श्री रामचन्द्र जी ने अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए राज्य त्याग दिया। राम-रावण के युद्ध के समय विभीषण रामचन्द्र जी की शरण में आये, उस समय रामचन्द्र जी विभीषण से कहते है—"हे विभीषण, तुम्हारी भक्ति और श्रद्धा पर मुग्ध हूँ। रावण का संहार कर तुम्हें लंकापुरी राज्य का राजा बनायेंगे। अपने हाथों से तुम्हारा पट्टाभिषेक करूँगा।"

इस पर सुग्रीव शंका प्रकट करते है—"प्रभू ! रावण अपनी भूल पर पश्चात्ताप करके जगज्जननी जानकी देवी को आपको समर्पित कर आपकी शरण मे आवे तो क्या करेंगे ?" उस हालत मे लंका का राज्य रावण का ही होगा न ! विभीषण को कौन-सा राज्य देकर आप अपने वचन का पालन करेंगे ?"

रामचन्द्र जी सुग्रीव के ये वचन सुनकर बडी उदारता से कहते हैं— "तब तो मैं अपना अयोध्या का राज्य उन्हे दे दूँगा।" ये वाक्य रामचन्द्र के मुँह मे ही प्रकट होते हैं

"अनघ चरित्र मीकु शरणागतरक्ष कुलव्रतंबु, मी
सुनिश्चित बाण जालमुल चोकुन कोर्वकवञ्चितादशा
ननड्मवबु वेडिकोनि नंदगवेट्लगुनन्न नव्विभु
डिनुसुतुजूचि यट्लयिन निच्चेदवानिकयोध्य यंचनन्"

—भास्कर रामायण

भास्कर रामायण में सीता-राम का अद्वैत प्रेम, भूतदया अत्यद्भुत एवं

अवर्णनीय है। रामचन्द्र जी का प्रेम-प्रकृति और पुरुष का हमे स्मरण दिलाता है। वे सीता जी से कहते है—"तुम मेरे जीवन हो, मेरे द्वितीय हृदय हो, मेरे नेत्रों की ज्योत्स्ना हो और मेरी देह के लिए अमृततुल्य हो।"

राम और भरत का मिलाप तुलसी रामायण मे जैसा मनोहर बन पड़ा है, भास्कर रामायण मे भी उतना ही सुन्दर चित्रित हुआ है। चित्रकूट मे प्रवेश कर भरत मुनि वेषधारी रामचन्द जी को देख विलाप कर उठते हैं। सारांश यों है—

"महनीय मणिमय मन्दिरो मे निवास करने वाले श्री रामचन्द्र जी आज पर्णशाला में है। मखमल की गद्दियो पर विश्राम करने वाले राम आज दर्भ-शय्या पर आराम कर रहे है। मूल्यवान मालाओ तथा पीताम्बर धारण करने वाले राम आज जटाधारी हो वल्कल पहन रहे है। जिस सम्राट की सेवा मे समस्त राज परिवार (समस्त राज्यो के राजा) उपस्थित रहता था, वही सम्राट आज मुनियो की सेवा में है। कैकेई के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण ही मुझे आज यह दुरवस्था देखनी पड़ी।" इस प्रसग को पढते ही पाठको का हृदय विदीर्ण हो जाता है।

भास्कर रामायण मे छः काण्डो का ही वर्णन है। उत्तरकाण्ड की रचना ककटि पापराजु ने की है। श्री पापराजु ने उत्तरकाण्ड के वृत्तान्तों को आधार बनाकर अपनी रुचि के अनुरूप कथा-विस्तार करके उसे एक महाकाव्य का रूप दिया है। पापराजु के पूर्व कवि ब्रह्मनाम से विख्यात महाकवि तिक्कना ने भी निर्वचनोत्तर रामायण प्रस्तुत किया था। तिक्कना का निर्वचनोत्तर रामायण संक्षिप्त मात्र बन पडा है। इन दोनो काव्यो मे जानकी का शोक वृत्तान्त भिन्न रूप में वर्णित है। तिक्कना के उत्तर रामायण की कथा यों है—"लीला-विहार के समय एक दिन श्री रामचन्द्र ने गर्भवती सीताजी मे पूछा कि वह अपनी कोई इच्छा हो तो बतावे।" सीताजी तो पहले लजा गयीं। तदुपरान्त रामचन्द्र से कहा—"मुझे गगा नदी के किनारे रहने की इच्छा हो रही है।" रामचन्द्र ने मान लिया। दूसरे दिन जब रामचन्द्र दरबार मे पहुँचे तो उनके नर्म-सचिव (निजी सचिव) भद्र द्वारा यह जानकर कि लोग सीताजी को रावण के यहाँ से लाने के कारण तरह-तरह की बातें करते हैं, सीताजी को वन भेजने का निश्चय करते है। तुरन्त अपने भाइयो को बुलाकर मत्रणा करते है और यह वृत्तान्त सुनाकर अपना निर्णय भी बता देते हैं। भ्रातृप्रेमी रामचन्द्र जी के अनुज मौन धारण करते हैं।

दूसरे दिन सुमन्त्र रथ तैयार कर लक्ष्मण के सामने उपस्थित करते है।

रामचन्द्र सीताजी से कहते है—"तुम्हारे गंगा तट पर विहार करने का उचित प्रवन्ध किया है। लक्ष्मण तुम्हारे साथ चलने वाले हैं। ये वचन कहकर सीताजी को रथ पर चढाते हैं। जानकी भी अत्यन्त आनन्द के साथ रथ पर आरोहण करती है। रामचन्द्र जी कानन में मुनि-पत्नियों को देने के वास्ते अमूल्य आभूषण एवं वस्त्र देकर विदा करते है।

सीता जी को मार्ग-मध्य में अनेक अपशकुन देख दुःख होता है। गंगातीर पर पहुँच कर लक्ष्मण रथ रुकवा देते हैं। गंगा पार करके एक भयंकर कानन के निकट पहुँचने के बाद लक्ष्मण विषाद हृदय मे रामचन्द्रजी की आज्ञा सुना देते है, अपने आपकी निन्दा करते तथा विधि की विडम्बना पर खेद प्रकट करते हुए। जानकी काँपते हुए लक्ष्मण को देख चकित हो शंकाकुल हो जाती है। इसके बाद लक्ष्मण अपने हृदय को पत्थर बनाकर राम का आदेश सुनाकर बता देते है—"पास मे ही मुनियो का आश्रम है, चिन्तारहित हो वही रहें।" सीताजी अपने दुर्भाग्य पर शोक प्रकट करती हैं। उन्हें इस बात का बड़ा दुःख होता है कि रामचन्द्रजी ने उनसे सच्ची हालत क्यो नही बतायी। जैसे गौतम भी यशोधरा से बिना कुछ कहे चल पडे तो यशोधरा को दुःख हुआ था। इधर जानकी सोचती ही रहती हैं कि लोगो के अपवाद को कैसे दूर किया जाय। लक्ष्मण जानकी जी के चरणो पर गिर पडते है। साष्टांग दण्डवत करके नगर की ओर भारी हृदय लेकर चल पडते है। यह प्रसंग हमे तुलसी रामायण में दिखाई नही देता। कंकटि पापराजु ने अपने उत्तर रामायण मे उक्त प्रसंग को दूसरे ढंग से उपस्थित किया है। कथा-वृत्तान्त इस प्रकार है—रामचन्द्रजी अपने भाइयो को बुलाकर सीता जी पर लोकापवाद का समाचार सुनाते है, और कहते हैं—"महादेव, ब्रह्मा, मुनि तथा देवगणो की प्रशंसा प्राप्त करने वाली सती को मुझे अग्निदेव ने प्रदान किया है। ऐसी सती पर कलंक का टीका लगा है।" यों विलाप करके अन्त मे सीताजी को वनवास भेजने का निर्णय करते हैं। लेकिन इस प्रसंग में तिक्कना के भाव को पापराजु ने इस प्रकार परिवर्तित किया है—सीताजी के पास दूसरे दिन सुबह स्वयं लक्ष्मण पहुँच जाते हैं और कहते है—"हे माता! गगा तीर पर विहार करने के लिए रामचन्द्रजी ने मुझे भेजा है। रथ भी ले आया हूँ, तैयार हो जाइए।" ये वचन सुनकर प्रसन्नचित्त हो सीताजी स्वयं आभूषण एवं वस्त्र लेकर रथ पर सवार हो जाती हैं।

सीताजी के जाते समय मार्ग-मध्य मे लोमड़ी, चील, उल्लू इत्यादि का रास्ते में दिखाई देना, रथ की ध्वजा पर चीलों का आक्रमण इत्यादि अपशकुन देख सीताजी का हृदय व्याकुल हो उठता है। कानन में पहुँचने के उपरांत

लक्ष्मण रामाज्ञा को सुनाते रो पड़ते हैं। इस संदर्भ में लक्ष्मण की सुशीलता का सुन्दर परिचय मिलता है —लक्ष्मण विलाप करते कहते हैं—"हे माता, आखिर मैं किसी कठिन विधि की बात सुनाने जा रहा हूँ। मुझ जैसे मूर्ख की सृष्टि विधि ने किस प्रकार की? रामचन्द्रजी ने यह सोचकर मुझे इस कार्य के लिए नियत किया है कि यह कठिन चित्त वाला कोई भी कार्य कर सकता है। मैं ऐसा पापी हूँ कि तुम्हें अपने पतिदेव से अलग कर अकेले इस भयंकर कानन में छोड़ कर चला जा रहा हूँ।" सीता और लक्ष्मण के वचन करुणा रस में भीगे हुए हैं और पाठक पढ़ते-पढ़ते बरबस रो उठते हैं।

लोकापवाद का समाचार सुन सीता मूर्च्छित हो जाती है, फिर होश में आने पर कहती है—"मैंने शायद अपने पूर्व-जन्म में किसी दंपति को अलग किया था; उसी का फल अब भोगने जा रही हूँ।" फिर कभी कहती है कि "सभी मुझे सती, साध्वी और पतिव्रता कहने से संतोष करने वाले रामचन्द्रजी आज मेरे ऊपर दोषारोपण करके वनवास का कठिन कष्ट देने वाले हैं, यह मैं कल्पना भी नहीं कर सकती थी।" फिर कभी कहती है—"हे लक्ष्मण, तुमने रामचन्द्रजी की आज्ञा ठीक तरह से सुनी नहीं होगी, या मतिभ्रम होने के कारण कह रहे हो। रामचन्द्रजी तो स्वप्न में भी ऐसा आदेश नहीं दे सकते हैं।" फिर थोड़ी देर बाद दुःखातिरेक में कह उठती हैं—"लक्ष्मण मैंने भूल से ये कठिन वचन कहे, सहन करो।" आखिर जीवन से विरक्त हो बता देती है—"मेरा शरीर है और है सामने भागीरथी! फिर क्या? मैं अपनी देहलीला यहीं समाप्त कर सकती हूँ।"

फिर विलाप करती हैं—"मुनि-पत्नियों के पूछने पर मैं क्या उत्तर दूँगी? राम की निन्दा होते कैसे सहन करूँगी। उनकी आज्ञा को शिरोधार्य मानकर कानन-वास करूँगी।" इस प्रकार जानकीजी की मन.स्थिति का वर्णन पढ़ते ही बनता है। लक्ष्मण से सीताजी को विदा लेते देख पाठकों के नेत्र सजल हो उठते हैं।

मोल्ला (मोल्लाबा) नामक एक कवयित्री ने भी तेलुगु में रामायण की रचना की है, जो मोल्ल रामायण नाम से विख्यात है। कुम्भकार वंश में जन्म लेकर उत्तम कवितावेश के साथ संग्रह रामायण सरल भाषा में कवयित्री ने प्रस्तुत की है। सारा रामायण भक्ति-भावना में ओतप्रोत है। यह रामायण साधारण प्रजा, स्त्री तथा बालक-बालिकाओं के उपयोगार्थ रची गयी है। कवयित्री ने रामायण की रचना का उद्देश्य यह बताया है कि जिस प्रकार मधु खाने से मुँह मीठा हो जाता है, उसी भाँति काव्य-पठन से काव्य के रस

का आनन्द पाठक उठा सके, यही काव्य का प्रयोजन है। अन्यथा गूढ शब्दो मे काव्य रचा जाय तो वह मूक और बहरे लोगों का विलाप ही होगा।

रावण द्वारा सीता का अपहरण होने पर सीता-विलाप का प्रसंग हृदयस्पर्शी बन पड़ा है। रावण का सीताजी के समक्ष अपनी बड़ाई का वर्णन, सीता-राम का प्रेम-वृत्तांत इत्यादि प्रसंग वाल्मीकि तथा तुलसी रामायणों से अधिक स्वाभाविक एवं उत्तम बन पड़े हैं। धनुष यज्ञ के प्रसंग में तो श्रीरामचन्द्र जी लीलामानुष के रूप में चित्रित है। राजकुमार सीताजी के स्वयंवर मे भाग लेने आये हैं। शिव-धनुष को देख सभी चकित हो जाते है। उस प्रसंग का वर्णन कवयित्री के शब्दों में सुनिए—

"यह धनुष तो पर्वताकार है। इसकी ओर देवता भी अपनी आँख उठाकर देखने का साहस नही कर सकते हैं। यह तो शिवजी का धनुष है, इसे या तो हरि तोड सकता है या हर, अन्य लोगो के लिए कैसे संभव होगा ? ऐसे महान धनुष को उठाने का दम्भ भरना, उसके पास पहुँचना और अपयश प्राप्त करना तो मूर्खता है। अपनी शक्ति और बाहुबल का ज्ञान रखते हुए भी उसे तोड़ने का प्रयत्न क्यों करें ? शिवधनुष तोडकर सीता जी को प्राप्त करने का सौभाग्य किसी देवता के लिए ही सभव है। अर्थात् सीताजी तो उन्ही की संपत्ति है। दूसरों की संपत्ति को पाने की लालसा उचित नही। यह सोचते वहाँ पर उपस्थित सभी राजकुमार धनुष यज्ञ के मण्डप से बाहर आ गये।"

सरल भाषा मे रचित मोल्ल रामायण जनपदो मे काफी आदर प्राप्त है। इसका पठन-पाठन भी रंगनाथ रामायण की तरह आन्ध्र के जनपदो मे आज भी होता आ रहा है।

इसके उपरांत रघुनाथ राय ने रघुनाथ रामायण, गोपीनाथ ने गोपीनाथ रामायण इत्यादि अनेक व्यक्तियो ने रामायण की तेलुगु में गद्य व पद्य मे रचना की। आधुनिक युग में श्री वाविलिकोलनु सुब्बाराव, श्री जनमंचि शेषाद्रि शर्मा, श्री श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री (आस्थान कवि) तथा कवि सम्राट श्री विश्वनाथ सत्यनारायणजी ने रामायण लिखे। श्री विश्वनाथ सत्यनारायण कृत "रामायण कल्पवृक्ष" अपने ढंग का अपूर्व तथा अद्भुत है। ये राम के अनन्य भक्त तथा महाकवि हैं। रामायण की केवल कथा मात्र को ग्रहण कर अपनी स्वतंत्र प्रतिभा के द्वारा आपने एक उत्तम कला-सौध का निर्माण किया है। पांडित्य तथा शिल्प की दृष्टि से इसकी समता कर सकने वाला रामायण दुर्लभ है। यह आन्ध्र देश तथा तेलुगु के लिए बड़े गौरव एवं गर्व की बात है। कवि रामायण की रचना का उद्देश्य इस प्रकार बताते हैं—"लोग

मुझसे पूछ सकते है कि तेलुगु मे इतने रामायणो के होते हुए फिर रामायण की ही रचना आप क्यो कर रहे हैं ? परन्तु यह जगत भी तो प्रतिदिन एक ही तरह खाना खाता है, लेकिन स्मरण रखने की बात यह है कि प्रत्येक व्यक्ति की अभिरुचि, जीवन शैली, अनुभूति, भक्ति इत्यादि भिन्न होती है। कवि की प्रतिभा मे काव्यगत रस का निरूपण नित्य नूतन हो बहिर्गत होता है। इसे प्राच्य और पाश्चात्य सभी विद्वान स्वीकार करते हैं। मेरी कविता की भी यही विशेषता है।

श्री विश्वनाथ सत्यनारायण जी अपनी लोकोत्तर प्रतिभा के द्वारा रामायण कल्पवृक्ष को एक महान साहिती कल्पवृक्ष का रूप देने मे संलग्न हैं। कवि मे पारमार्थिक दृष्टि अधिक है। उनका कहना है कि "जागृति तथा स्वप्न और सुषुप्ति की अवस्थाओं मे उनकी जिह्वा पर रामनाम नृत्य करता रहता है।" इसलिए कवि उस कृति को भगवान को ही समर्पित कर चुके हैं। वे कहते हैं—"हे देवादिदेव ! पाठक मेरे इस काव्य को पढ़े या न पढ़े, अर्थात इसका आदर करें या न करें, इससे मुझे कोई मतलब नही। मैं अपना हृदय उन लोगों के सामने रख रहा हूँ, इसका फल मुझे प्राप्त हो।"

महाकवि की कविता प्रौढ़, सरस, मधुर तथा पाडित्यपूर्ण है। कैकेयी के चित्रण मे कवि ने एक नया दृष्टिकोण अपनाया है। उनके प्रति कवि के हृदय मे जो अगाध सहानुभूति का स्रोत है, उमड पडा है। कैकेयी तो मानवी है। मानवीय दुर्बलता तो स्वाभाविक है। उसने तो अपने हक की माँग की है। वैसे तो वह रामचन्द्रजी को कितना चाहती है। संतानप्रियता पाप नही है। विवाह के समय मे ही दशरथ ने वचन दिया था कि उनकी संतति को ही राजगद्दी मिलेगी। भला फिर दशरथ समय पर मुँह क्यों मोड़ते हैं। राजा शांतनु के लिए भीष्म ने अपना राजपाट त्याग नही किया था ?

प्रारम्भ में संतान के न होने पर दशरथ का दुखी हो महामात्य के सामने जो दुःख प्रकट करते है, वह प्रसग पाठको के हृदय को द्रवीभूत कर देता है। ऐसे असंख्य मार्मिक प्रसंगो से पूर्ण रामायण कल्पवृक्ष के कुछ ही कांड प्रकाशित हो सके हैं। दो-तीन काण्ड अभी शेष है। उनके प्रकाशन से तेलुगु साहित्य जगमगा उठेगा।

आन्ध्र देश मे रामचरित सम्बन्धी इन काव्य-ग्रन्थों के अतिरिक्त शतक, कीर्तन, गीत विपुलसंख्या में रचे गये हैं। उनमे भक्त रामदास कृत, दाशरथी शतक तथा भक्त शिरोमणि श्री त्यागराज कृत कीर्तन आज भी जनता के कंठहार बने हुए हैं। लोग भक्ति के पारवश्य मे मुग्ध हो वे कीर्तन गाते-झूमते

दिखाई देते है। इनके अलावा कथाएँ असख्य परिमाण मे रची गयी है। उनमें लक्ष्मण-मूर्च्छा, शतकठ रामायण, कुश-लव कथा, पाताल होमम् इत्यादि प्रसिद्ध हैं। ये सब राम को अवतार पुरुष मानकर रची गयी हैं। इनमें अलौकिक घटनाओं का समावेश अधिक हुआ है। यहाँ पर केवल शतकठ रामायण का सारांश मात्र देगे। "दशकंठ (रामायण) की मृत्यु के उपरांत शतकठ नामक एक राक्षस ने राम से बदला लेने के विचार से ब्रह्मा के प्रति घोर तपस्या की और ब्रह्मा से वर प्राप्त कर मुनियों को तंग करने लगा। मुनियो ने राम की शरण ली। राम और शतकठ के बीच घोर युद्ध हुआ। रामचन्द्रजी की ओर से उनके भाइयों ने ही नही अपितु उनकी पत्नी सीताजी ने भी युद्ध किया। युद्ध हो ही रहा था कि शतकंठ के रक्त से शतमुख पैदा हुआ, अंत मे रामचन्द्र आदि ने सब का संहार किया।

इस प्रकार रामचरित पर असंख्य कवियों ने विभिन्न रूपो मे रचनाएँ प्रस्तुत की। राम चरित का ऐसा विपुल प्रचार क्यों हुआ? कवि मुरारी के शब्दो में मैं अपनी रचना समाप्त करता हूँ। "अनर्घराघवम्" मे मुरारी लिखते है—"रामचरित पर अनेकों ने कलम चलायी है। यह सोचकर चुप रहे तो ऐसे महान गुणों से पूर्ण नायक और कौन है, जिसके गुण विशेषो का वर्णन कर कवि अपनी वाणी को सार्थक बना सकते है।"

१२

तेलुगु में कृष्ण काव्य

गर्ग संहिता में विष्णु के अवतार का परिचय देते हुए कहा गया है कि अवतार प्रधानतः पाँच प्रकार के है। जो क्रमश: अंशावतार, अंशांशावतार, आवेश अवतार, कलावतार और परिपूर्णावतार। किन्तु उनमे से कृष्णावतार को ही परिपूर्णावतार बताया गया है।

अन्य अवतार परिपूर्ण होते हुए भी सर्वव्यापी नही है। एक ही समय मे समस्त लोकों मे समस्त रूपो में दर्शन देना ही उसकी अनुपमता का निदर्शन कहा जा सकता है। अपने मुखमण्डल मे यशोदा देवी को समस्त ब्रह्माण्डो का दर्शन कराना, गोवत्स तथा गोप-बालको को ब्रह्ममय बना देना कृष्ण का स्वयं उन रूपो में प्रस्तुत होना, गोपिकाओ को अनेक रूपो मे एक साथ एक ही समय में दिखाई देना, रासक्रीड़ा करते हुए उसी समय नारद मुनि को सोलह हजार एक सौ आठ अपनी प्रियाओं के महलो मे दर्शन देना, अपने आजन्म शत्रु कंस को प्रकृति के प्रत्येक परमाणु मे दिखाई देना, द्वारका नगरी में रहते हुए कौरव सभा में द्रौपदी का चीर-हरण होते देख उनकी मान-रक्षा करना, धृतराष्ट्र तथा अर्जुन को विश्वरूप का दर्शन देना, नारद ऋषि को गोलोक मे राधा-समेत दर्शन देना इत्यादि असंख्य अमानवीय घटनाओ के आधार पर हमें विदित होता है कि श्रीकृष्ण परमात्मा प्रकृति के प्रत्येक परमाणु में स्वयं प्रकाशमान हैं; अत. उनका कृष्णावतार अन्य अवतारो की अपेक्षा अधिक परिपूर्ण है।

कृष्णावतार तत्व का परम रहस्य यह है कि कृष्ण अहंकार एवं ममता, सुख-दु:ख आदि द्वन्द्वों से परे विशुद्ध चैतन्य स्वरूप थे। यही कारण है कि आपने मामा, फुफेरा भाई, भानजा यहाँ तक कि अपने पुत्रों को मरते देखकर भी विचलित हुए बिना विश्वरूपी रंगमंच पर जगन्नाटक सूत्रधारी हो अपने पात्रो

का रसानुकूल अभिनय करते---प्रेक्षकों की अनुभूतियों से तटस्थ रह कर समस्त प्रकार के मनोविकारों से निर्लिप्त हो, आद्यन्त एक आलोकमय दीपक की भाँति आनन्दमय हो, साक्षी मात्र रहे. इसी से स्पष्ट हो जाता है कि श्रीकृष्ण परमात्मा हैं।

कृष्णोपनिषद में श्रीकृष्ण के अवतार का रहस्य बताया गया है। रामावतार में सर्वांग सुन्दर रामचन्द्रजी के असाधारण सौन्दर्य के दर्शन कर वनवासी मुनि मोहित हुए। उनकी प्रार्थना स्वीकार करके श्री महाविष्णु ने कृष्णावतार लिया। सब मुनि गोपिकाएँ हुए। मुक्तिकाता यशोदा है, परमानद नद है, सत्य अक्रूर है, दम उद्धव, काली कस, द्वेष चाणूर, मत्सर मुष्टिक तथा दर्प कुवलय पीड़ हुए।

कृष्ण ने सर्वज्ञ की भाँति व्यवहार किया है। शोक-मोह, निन्दा-स्तुति, मान-अपमान इत्यादि द्वन्द्वों से अतीत रहकर सिद्धावस्था को प्राप्त महायोगी-जैसे जीवन-रंगमंच पर अभिनय किया है। इस प्रकार अपनी दिव्यता का परिचय ही नही दिया अपितु भगवद्गीता-जैसे ज्ञान-भण्डार को अर्जुन के माध्यम से जगत को प्रदान किया। समस्त उपनिषदों का सार भगवद्गीता है। गीता के स्थितप्रज्ञ सम्बन्धी सभी लक्षण, गुणातीत स्थिति, सिद्धावस्था को प्राप्त योगीश्वर के लक्षण, कर्म, ज्ञान आदि के विधानों को हम कृष्ण में देख सकते है; इसलिए कृष्ण चरित सर्वाधिक महिमासम्पन्न है।

कृष्ण चरित तेलुगु वाङ्मय में प्रधानतः तीन रूपों में उपलब्ध होता है: १ काव्य, २. यक्षगान और ३. लोकगीत। इनके अलावा गद्य की विविध विधाओं में भी कृष्ण चरित विभिन्न रूपों में वर्णित हैं।

उपलब्ध साहित्य में तेलुगु का प्रथम काव्य नन्नयभट्ट द्वारा विरचित 'महाभारत' है। आदि कवि नन्नय ने 'महाभारत' को कृष्णद्वैपायन के उद्यान में प्रादुर्भूत पारिजात की संज्ञा दी है—

"असंख्य कथारूपी शाखाओं से शोभित वेदार्थरूपी निर्मल छाया से पूर्ण, पुरुषार्थरूपी पुष्प-समूह से शोभायमान, कृष्ण और अर्जुन-जैसे उत्तम पुरुषों के गुणों की प्रस्तुति करने वाले फलों से पूर्ण, व्यासरूपी उद्यान में प्रादुर्भूत महाभारतरूपी पारिजात वृक्ष ब्राह्मणों के लिए वांछित है।"

भारतीय वाङ्मय पुरुषार्थपरक है। इस कर्मभूमि में पुरुषार्थविहीन कार्य की कोई महत्ता नहीं है। साधारण कथा से लेकर वेद और उपनिषदों तक का समस्त साहित्य पुरुषार्थ को प्रबोधित कर रहा है।

पुरुषार्थ का प्रतिपादन महाभारत का प्रधान उद्देश्य है। महाभारत का पठन, श्रवण तथा उसके आचरण यज्ञ-सदृश्य हैं। महाभारत के अन्तर्गत भगवद्गीता स्वय इस बात की घोषणा कर रही है कि समस्त यज्ञों में ज्ञान-यज्ञ ही श्रेष्ठ है। महाभारत के नायक लोकोत्तर प्रतिभासम्पन्न है। उनमे भी कृष्ण और अर्जुन असदृश्य है। इसलिए कहा गया है—

"नारायण पाडवेय गुण महात्मयामल ज्योत्सना"

अर्थात् कृष्ण और पाण्डवों के गुणो का माहात्म्य निर्मल ज्योत्सना है।

महाभारत भारतीय वाङ्मय मे पचम वेद माना जाता है और इसके सूत्रधार भगवान कृष्ण है। उनकी लीलाएँ इस महाकाव्य मे यत्र-तत्र अभिवर्णित है। नन्नयभट्ट ने विष्णु रूप कृष्ण को सृष्टि, स्थिति एवं लय का कारणभूत बताते हुए उनकी महिमा का गान किया है।

"हे कृष्ण, तुम पूज्य हो, पुराण पुरुष हो, ईश्वर हो, अप्रमेय हो और चर तथा अचर (चेतन और जड़) तुम्हारे ही भीतर जन्म धारण करते है, बढ़ते है और लय हो जाते है।" (वनपर्व अ० ७, प० १२६)

सभा पर्व मे द्रौपदी के चीर-हरण-प्रसंग मे नन्नय ने कृष्ण को जगत्वन्द्य सिद्ध किया है। करुणा-रस से ओतप्रोत यह घटना अत्यन्त हृदयस्पर्शी बन पडी है। द्रौपदी के पातिव्रत्य के तेज की महिमा विस्पष्ट रूप में प्रतिपादित हुई है।

नन्नय भट्ट ने तेलुगु महाभारत के आदिपर्व एव सभापर्वों की रचना और वनपर्व की रचना करते समय उनका निधन हो गया। वनपर्व का शेषांश एर्राप्रेगड़ा ने पूरा किया तो शेष १५ पर्वो की रचना महाकवि तिक्कना ने की है। तिक्कना महाकवि ही नही अपितु महामन्त्री भी थे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी राजनीति की कुशलता का परिचय प्रसंगवश सर्वत्र दिया है। मुख्यतः कृष्ण जब दूत बनकर कौरव की सभा मे जाते है, वहाँ जो दूत-कार्य सम्पन्न है, उनका वाक्चातुर्य तिक्कना की मेधा का परिचय कराता है।

महाकवि तिक्कना ने कृष्ण को केवल राक्षसों के संहारक के रूप मे ही चित्रित न कर उन्हें सारथी, सलाहकार, सखा, राजदूत, हितैषी, विश्वव्यापी, परमात्मा इत्यादि विविध रूपों मे चित्रित किया है।

कृष्ण ने कंस, बक, बकासुर, नरकासुर, मुरासुर, शिशुपाल, चाणूर, शकटासुर इत्यादि का वध करके अपने अवतार का कार्य सम्पन्न किया और धर्म की स्थापना की। इन घटनाओं का मनोहर चित्र तेलुगु वाङ्मय में पाया जाता है। लेकिन इनमे भी अधिक मर्मस्पर्शी प्रसंग जो तेलुगु मे वर्णित है और

जिनके चित्रण में तिकन्ना ने अपनी प्रतिभा का खुलकर परिचय दिया है, वे काव्य गरिमा से ओतप्रोत हैं।

पाडवों का अज्ञातवास समाप्त हो गया है। वासुदेव पाडवों को देखने की अभिलाषा से उपप्लाव्यपुर मे पधार रहे है। बलराम सात्यकी समेत सुभद्रा और अभिमन्यु को भी साथ लिये उचित रथों पर आरूढ़ हो प्रयाण कर रहे है। उनके साथ कृतवर्मा, प्रद्युम्न, साम्बु, खमक, युयुध, अक्रूर, पाडवों के साथी भी चल रहे है। इस घटना का वर्णन पाठको को पुलकित किये देता है।

उत्तरा और अभिमन्यु के विवाहानंतर युधिष्ठिर तथा अन्य पाडव, राजा विराट, राजा पांचाल, श्रीकृष्ण, बलराम इत्यादि राजा विराट के दरबार मे उचित आसनो पर विराजमान है। उस समय पाडवों ने अनेक प्रकार से सोच-विचार कर कौरवो के साथ समझौता करने के लिए कृष्ण भगवान से निवेदन किया। युधिष्ठिर ने यहाँ तक कहा कि यदि कौरव आधा राज्य देने के लिए तैयार न हों तो कम से कम पाँच गाँव पर्याप्त हैं। भीम ने इसका विरोध किया। परन्तु द्रौपदी सन्धि करने के लिए तैयार ही न थी। कृष्ण भगवान भी अपनी बहन सुभद्रा से बढ़कर द्रौपदी से अधिक प्रेम करते थे और उसका आदर करते थे। महाकवि तिकन्ना ने द्रौपदी के चरित्र को अत्यन्त उज्ज्वल बना दिया है—द्रौपदी का जन्म वरदान से हुआ था। भरत वंश में उसका विवाह हुआ। पांडुराज की बहू बनी। जगवंद्य पतियों को पाया। नीतिविक्रम पुत्रों को जन्म दिया। परन्तु इतना कुछ होते हुए भी उन्हें कष्टों का सामना करना पड़ा। उत्तम क्षत्रिय-वंश में जन्म धारण करके महा-पराक्रमशाली पतियों के होते हुए भी पदन्याय पर द्रौपदी को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। फिर भी वह अपने उत्तम गुणों धर्म से विचलित नहीं हुई। एक आदर्श भारतीय नारी के रूप में [illegible] विख्यात हुई है। युधिष्ठिर को भी कठिन अवसरों पर सलाह देकर [illegible] करने वाली है। [illegible] पड़ने पर उन्हें [illegible] में भी भय नहीं लगता। [illegible] को भी अपने [illegible] पर [illegible] सकती है। अनेक दिशाओं में समान [illegible] के कारण वह [illegible] अर्जुन के प्रति पक्षपातिनी है।

[illegible]

पुरुषार्थ का प्रतिपादन महाभारत का प्रधान उद्देश्य है। महाभारत का पठन, श्रवण तथा उसके आचरण यज्ञ-सदृश्य हैं। महाभारत के अन्तर्गत भगवद्गीता स्वय इस बात की घोषणा कर रही है कि समस्त यज्ञों मे ज्ञान-यज्ञ ही श्रेष्ठ है। महाभारत के नायक लोकोत्तर प्रतिभासम्पन्न हैं। उनमें भी कृष्ण और अर्जुन असदृश्य हैं। इसलिए कहा गया है—

"नारायण पाडवेय गुण महात्मयामल ज्योत्सना"

अर्थात् कृष्ण और पाण्डवों के गुणो का माहात्म्य निर्मल ज्योत्सना है।

महाभारत भारतीय वाङ्मय मे पचम वेद माना जाता है और इसके सूत्रधार भगवान कृष्ण है। उनकी लीलाएँ इस महाकाव्य मे यत्र-तत्र अभिवर्णित हैं। नन्नयभट्ट ने विष्णु रूप कृष्ण को सृष्टि, स्थिति एवं लय का कारणभूत बताते हुए उनकी महिमा का गान किया है।

"हे कृष्ण, तुम पूज्य हो, पुराण पुरुष हो, ईश्वर हो, अप्रमेय हो और चर तथा अचर (चेतन और जड़) तुम्हारे ही भीतर जन्म धारण करते है, बढ़ते है और लय हो जाते है।" (वनपर्व अ० ७, प० १२६)

सभा पर्व में द्रौपदी के चीर-हरण-प्रसंग मे नन्नय ने कृष्ण को जगत्वन्द्य सिद्ध किया है। करुणा-रस से ओतप्रोत यह घटना अत्यन्त हृदयस्पर्शी बन पड़ी है। द्रौपदी के पातिव्रत्य के तेज की महिमा विस्पष्ट रूप मे प्रतिपादित हुई है।

नन्नय भट्ट ने तेलुगु महाभारत के आदिपर्व एव सभापर्वो की रचना और वनपर्व की रचना करते समय उनका निधन हो गया। वनपर्व का शेषाश एर्राप्रगेड़ा ने पूरा किया तो शेप १५ पर्वो की रचना महाकवि तिकन्ना ने की है। तिकन्ना महाकवि ही नही अपितु महामन्त्री भी थे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी राजनीति की कुशलता का परिचय प्रसंगवश सर्वत्र दिया है। मुख्यत. कृष्ण जब दूत बनकर कौरव की सभा मे जाते है, वहाँ जो दूत-कार्य सम्पन्न है, उनका वाक्चातुर्य तिकन्ना की मेधा का परिचय कराता है।

महाकवि तिकन्ना ने कृष्ण को केवल राक्षसो के संहारक के रूप मे ही चित्रित न कर उन्हें सारथी, सलाहकार, सखा, राजदूत, हितैषी, विश्वव्यापी, परमात्मा इत्यादि विविध रूपों मे चित्रित किया है।

कृष्ण ने कंस, बक, बकासुर, नरकासुर, मुरासुर, शिशुपाल, चाणूर, शकटासुर इत्यादि का वध करके अपने अवतार का कार्य सम्पन्न किया और धर्म की स्थापना की। इन घटनाओं का मनोहर चित्र तेलुगु वाङ्मय मे पाया जाता है। लेकिन इनमे भी अधिक मर्मस्पर्शी प्रसंग जो तेलुगु मे वर्णित है और

जिनके चित्रण मे तिकन्ना ने अपनी प्रतिभा का खुलकर परिचय दिया है, वे काव्य गरिमा से ओतप्रोत है ।

पाडवों का अज्ञातवास समाप्त हो गया है । वासुदेव पाडवो को देखने की अभिलाषा से उपप्लाव्यपुर मे पधार रहे है । बलराम सात्यकी समेत सुभद्रा और अभिमन्यु को भी साथ लिये उचित रथों पर आरूढ हो प्रयाण कर रहे हैं। उनके साथ कृतवर्मा, प्रद्युम्न, साम्बु, खमक, युयुध, अक्रूर, पाडवों के साथी भी चल रहे है । इस घटना का वर्णन पाठको को पुलकित किये देता है ।

उत्तरा और अभिमन्यु के विवाहानंतर युधिष्ठिर तथा अन्य पाडव, राजा विराट, राजा पाचाल, श्रीकृष्ण, बलराम इत्यादि राजा विराट के दरबार मे उचित आसनों पर विराजमान है। उस समय पाडवों ने अनेक प्रकार से सोच-विचार कर कौरवों के साथ समझौता करने के लिए कृष्ण भगवान से निवेदन किया । युधिष्ठिर ने यहाँ तक कहा कि यदि कौरव आधा राज्य देने के लिए तैयार न हो तो कम से कम पाँच गाँव पर्याप्त है । भीम ने इसका विरोध किया । परन्तु द्रौपदी सन्धि करने के लिए तैयार ही न थी । कृष्ण भगवान भी अपनी बहन सुभद्रा से बढ़कर द्रौपदी से अधिक प्रेम करते थे और उसका आदर करते थे । महाकवि तिकन्ना ने द्रौपदी के चरित्र को अत्यन्त उज्ज्वल बना दिया है—द्रौपदी का जन्म वरदान से हुआ था । भरत वश मे उसका विवाह हुआ । पांडुराज की बहू बनी । जनवेद्य पतियों को पाया। नीतिविक्रम पुत्रों को जन्म दिया । परन्तु इतना कुछ होते हुए भी उन्हे कष्टो का सामना करना पड़ा । उत्तम क्षत्रिय-वंश में जन्म धारण करके महा-पराक्रमशाली पतियों के होते हुए भी पग-पग पर द्रौपदी को कठिनाइयो का सामना करना पड़ा । फिर भी वह अपने उत्तम गृहणी धर्म से विचलित नही हुई । एक आदर्श भारतीय नारी के रूप मे लोक विख्यात हुई है । युधिष्ठिर को भी कठिन अवसरों पर सलाह देकर चकित करने वाली है । जरूरत पड़ने पर उन्हे डाँटने मे भी भय नही खाती । भीमसेन-जैसे बाहुपराक्रमी को भी अपने संकेत पर चला लेने की क्षमता रखती है । अनेक विषयो मे समान संस्कारों के होने के कारण वह स्वभावत. अर्जुन के प्रति पक्षपातिनी है ।

द्रौपदी कौरवों से प्रतिकार की कामना करती थी । उनसे संधि करना कदापि उन्हे पसन्द नही था । दूतकार्य पर जाने वाले कृष्ण को सम्बोधित करके द्रौपदी ने जो वाक्य कहे वे पाठकों के कानों में सदा गूँजते रह जायेगे। द्रौपदी के मन में इस बात का डर था कि कही गोविन्द सन्धि न कर दे । इस भय से अपने श्यामल केशों को फैलाकर हृदय से उमड़ने वाले रोष एवं

विषादों को दवाने मे असमर्थ हो द्रौपदी ने कृष्ण भगवान से रोषपूर्ण वाणी मे निवेदन किया—

"हे अच्युत ! ये केश दु.शासन की उँगलियो से खिचकर आधे कट गये, बाकी सब कौरवो ने सभा मे जो अपमानजनक बाते कही उनसे अदृश्य हो गये हं; अत दूतकार्य करते समय इनका ख्याल रखियगा ।"

इसके उपरात द्रौपदी कृष्ण को परमात्मा मानते हुए सविनय निवेदन करती है—"हे अच्युत ! मैं आपकी भगिनी हूँ । आपके प्रति भक्ति रखती हूँ । मेरे पति तेजोवान है, फिर भी दुष्टो के द्वारा पग-पग पर हमारा अपमान होता है । आपने दुष्टो का संहार करने व शिष्ट जनो की रक्षा करने हेतु अवतार लिया हे, अत जगत की रक्षा कीजिए ।"

उद्योग पर्व मे कृष्ण जब दूत बनकर कौरव-सभा मे पहुँचते है, तब धृतराष्ट्र से पाडवो का निर्णय सरस एवं संदर्भानुसार बड़ी कुशलता के साथ सुनाते है और कहते हैं—ये अन्तिम वाक्य है .

"पांडव शात वीर हे, आपके चरणो की सेवा करने के इच्छुक है । यदि आप राज्य देने के इच्छुक नही है, अर्थात् यह अप्रिय हो, तो वे लोग युद्ध के लिए भी सन्नद्ध हैं । इन दोनों मार्गों मे से आपको कौन-सा ग्राह्य है, निश्चित कीजिए ।"

परन्तु उनके सारे प्रयत्न विफल हुए । उलटे दुर्योधन ने अज्ञान के वशीभूत हो कृष्ण भगवान को बन्दी बनाने का असफल प्रयत्न किया । यह षड्यंत्र दुर्योधन, दु.शासन, शकुनि तथा कर्ण नामक दुष्ट चतुष्टय ने रचा था । इस षड्यंत्र को विफल सिद्ध करते हुए भगवान कृष्ण ने कौरव-सभा मे अपने विश्वरूप का दर्शन कराया ।

महाभारत मे कृष्ण का पात्र सूत्रधार का है। द्रौपदी के मान-सरक्षण, सैंधव-वध तथा विश्वरूप का दर्शन कराने वाले सन्दर्भों मे उन्होने अपनी दिव्यता का उद्घाटन किया है । कथावस्तु के अध्ययन से हमें विदित होता है कि कृष्ण पाडव के पक्षपाती हैं, परन्तु उन्हे धर्म-पक्षपाती कहना अधिक समीचीन होगा । यदि वे केवल पांडव-पक्षपाती होते तो क्या अपने भानजे पराक्रमी अभिमन्यु का वध होने देते ? कदापि नही ।

स्थितप्रज्ञ कृष्ण अहं तथा ममता, स्व एवं पर भेदो से अतीत रहकर साक्षीभूत हो प्रत्येक प्राणी को कर्म-फल भोगने देते रहे । वे तत्वकोविद थे ।

उनके राजनैतिक कौशल का तिकन्ना ने सजीव चित्र उपस्थित किया है। व्यास महर्षि के आदर्श को तिकन्ना ने भी यत्र-तत्र प्रतिविम्बित किया है—

"भगवान वासुदेवश्च कीर्त्यतत्रे सनातन"

अर्थात श्रीकृष्ण के संकीर्तन से महाभारत पूजनीय हो गया है।

एर्राप्रगेडा ने कृष्ण के वंश का समग्र परिचय कराते हुए 'हरिवंश' नाम से एक अद्भुत प्रबन्ध-काव्य का प्रणयन किया और 'प्रबन्ध परमेश्वर' नाम से विख्यात भी हुए।

एर्राप्रगेडा के पश्चात् कृष्ण चरित को काव्य रूप देने वालों में असमान प्रतिभाशाली 'शाब्दन रसपोषण संविधान चक्रवर्ती' उपाधि से विभूषित नाचन सोमनाथ का नाम आदर के साथ लिया जा सकता है। इन्होंने उत्तर 'हरिवंश' नामक काव्य का सृजन कर 'नवीन गुण सनाथ' की ख्याति प्राप्त की।

शोभनाथ की कविता में एक नाद वाले पद पर्याप्त संख्या मे पाये जाते है, जो शैली मे रमणीयता ला देते है। अविदित वेद्यांतर आनन्द प्रदान करने वाली शक्ति उनकी कविता मे भरपूर है।

कृष्ण-काव्यों की परम्परा मे भक्त शिरोमणि बम्मेर पोतना द्वारा विरचित 'आन्ध्र महाभागवत' का अपना विशिष्ट स्थान है। भागवत पुराण से तेलुगु मे एक प्रौढ़ महाकाव्य का रूप प्रस्तुत हुआ है। महाभारत के पठन के पश्चात् पोतना प्रणीत महाभागवत विशेष जनप्रिय है।

पोतना उच्चकोटि के महाकवि ही नही, अपितु महान भक्त भी थे। उनका काव्य जहाँ महाकाव्यो के लक्षणो से समन्वित है, वहाँ उसमे भक्ति की अन्तरधारा निश्चल, शांत एवं गंभीर ध्वनि के साथ प्रवाहित भी है। भागवत के सृजन का कारण महाकवि ने भव-बंधनों से मुक्ति पाना बताया है—

"मैं भागवत का प्रणयन कर रहा हूँ। मुझसे साक्षात् रामचन्द्रजी बुलवा रहे है। यदि मैं भागवत की रचना करूँ तो मुझे इस भवसागर से मुक्ति मिलेगी। ऐसी हालत मे भला मैं अन्य गाथा का सृजन क्यों करूँ।"

पोतना ने भागवत की कल्पना कल्पवृक्ष से की है। इसका जो रूपक बाँधा है वह श्लेप-प्रधान है। यहाँ तक कि महाकवि ने रूपकालंकार में भागवत को ही कल्पवृक्ष के रूप में प्रतिपादित किया है। कल्पवृक्ष के लक्षणों का भागवत मे निरूपण किया है।

भागवत के दशम स्कंध मे पोतना ने कृष्ण के जन्म से लेकर उनकी समस्त लीलाओं का हृदयग्राही चित्र प्रस्तुत किया है। वैसे संस्कृत-भागवत में बीस

हजार श्लोक हैं। परन्तु पोतना का भागवत तीस हजार पद्यों से विभूषित है। उनमें दशम स्कंध में केवल ३१३१ छन्द हैं। यह स्कन्ध दो भागों में विभाजित है—पूर्वार्द्ध में १७८० छन्द है तो उत्तरार्द्ध में १३४१। भगवान् कृष्ण की लीलाओं का उद्घाटन पोतना ने भक्त के आवेश में तथा तन्मयावस्था में किया है। अत ये लीलाएँ काव्यत्व की गरिमाओं से पूर्ण होते हुए भी भक्तिपरक हैं; इसलिए सरल हृदय रखने वाले पाठक तथा श्रद्धा-भक्ति रखने वाले भक्त भी समानरूप से इस काव्य का रसास्वादन करते हैं।

माखन-चोरी का प्रसग भी पोतना ने बड़ा ही मधुर एव सरस बनाया है। रास-लीला के प्रसग में पोतना ने गोपिकाओं की हृदय-विह्वलता तथा कृष्ण के वेणु-नाद के प्रति जो अनुरक्ति दर्शायी है वह अन्यत्र दुर्लभ है। मुरली नाद पर मुग्ध हो कृष्ण का अन्वेषण करते गोपिकाएँ वन में आ गयी है, वहाँ पर कृष्ण को न पा कर कहती हैं—"हे *हतविधि ! हमारे बन्धु-पति, भ्रात, पुत्र* सबों ने हमें आदेश दिया था कि रात्रि के समय गृह-द्वार को लाँघकर बाहर न जावें, परन्तु हमने तुम्हारे मृदुगीतों की ध्वनि के कानों में पड़ते ही विकल हो उन मर्यादाओं का अतिक्रमण किया है। हे नाथ ! हम तुम पर मोहित हो यहाँ आ गये है, किन्तु तुम निर्दयी बनकर कहाँ चले गये हो ?" कृष्ण के दर्शन कर *गोपिकाएँ तन्मय हो गयीं। अनन्त विभु कृष्ण* ने चित्र-विचित्र गतियों के साथ गोपिकाओं के समेत लीला की।

गोपिकाओं की चित्त-वृत्तियों, सरस-संलापों तथा अनुनय-विनय सम्बन्धी वर्णन अद्वितीय बन पड़े हैं। लता-गृहों में गोपिकाएँ कृष्ण का अन्वेषण करते पहुँच जाती हैं और मल्लिका पुष्पों से पूछती है—

हे मल्लिकाओ ! श्याम गात्रवाले कमल नयनवाले, कृपारस की वृष्टि करनेवाले, मयूरपुच्छ धारण करनेवाले, विमल हास से पूर्ण मुखमण्डल वाले, नारियों की मान-सम्पदा का हरण किये, आकर यहाँ कहाँ छिप गये है, क्या तुम लोगों की झाड़ियों में कहीं छिपे तो नहीं हैं;'

पोतनाकृत भागवत में अत्यधिक रसपूर्ण प्रसंग 'रुक्मिणी परिणय' है। आन्ध्र के विवाह का सजीव चित्र इस घटना में अंकित हुआ है। रुक्मिणी की बाल्य-क्रीड़ाएँ, कृष्ण के प्रति उसके मन में प्रेमोदय का होना, पुरोहित द्वारा कृष्ण के पास सन्देशा भेजना तथा रुक्मिणी-हरण बहुत ही सरसतम बन पड़े हैं।

विजयनगर साम्राज्य के अधिपति कृष्णदेव के दरबार में अष्ट दिग्गज नामक आठ महाकवि थे। इनका समय तेलुगु साहित्य का स्वर्ण युग माना

जाता है। इस युग में अनेक प्रबन्ध एवं महाकाव्यो का प्रणयन हुआ। उन काव्यों में भी कृष्ण चरित पर्याप्त मात्रा में वर्णित है। स्वयं कृष्णदेवराय ने भी भगवान कृष्ण की स्तुति की है। परन्तु इस युग के दो-तीन काव्यों में कृष्ण का मनोहारी चित्र प्रस्तुत हुआ है। उनमें श्री नन्दि तिम्मना द्वारा विरचित 'पारिजातापहरण' तथा पिंगलि सूरना द्वारा प्रणीत 'कलापूर्णोदयम्' एवं 'प्रभावती प्रद्युम्नमु' उल्लेखनीय है।

'पारिजातापहरण' काव्य का नायक श्रीकृष्ण और नायिका सत्यभामा है। आलम्बन एवं उद्दीपन के विभागों का जैसा रमणीय सम्बन्ध इसमे प्रतिपादित है, वह श्लाघनीय है।

प्रथम आश्वास में नारद का स्वर्ग से पारिजात पुष्प लाकर उसकी महिमा का गान करके उसे श्रीकृष्ण को समर्पित करना—उस समय कृष्ण सत्यभामा का स्मरण करके पास में स्थित रुक्मिणी को दुखी न बनाने के विचार से उसको देते हैं। सत्यभामा की एक सखी जो वहाँ पर उपस्थित थी, वह तत्काल ही सारा वृत्तान्त नमक-मिर्च मिलाकर सत्यभामा को सुना देती है। परिणाम-स्वरूप सत्यभामा कुपित हो कोप-भवन मे प्रवेश करती है। सत्या के मन्दिर मे प्रवेश कर कृष्ण उसे समझाने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु वह कृष्ण के मस्तक पर पाद-ताडन कर अपने विरस का परिचय देती है। इस सन्निवेश का अद्भुत चित्रण बन पडा है। पात्रो के मनोभाव उन-उन परिस्थितियों मे कैसा परिभ्रमण करते हैं, उनका परिशीलन कर विवेचन करना महाकवि तिमन्ना के लिए ही शक्य था।

आन्ध्र में एक दन्तकथा प्रचलित है कि विजयनगर के सम्राट कृष्णदेवराय के जीवन मे भी यह घटना घटित हुई थी। राज-परिवार मे यह प्रथा है कि राजा के आगमन के पूर्व शयनकक्ष में रानियाँ पैताने की दिशा मे सर रखे लेटी रहती हैं और राजा के आने के पश्चात् ही उनका स्वागत कर सिरहाने की दिशा में लेटती है। एक बार कृष्णदेवराय की पट्टमहिषी चिन्नादेवी राजा के आने के पहले भूल से सो गयी थी। राजा ने उसे जगाया नही। उन्हें इस बात पर क्रोध आया कि उनके आने के पूर्व ही रानी ने सोने की धृष्टता की है और उसे जगाना अपने राजसी ठाट के विरुद्ध माना। यथा प्रकार सो गये। लेकिन गाढ़-निद्रा में जब चिन्नम्मा देवी ने करवट बदली तो उसका पैर सम्राट के सर पर जा लगा। सम्राट चौंककर जाग उठे। एक औरत का पदाघात सम्राट के लिए असह्य था। इसलिए उस दिन से सम्राट ने चिन्नादेवी के अन्त पुर में जाना बन्द कर दिया।

चिन्नादेवी को इसका कारण ज्ञात न था। वह मन ही मन दुखी होने

लगी । उसकी व्यथा बढ़ती गयी । आखिर उसने कल्पना की कि यही कारण होगा । सम्राट से क्षमा माँगना चाहती थी । अपनी करनी पर पछता रही थी । परन्तु सम्राट से क्षमा माँगने का अवसर भी मिले तो । आखिर विवश हो महाकवि तिम्मन्ना से सारी कहानी सुनायी और उस विपत्ति से बचाने की प्रार्थना की । महाकवि चिन्नादेवी के साथ दहेज मे भेजे गये थे; अतः चिन्नादेवी के प्रति बडी सहानुभूति और श्रद्धा रखते थे । उन्होंने दिमाग टटोला तो अन्त मे उन्हें श्रीकृष्ण के जीवन मे भी तत्समान घटना झलक उठी । फिर क्या था, चिन्नादेवी के नायक भी तो कृष्णदेव राय ही तो थे । उस घटना को कथावस्तु बनाकर एक प्रौढ प्रबन्धकाव्य का रूप दिया । कहा जाता है कि इस काव्य के श्रवण के पश्चात कृष्णदेवराय ने चिन्नादेवी के शयन-मन्दिर मे जाकर बडी उदारता के साथ क्षमा माँगी थी ।

कृष्णदेवराय के समय मे पिंगली सूरना ने तीन प्रबन्धकाव्यों की सृष्टि की । इन तीनो काव्यो में कृष्ण चरित वर्णित है । उनका प्रथमकाव्य है—'कलापूर्णोदय' । आन्ध्र की यह महिमामयी भूमि पर विकसित तेलुगु काव्योद्यान का एक अक्षय सुरभित काव्य-कुसुम है । वस्तु-कल्पना तथा विभिन्न घटनाओ की क्रम-बद्धता की दृष्टि मे यह अद्वितीय है । सूरना ने अपनी उर्वर प्रतिभा एवं कल्पना-शक्ति के बल पर कल्पित कथा की भित्ति पर सम्पूर्ण काव्य-सौध का निर्माण किया है ।

महाकवि कालिदास के सम्बन्ध मे एक समीक्षक ने बताया है कि उन्होंने स्वर्ग एवं मर्त्य लोको को एक गाँठ मे बाँध दिया है यह उक्ति कलापूर्णोदय के प्रति सर्वथा ठीक बैठती है । सूरना ने मर्त्य, स्वर्ग एव सत्य लोको को एक ही गाँठ मे बाँध दिया है । शृङ्गार रस के वर्णन मे सूरना ने अत्यंत आत्म-निग्रह एवं सभ्यता का परिचय दिया है। इसके काव्य मे स्वर्ग लोक के रंभा नलकूबर, मर्त्यलोक के सुगात्री-शालीन, कलभाषिणी, मणिकंधर तथा मधुर लालसा एवं कलापूर्ण की जोडियाँ तथा सत्यलोक की चतुर्मुख सरस्वती की जोडी भी अभिवर्णित है । प्रेयसी-प्रिय के सरस संभाषण तथा कोमल चित्त-वृत्तियो के पोषण मे सूरना ने अपनी निपुणता का अच्छा प्रदर्शन किया है । अनुरक्ति एव भक्ति के लिए समान रूप मे उद्दीपन करने वाली कला संगीत है, इस सत्य का परिचय इस काव्य के द्वारा भलीभाँति हमे मिल जाता है । इसीलिए इस ग्रन्थ का नामकरण 'कलापूर्णोदय' सर्वथा सार्थक हुआ है ।

कृष्णदेवराय के पश्चात् दक्षिण आन्ध्र वाङ्मय युग मे कृष्ण चरित्र संबंधी अनेक काव्य-ग्रन्थ रचे गये । परन्तु उनमे यक्षगान एवं पद-साहित्य की प्रचुरता



१३

भारतीय भाषाओं में बाल साहित्य

बाल साहित्य पर विचार करते समय हमें पॉल हजार्ड की अमर कृति 'बुक्स चिल्ड्रेन एण्ड मैन' के कतिपय वाक्य स्मरण करने योग्य हैं। उसमें लेखक बाल साहित्य के सम्बन्ध में अपना निश्चित मत यों प्रकट करते हैं जो सर्वथा निर्विवाद सत्य है। वे कहते हैं—

"मैं ऐसी पुस्तकों को पसन्द करता हूँ जो साहित्य की आत्मा के प्रति वफादार होती है, जो बच्चों के लिए सहज और प्रत्यक्ष ज्ञान का द्वार खोल देती हैं, जो ऐसा सरल सौन्दर्य प्रस्तुत करती है जिसे बच्चा तुरन्त ग्रहण कर सकता है, जो बच्चे के हृदय में ऐसी चेतना और ऐसा स्पन्दन भर देती है जो बच्चों के जीवन की स्थायी स्मृति बन जाती है जिनमें बढ़िया चित्र होते हैं—ऐसे चित्र जिन्हें बच्चे पसन्द करें, जिन्हें समस्त विश्व के कला-वैभव से चुना गया हो।

मुझे ऐसी पुस्तकें पसन्द हैं जो बच्चों को महान् मानवीय संवेदनाओं की अनुभूति कराती हैं, जो ज्ञानवर्धक और नैतिक गुणों से युक्त होती हैं।"

इस कसौटी पर रचित पुस्तकें हमें भारतीय भाषाओं में बहुत कम ही उपलब्ध होती हैं।

हमारे देश में आज तक बाल साहित्य उपेक्षित रहा है। पाश्चात्य देशों में बाल साहित्य के सृजन, प्रकाशन, रचना-प्रक्रिया, स्तर, उपयोगिता, मनोवैज्ञानिकता इत्यादि विभिन्न पहलुओं पर जो चिन्तन, मनन और जो प्रयोग हुए वे भारतीय भाषाओं के संदर्भ में नगण्य हैं। विदेशों में जहाँ मूर्धन्य साहित्यकारों ने इस विधा को साहित्य का एक अभिन्न अंग मानकर उसके विकास में स्पृहनीय योगदान दिया, वहाँ पर भारतीय भाषाओं के बाल साहित्य के उन्नयन में सराहनीय प्रयत्न नहीं हुआ है। विदेशों में बच्चों को जो शिक्षा दी जाती है वह पद्धति अपूर्व है। वहाँ पर बच्चों के पालन-पोषण में विशेष

लेखन में बच्चों की मानसिकता को जाने बिना जो साहित्य प्रस्तुत किया जाता है, उसके द्वारा हमे वांछित फल प्राप्त नही होते।

आज के अधिकाश लेखक बाल साहित्य की मात्र आलोचना करना और अन्य पत्रिकाओं पर व्यंग्य करना, अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान बैठे है और यह सोचकर संतोष की सांस लेते है मानो उन्होने बहुत बडा कार्य संपन्न किया है। किन्तु रचनात्मक दृष्टि से इस दिशा मे उनका योगदान नही के बराबर होता है। वे यह नही बताते कि श्रेष्ठ बाल साहित्य के लक्षण क्या हैं और इस दिशा मे हमारा कर्त्तव्य क्या है ?

यह बात सभी लोग स्वीकार करेंगे कि बाल साहित्य रोचक, सरल, सरस और उपादेय हो। पर इसके साथ ही उसकी भाषा सरल और बोधगम्य हो। आज के बालक का बौद्धिक स्तर बडा ही ऊँचा होता जा रहा है। आयु-वर्ग की दृष्टि से भी साहित्य भिन्न हो सकता है। प्रारम्भ में हम बच्चों को ऊँचे बौद्धिक स्तर का साहित्य दें तो वे पूर्ण रूप से हृदयंगम कर उसका लाभ उठा नही पायेंगे, इसीलिए प्रारम्भिक बाल साहित्य में कुतूहल और जिज्ञासा की पूर्ति करने वाली सामग्री भरपूर हो और साथ ही वह साहित्य उनका मनोरंजन करने वाला हो और ज्ञान-वर्द्धक भी हो। जैसे-जैसे उनका मानसिक विकास होता है, उसके अनुरूप साहित्य देना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है।

हम बालकों से क्या अपेक्षा करते है ? बच्चों का निर्माण हम किस रूप मे करना चाहते हैं आदि मूलभूत प्रश्न हैं। इन प्रश्नो का समाधान हम बडी आसानी से ढूँढ सकते है। विश्व की श्रेष्ठ बाल साहित्य की जिन कृतियो ने बच्चों को विशेष रूप से आकृष्ट किया है, उनके मूल में कौन से तत्व प्रतिपादित है, मेरे मत में प्रारम्भ मे उन्हे ऐसा साहित्य देना चाहिए जिससे बच्चो के भीतर साहित्य पढने की अभिरुचि जागृत हो। बच्चों को साहित्य के प्रति उन्मुख करने के पश्चात् हम उन्हें क्रमश. विविध प्रकार की सामग्री दे सकते है।

आखिर हमारा लक्ष्य बच्चो को उत्तम भावी नागरिक बनाना है। इसलिए उन्हे अपने परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रति दायित्व का बोध कराने वाला साहित्य देना परमावश्यक हो जाता है। अत. हम जो साहित्य उन्हें देते हैं वह बच्चों के भीतर साहस, पराक्रम, नैतिक बल, स्वावलंबन, चरित्र-निर्माण, देश-भक्ति, सेवाभाव, आत्मरक्षा आदि गुणों का पोषण करने वाला हो। परन्तु वह साहित्य उपदेशात्मक न हो। उनमें अंधविश्वास के बजाय तार्किक बुद्धि, विवेकशीलता और दृढता पैदा करें—ये गुण नितांत आवश्यक हैं। क्योकि बच्चों की अवस्था के बढ़ने के साथ उनकी कल्पना

लेखन में बच्चों की मानसिकता को जाने बिना जो साहित्य प्रस्तुत किया जाता है, उसके द्वारा हमें वांछित फल प्राप्त नहीं होते ।

आज के अधिकांश लेखक बाल साहित्य की मात्र आलोचना करना और अन्य पत्रिकाओं पर व्यंग्य करना, अपने कर्तव्य की इतिश्री मान बैठे हैं और यह सोचकर संतोष की सांस लेते हैं मानो उन्होंने बहुत बड़ा कार्य संपन्न किया है । किन्तु रचनात्मक दृष्टि से इस दिशा में उनका योगदान नहीं के बराबर होता है । वे यह नहीं बताते कि श्रेष्ठ बाल साहित्य के लक्षण क्या हैं और इस दिशा में हमारा कर्तव्य क्या है ?

यह बात सभी लोग स्वीकार करेंगे कि बाल साहित्य रोचक, सरल, सरस और उपादेय हो । पर इसके साथ ही उसकी भाषा सरल और बोधगम्य हो । आज के बालक का बौद्धिक स्तर बड़ा ही ऊँचा होता जा रहा है । आयु-वर्ग की दृष्टि से भी साहित्य भिन्न हो सकता है । प्रारम्भ में हम बच्चों को ऊँचे बौद्धिक स्तर का साहित्य दें तो वे पूर्ण रूप से हृदयंगम कर उसका लाभ उठा नहीं पायेंगे, इसीलिए प्रारम्भिक बाल साहित्य में कुतूहल और जिज्ञासा की पूर्ति करने वाली सामग्री भरपूर हो और साथ ही वह साहित्य उनका मनोरंजन करने वाला हो और ज्ञान-वर्द्धक भी हो । जैसे-जैसे उनका मानसिक विकास होता है, उसके अनुरूप साहित्य देना हमारा कर्तव्य हो जाता है ।

हम बालकों से क्या अपेक्षा करते हैं ? बच्चों का निर्माण हम किस रूप में करना चाहते हैं आदि मूलभूत प्रश्न है । इन प्रश्नों का समाधान हम बड़ी आसानी से ढूँढ सकते हैं । विश्व की श्रेष्ठ बाल साहित्य की जिन कृतियों ने बच्चों को विशेष रूप से आकृष्ट किया है, उनके मूल में कौन से तत्व प्रतिपादित हैं, मेरे मत में प्रारम्भ में उन्हें ऐसा साहित्य देना चाहिए जिससे बच्चों के भीतर साहित्य पढ़ने की अभिरुचि जागृत हो । बच्चों को साहित्य के प्रति उन्मुख करने के पश्चात् हम उन्हें क्रमशः विविध प्रकार की सामग्री दे सकते हैं ।

आखिर हमारा लक्ष्य बच्चों को उत्तम भावी नागरिक बनाना है । इसलिए उन्हें अपने परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रति दायित्व का बोध कराने वाला साहित्य देना परमावश्यक हो जाता है । अतः हम जो साहित्य उन्हें देते हैं वह बच्चों के भीतर साहस, पराक्रम, नैतिक बल, स्वावलंबन, चरित्र-निर्माण, देश-भक्ति, सेवाभाव, आत्मरक्षा आदि गुणों का पोषण करने वाला हो । परन्तु यह साहित्य उपदेशात्मक न हो । उनमें अंधविश्वास के बजाय तार्किक बुद्धि, विवेकशीलता और दृढ़ता पैदा करें—ये गुण नितांत आवश्यक हैं । क्योंकि बच्चों की अवस्था के बढ़ने के साथ उनकी कल्पना

और भावना शक्ति भी बढती जाती है। साथ ही साथ उनमे हेतुवाद को समान्तर रूप मे जागृत करने का प्रयास होना चाहिए।

बाल साहित्य के क्षेत्र मे संसार भर मे जो लोकप्रिय ग्रन्थ है, जिन्हे बच्चों ने बहुत ही रुचि के साथ पढा, उन पुस्तको में बालको का मनोरंजन करने की असीम शक्ति के साथ अपूर्व रोचकता भी थी। विश्व की महान् कृतियों मे पंचतंत्र, गलीवर की कहानियाँ, राबिन्सन क्रूसो, ट्रेजर ऐलाण्ड, ईसफ की कथाएँ, एलिस इन द वन्डरलैण्ड आदि महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इन कृतियो के पात्र पशु-पक्षी और बच्चे हैं। ये कृतियाँ बहुत पुरानी है, फिर भी आज भी बच्चे बडी रुचि के साथ पढते है। उपर्युक्त कृतियों मे नीति, उपदेश, साहस, अनोखी सूझ-बूझ, समयस्फूर्ति तथा अन्य शाश्वत मूल्यो के गुण विद्यमान हैं। साथ ही उनमे ऐसे भी तत्व है जिनमे उन सारी बातों पर चिंतन किया हुआ है जो जीवन और जगत् से जुडी हुई है। इन कृतियो की लाखो प्रतियाँ बिक चुकी है और विश्व की तमाम भाषाओ मे इनका रूपान्तर हो चुका है। सभी भाषाओं, समाजो और देशों के बच्चो ने इन कहानियो को खूब पढा और सराहा। इन कहानियो मे परी-कथाएँ भी है।

ग्रिम ब्रदर्स की कहानियो में भूत-प्रेत आदि पात्रो के साथ जानवरो की चर्चा भी अधिक हुई है। जानवर परस्पर बात भी करते है। पर एण्डरसन की कहानियाँ इससे भिन्न है। उनमें घरेलू वातावरण का चित्र ज्यादा मिलता है। बच्चों की कल्पना और उनकी समस्याओ को उजागर करने का इन कृतियों में प्रयास हुआ है, यही कारण है कि ये कृतियाँ विश्व भर मे विशेष रूप मे लोकप्रिय हुई हैं।

विश्व-कथा-साहित्य के अध्ययन से हमे यही विदित होता है कि प्रारम्भ मे श्रेष्ठ लेखको ने बाल साहित्य की रचना करने मे संकोच का ही अनुभव किया था। स्वयं चार्लस लुडविग डाग्सन जो आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी मे गणित-शास्त्र के प्रोफेसर थे, उन्होने लुई करोल नामक उपनाम से अपनी कहानियाँ प्रकाशित की थी, जो मैकमिलन कपनी मे १८६४ मे छपी थी। कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार बाल साहित्य प्रारम्भ मे अनादृत ही रहा, यही बात भारतीय भाषाओ के संदर्भ मे भी कही जा सकती है।

भारतीय भाषाओं मे भी प्रारम्भ मे विश्व की इन महान कृतियों के अनुवाद हुए। पंचतंत्र के साथ हितोपदेश, कथा सरित्सागर, बेताल कथाएँ, विक्रमादित्य की कहानियाँ, जातक कथाएँ, अरेबियन नाइटस, सोहराब और

रुस्तम, सिन्दबाद की कहानियाँ, परी-कथाएँ, लोक कथाएँ, बीरबल, तेनालीराम जैसे विदूषकों की कहानियाँ, पुराण—महाकाव्य, संस्कृत के प्रसिद्ध नाटकों की कहानियाँ, उपनिषद् की कहानियाँ प्राय. सभी भारतीय भाषाओं में रची गयी है या अनूदित हुई है। ये सारी कहानियाँ बच्चों मे बहुत लोकप्रिय भी हुई हैं। परन्तु डॉ० हरिकृष्ण देवसरे के कथनानुसार समाजवादी दृष्टिकोण पर उन पौराणिक और प्राचीन साहित्य की कथाओ का आज के संदर्भ मे, आज की स्थिति तथा आज के बच्चों की मानसिकता के अनुरूप उन कहानियो का पुनर्लेखन होना चाहिए। पर साथ ही हमारे प्राचीन कथा साहित्य भण्डार से पहले बच्चे अवगत हो जाएँ और उनसे अपनी कल्पना शक्ति और भावना की परिपुष्टि करे तब अपने मानसिक विस्तार के अनुरूप ज्ञान-विज्ञान तथा जीवन से जुडे हुए अन्यान्य क्षेत्रों की समस्याओ से सम्बन्धित कहानियो तथा साहित्य की अन्य विधाओ का ज्ञान प्राप्त करे तो अधिक उपयुक्त होगा।

विश्व की प्राय प्रत्येक भाषा की प्रारम्भिक बाल कृतियो मे अद्‌भुत कथाएँ, पशु-पक्षियों की कहानियाँ, नीति व उपदेशात्मक कहानियाँ और साहसिक कथाएँ पायी जाती है। ये कहानियाँ ही वास्तव मे बच्चो की जिज्ञासा की परिपूर्ति करके साहित्य पढने की ओर प्रवृत्त करती है। यदि हम उन्हें यह साहित्य पढने न दे तो संभवत अधिकाश बालक-पाठकों से हम लोग वंचित रह जायेंगे।

भारत जैसे देशों मे ही नही, साम्यवादी तथा समाजवादी देशों में भी आज भी बालको को प्रारम्भ मे परी-कथाएँ, पशु-पक्षियो की कथाएँ पढ़ने को ही दी जाती हैं। वहाँ की लोक-कथाओ के पात्र पशु-पक्षी है। आये दिन प्रकाशित होने वाले विदेशी बाल साहित्य की पत्रिकाओं मे आज भी उन्हे हम देख सकते है। वहाँ के देश अधिक जागृत होते हुए भी परम्परा एवं रूढिवाद से दूर रह कर भी धर्म, दर्शन इत्यादि को न मानते हुए भी उन कहानियो को बच्चों से क्यों पढवाते है ? वे मानते है, कोरी कल्पना, भावना, अद्‌भुत घटनाओं में भी अगर कही कोई यथार्थ सत्य हो तो बच्चे अपनी विवेकशीलता के साथ उसे ग्रहण करे, अच्छे-बुरे का विवेचनात्मक दृष्टिकोण को वे विकसित करे। इस तरह की विवेचनात्मक शक्ति प्राप्त करने के पश्चात् उनकी बौद्धिक प्रतिभा के अनुरूप ज्ञानवर्द्धक बाल साहित्य दिया जाता है। भारतीय भाषाओं में भी यही क्रम पाया जाता है।

भारतीय भाषाओं मे प्रस्तुत बाल साहित्य का समग्ररूप मे अनुशीलन

करना इस छोटे से निबन्ध में सभव नहीं है; अतः अति संक्षेप में उस पर प्रकाश डालने का प्रयास करूँगा।

असमिया :

भारत की पूर्वांचलीय भाषाओं में असमिया भाषा का साहित्य किसी भी दृष्टि से अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में कम समृद्ध नहीं है। प्रारम्भिक अवस्था में असमिया भाषा में भी परी-कथाओं, लोक-कथाओं और देश-विदेश की लोकप्रिय बाल कथाओं की भरमार पायी जाती है। किन्तु क्रमश: वहाँ के बाल साहित्यकारों का दृष्टिकोण युग के अनुरूप बदलता गया। सर्वश्री नवकांत बरुआ, प्रेमधर दत्त, डॉ० वाणी कात काकति, प्रफुल्लदत्त गोस्वामी, महादेव शर्मा, वेणुधर शर्मा, महेश्वर नेओग, सैयद अब्दुल मालिक, निर्मला, प्रभा रघुनाथ चौधरी, कीर्तिनाथ हाजरिका, हरेन्द्रनाथ शर्मा, यतीन्द्रनाथ गोस्वामी प्रभृति ने आधुनिक युगबोध के अनुरूप उत्तम बाल साहित्य प्रस्तुत किया है।

बालकों को वैज्ञानिक साहित्य प्रदान करने के ख्याल से असमिया के लेखकों ने आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों को सरल एवं सरस भाषा में बाल-कोपयोगी बनाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। ऐसे लेखकों में दीपेन्द्रनाथ शर्मा, शांति राम दास, लक्ष्मीशेखर बरुआ इत्यादि का प्रयास अभिनन्दनीय है। उनके द्वारा विरचित कृतियों में 'महाकाश अभियान', 'विज्ञान अरु वैज्ञानिक', 'इलेक्ट्रिसिटी' वगैरह रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

असमिया भाषा में बाल नाटकों के कृतित्व के साथ विविध विधाओं पर भी पुस्तकें रची गयी हैं। बाल नाटककारों में कीर्तिनाथ हजारिका, हिरण्यमयी देवी, प्रेमनारायण, मुक्तिमाल बरदलै, नलिनीबाला देवी के नाटक मंच पर भी सफलतापूर्वक अभिनीत हुए हैं।

अन्य विधाओं की रचनाओं में रघुनाथ चौधरी कृत 'मानव सभ्यता', लक्ष्मीनन्दन बरा द्वारा रचित 'गाँवरे स्वर्ग रचो', अनिलकुमार शर्मा की 'जीव जन्तुर साधु', क्षेमेन्द्र द्वारा विरचित 'सागरिका', निर्मलेश्वर की 'आमार इह पृथिवीरतन' आदि स्मरणीय हैं।

असमिया में बाल पत्र-पत्रिकाओं का अभाव खटकता है, पर वहाँ के दैनिक, साप्ताहिक एवं मासिक पत्रों में बच्चों के वास्ते बाल-स्तंभ के अन्तर्गत बालकोपयोगी रचनाएँ प्रकाशित होती हैं। विशेषकर बच्चों के लिए प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं में 'दीपक' और 'जोन बाहे' नामक इस संदर्भ में गणनीय है।

ओड़िया :

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व ओडिया मे जो बाल साहित्य रचा गया, वह आज की कसौटी पर श्रेष्ठ कहा नही जा सकता। पर पाँचवी दशक मे जो बाल साहित्यकार उभर आये, उनमे कविता के क्षेत्र में गोपाल महाराज, नन्दकिशोर बल, मधुसूदन दास, मृत्युंजय रथ, पद्मचरण पटनायक, द्विजेन्द्र-लाल बशू, उपेन्द्र त्रिपाठी, लक्ष्मीकान्त महापात्र, कुंजविहारी दास, अनंतचरण शतपथी आदि हस्ताक्षर आदर के साथ लिये जा सकते है। स्वाधीनता के पश्चात् ओडिया के श्रेष्ठ कलाकारो ने बाल-साहित्य के प्रति अपने दायित्व का अनुभव किया और बच्चों के लिए सुन्दर पुस्तको की रचना की। इस समय की रचनाओ मे मनोवैज्ञानिकता और प्रयोगवादिता के साथ शैली की सरसता भी दृष्टिगोचर होती है। प्राचीन एव पौराणिक साहित्य को भी नये संदर्भ मे प्रस्तुत करने का प्रयास हुआ। इस प्रकार की कृतियां मे महामानव, मिनिर मनकथा इत्यादि गणनीय है। सौर जगत, दूर देश की कथा, आविष्कार और उद्भावन इत्यादि वैज्ञानिक कृतियों के साथ मनोवैज्ञानिक, भौगोलिक, सास्कृतिक और राष्ट्रीय भावनाओ से ओतप्रोत बाल साहित्य भी प्रस्तुत हुआ है। कविता के क्षेत्र मे गोदावरीश कृत छविर, कविता, उपेन्द्र त्रिपाठी द्वारा रचित पिलाक पशु-पक्षी पुराण तथा निशा राक्षसी, निकुज; कानूनगो कृत 'इन्द्रधनु', विश्वनाथ पाइक राय का 'राष्ट्रीय संगीत' इस दिशा मे उल्लेखनीय कृतियाँ है। कहानी के क्षेत्र मे दर्जनो लेखको ने नये-नये प्रयोग किये हैं। उदयनाथ पडंगी की माकडर देश भ्रमण, 'वडकिए', जगन्नाथ महांतिकी 'नयी मडीला', दुर्गाप्रसाद पटनायक की 'मोखाट घोडा', 'कथाकहे' इत्यादि आदर के साथ ली जा सकती है। अन्य लेखकों में गणेश्वर महापात्र, लोक-नाथ नन्द विविध विधा की रचना के लिए प्रसिद्ध है।

वैज्ञानिक सम्बन्धी रचनाएँ करने में गोकुलानन्द, महापात्र शातनुकुमार आचार्य, वासुदेव त्रिपाठी के नाम आदर के साथ लिये जा सकते हैं।

बाल एकांकी की रचना मे योगेन्द्रनाथ पटनायक, सूर्यचन्द्र नन्द जहाँ प्रसिद्ध है वहाँ बाल उपन्यास के क्षेत्र में डॉ० जयकृष्ण माहंती और चन्द्रशेखर महापात्र लोकप्रियता प्राप्त कर चुके है।

कन्नड़ :

प्रारम्भ मे कन्नड़ बाल साहित्य के क्षेत्र मे मैकमिलन कंपनी मद्रास, बाल साहित्य मण्डल मंगलूर ने प्रशंसनीय कार्य किया है। ए० एस० कामत ने बच्चों के लिए कई नाटक लिखे। डॉ० के० भरद्वाज भी नाटक के क्षेत्र मे

आदर के साथ स्मरण किये जाते है। अन्य बाल साहित्य के विशिष्ट लेखकों में डॉ० शिवराम कारंत का योगदान अविस्मरणीय है। इन्होंने बच्चो के वास्ते कहानियों के साथ गीतों की भी रचना की है। मगलकूट नाम से बालको के लिए एक संस्था स्थापित कर प्रतिवर्ष उनके द्वारा मचन कराने के लिए कई रोचक नाटक भी लिखे। साथ ही बाल प्रपंच नाम से बच्चो के लिए तीन भागों मे इन्होंने एक सुन्दर विश्व-कोष भी प्रस्तुत किया है। मैसूर की चिल्ड्रेन बुक कौन्सिल संस्था के द्वारा भी प्रशंसनीय कार्य हुआ है।

अन्य बाल साहित्यकारों मे सर्वश्री जी० पी० राजरत्नम, होइसलजी, आर० के० नारायण इत्यादि के नाम अविस्मरणीय है। कन्नड मे बालको के लिए उपन्यास भी कम नही रचे गये है। वैसे विज्ञान सम्बन्धी बाल साहित्य भी कन्नड में उपलब्ध है, किन्तु अधिकांश साहित्य या तो अंग्रेजी से अनूदित है, अथवा अनुकरणात्मक है। साउथ इण्डियन बुक ट्रस्ट द्वारा भी बच्चों के लिए कन्नड की पुस्तके प्रस्तुत हुई हैं, किन्तु उनमे अधिकांश इतर भाषाओं से अनूदित है।

श्री डी० के० मूर्ति ने 'मक्कल पुस्तकमाला' द्वारा बच्चो के लिए पर्याप्त पुस्तकें उपलब्ध करायी है।

तमिल :

तमिल मे भी प्रारम्भ मे अन्य भाषाओं की भाँति प्राचीन कथा साहित्य पर बालकों के लिए पुस्तकें रची गयी हैं। प्राचीन काल मे तमिल की प्रसिद्ध कवयित्री अव्वैयार ने गीत शैली में बच्चो के लिए बहुत ही रोचक पुस्तकें प्रस्तुत की थी तो आधुनिक युग में महाकवि सुब्रह्मण्य भारती ने 'नयी आत्ति चूँडि', 'पाप्पा पाट्टु' तथा 'ओडि विलैयाडु पाप्पा' जैसे बाल गीतो की रचना करके सुन्दर एवं स्वस्य बाल साहित्य की नीव डाली। अन्य श्रेष्ठ बाल-साहित्यकारों में नमः शिवाय मुदलियार, भारती दासन, देशिक विनायकम पिल्लै, वल्लियप्पा के नाम अत्यन्त आदर के साथ लिये जा सकते हैं। इन महानुभावों ने असंख्य गीत और कविताएँ रचकर न केवल तमिल बाल साहित्य के भण्डार को समृद्ध किया, अपितु भावी बाल साहित्यकारो के लिए सुन्दर पाठक वर्ग भी तैयार किया। उपर्युक्त कलाकारों की रचनाएँ केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के द्वारा भी पुरस्कृत हैं। वल्लियप्पा को 'कुलंदै कविञ्ञर' याने बालकों के कवि नामक उपाधि से भी विभूषित हैं। पेरियस्वामी, तूरन, पी० आर० चूडामणि, कोत्त मंगलम सुब्बु, तणिकै उलगनायन, भरतन, तंबि श्रीनिवासन, तमिलगन, तिरुच्चि वासुदेवन की सेवाएँ इस दिशा में सदा अविस्मरणीय हीं

रहेगे। श्रीलंका के तमिल बाल कवियों में, नवालियूर सोमसुन्दर पुलवर वगैरह विशेष रूप से लोकप्रिय हैं।

गद्य साहित्य मे राज चूणामणि का योगदान प्रशंसनीय रहा है। अन्य बाल साहित्य के विशिष्ट कलाकारो मे राजाजी का योगदान सदा स्मरणीय रहेगा। तमिल के चोटी के कलाकारो ने भी बालको के लिए असंख्य स्तरीय पुस्तकें लिखकर तमिल बाल साहित्य को समृद्ध बनाने मे महत्वपूर्ण भूमिकाअदा की है। ऐसे महानुभावो मे ती० जा० रगनाथन, कल्कि, कि० वा० जगन्नाथन, अकिलन, तुमिलन के नाम तमिल बाल साहित्य के क्षेत्र में गर्व के साथ लिये जा सकते है। बाल साहित्य की अन्य विधाओं के रचनाकारो में सर्वश्री पी० एन० अप्पुस्वामी, वानमामलै, नागराजन, कल्वि गोपालकृष्णन, एम० एल० वरदराजन, श्रीमती शांता लक्ष्मी प्रभृति ने गणनीय कार्य किया है।

तमिल बाल साहित्य के क्षेत्र में श्री पेरियस्वामी तूरन के सम्पादकत्व में प्रस्तुत बालरलैंवकल,चियम, याने 'बाल विश्वकोश' एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर है। यह कई खण्डो मे प्रस्तुत है।

तेलुगु

इस सदी के दूसरे दशाब्द में तेलुगु मे बाल साहित्य लेखन का शुभारम्भ हुआ। प्रारम्भ में संस्कृत तथा अंग्रेजी की उत्कृष्ट बाल कृतियो का या तो रूपान्तर हुआ अथवा उनको आधार बनाकर लेखकों ने अपनी भाषा में पुस्तकें प्रस्तुत की। साथ ही परी-कथायें, लोक-कथाएँ अधिक संख्या में रची गयी। किन्तु तेलुगु की प्रथम उल्लेखनीय कृति डॉ० गिडुगु सीतापति द्वारा विरचित बालानन्दम् है जो तेलुगु भाषा समिति द्वारा पुरस्कृत भी है। तेलुगु के विख्यात कवि गुरुजाड अप्पाराव, श्री श्री आदि ने भी बच्चों के लिए सुन्दर रचनाएँ की है। श्री कवि रावु, वी० वी० नरसिंहाराव, नंडूरि राममोहन, अलपति वगैरह बच्चों के लिए गीत लिखने मे विशेष प्रिय हुए हैं। ये सब अपनी बालकृतियों के लिए भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकार द्वारा भी पुरस्कार प्राप्त कर चुके है। वी० वी० नरसिंहराव 'बाल बन्धु' नाम से विख्यात हैं। वैज्ञानिक ढंग पर लिखी गयी इनकी रचनाएँ, बच्चो की मानसिकता के अनुरूप में है। ऐसे गीत-सग्रहो मे 'बाल हृदयमु', 'आवु-हरिश्चन्द्र' प्रसिद्ध हैं। कवि राव कृत 'बोम्मरिल्लु' (घरौन्दे) गीत कथायें पर्याप्त लोकप्रिय है। तेलुगु की बालकृतियो में दो दर्जनो से अधिक केन्द्रीय शासन द्वारा पुरस्कृत है। मागंटी बापिनीडु ने बच्चो के लिए छोटा-सा विश्वकोश ही तैयार किया था। चिंता दीक्षितुलु ने 'सूरी-सीता-वेंकी' पात्रों के माध्यम से बहुत सुन्दर कहानियाँ प्रस्तुत की

है। अन्य उल्लेखनीय साहित्यकारों में नार्ल चिरंजीवी, वेंकटरामचन्द्र मूर्ति, चावलि राघवराव दंपति, शशांक, टी० रामचन्द्र राव, के० एन० नरसिंहाराव, श्रीवास्तव, के० सभा, एल्लोरा दाशरथि, नारायण रेड्डी इत्यादि की रचनायें विशेष लोकप्रिय हुई हैं। बाल उपन्यास के लेखकों में सर्वश्री वलिवाड कांताराव, अन्ने उमामहेश्वर राव, दिगवल्लि शेषगिरि राव प्रसिद्ध है। डॉ० वेलगा वेंकटप्पा चौधरी का योगदान अविस्मरणीय है।

तेलुगु में विज्ञान सम्बन्धी भी पुस्तकें बच्चो के लिए पर्याप्त मात्रा में रची गयी है। विज्ञान सम्बन्धी प्रायः हर विषय का स्पर्श करते हुए वेमराजु भानुमूर्ति, वसन्तराव वेंकटराव, कोड वटिगंटि कुटुम्बराव ने सराहनीय कार्य किया है। एकांकी के क्षेत्र में भी तेलुगु भाषा पीछे नहीं है। बच्चो के लिए रचित अनेक मौलिक एकाकी सफलतापूर्वक मंचित हुए हैं। ललित कलाओं पर भी सुलभ शैली मे बच्चों के वास्ते पुस्तके उपलब्ध करायी गयी हैं।

इस समय आन्ध्र प्रदेश सरकार बच्चों के वास्ते अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के सन्दर्भ में पचास लाख रुपये व्यय करके एक विश्वकोश सोलह जिल्दो मे प्रस्तुत करने की योजना बना चुकी है। विभिन्न रंगों में छपनेवाले इस कोश की पच्चीस हजार प्रतियां पाठशालाओं मे मुफ्त मे वितरित की जायेगी, यह तेलुगु भाषा-भाषी बच्चों के लिए एक विशेष उपलब्धि ही कही जायेगी।

पंजाबी :

पंजाबी में बाल साहित्य के लेखन और प्रकाशन बड़े ही विलम्ब के साथ हुआ। वैसे बालक नाम से तीस-चालीस वर्ष पूर्व ही निकली, जिसके माध्यम से कथा, कहानियाँ व गीत बच्चों के लिए उपलब्ध होने लगे। परन्तु ५वें दशक में प्रकाशित दूर दुराडे देश इत्यादि बहुत ही लोकप्रिय हुईं। पंजाबी भाषा के बाल लेखकों में सर्वश्री प्यारा सिंह सहराई, ओमप्रकाश, गुरदयाल सिंह, बलवंत सिंह आदि जाने-माने लेखक माने जाते है। कथा साहित्य के लेखन मे *ओमप्रकाश (सुनें-सुनाओ)*, राजदुलारे *(कर भला-हो भला)*, *गुरदयाल* सिंह (टुक खोह लए कांवा) नामी लेखक माने जाते है। पंजाबी में ज्ञान सम्बन्धी भी रचनाएँ बच्चों के लिए रची गयी है, जिनमें शमशेर सिंह, अवतार कौर, अवतार सिंह, दीपक की कृतियाँ बच्चों में विशेष प्रचलित है।

हास्य और व्यंग्य के क्षेत्र मे बलवंत सिंह शीतल और प्यारा सिंह दाता का योगदान प्रशंसनीय है।

बंगला :

बंगला बाल साहित्य के उत्थान में वहाँ के विशिष्ट कवि, कथाकार एवं मनीषियों ने स्पृहणीय योगदान दिया है। मोहित घोष का कविता संग्रह 'टापुर टुपुर' (रिमझिम), निर्मलेन्दु गोस्वामी 'सेतार गाज्ये', मंजिल सेन की 'पड़ुआ' इत्यादि कविता-पुस्तकें न केवल लोकप्रिय हुई बल्कि भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत भी हैं।

बंगला के यशस्वी कथाकार प्रेमेन्द्र मित्र ने बच्चों के लिए आधे दर्जन के करीब उत्कृष्ट बाल कृतियाँ प्रस्तुत की, जिनमें कुछ पुस्तकें पुरस्कृत भी हैं। इनकी बाल पुस्तकों का कथानक, धनादा है जिस पात्र के नाम से प्रायः इनकी सारी पुस्तकें लोकप्रिय हुई हैं। 'धनादार गल्प' इनकी सर्वोत्तम कृति है। नारायण गंगोपाध्याय बाल साहित्यकारों के सिरमौर है। इनकी रचनाओं के दो विशिष्ट पात्र हैं—पैला और टेनिदा। इनकी रचनाएँ हास्य रस के उत्कृष्ट नमूने कहे जा सकते हैं। अन्य बाल लेखकों में श्रीमती लीला मजुमदार, सत्यजित राय, शिवराम चक्रवर्ती, शरदिन्दु बन्द्योपाध्याय, इन्दिरा देवी, रवीन्द्रनाथ ठागोर, प्रशांत चौधरी, योगेन्द्रनाथ सरकार, विभूतिभूषण बन्द्योपाध्याय, आशापूर्णा देवी, बुद्ध देव वसु, नृपेन्द्रकृष्ण चट्टोपाध्याय, ताराशंकर बन्द्योपाध्याय आदि विशिष्ट हस्ताक्षर हैं। संभवतः किसी भारतीय बाल साहित्य के क्षेत्र को ऐसे महान कलाकारों का योगदान उपलब्ध नहीं हुआ है। प्रेमेन्द्र के धनादा की भाँति सत्यजितराय का 'प्रोफेसर शंकू' का पात्र अपनी विशेषता के लिए बेजोड़ है।

बंगला में बच्चों के लिए जितनी और जैसी उत्तम पत्रिकाएँ छपती हैं शायद और भाषाओं में नहीं।

मराठी :

मराठी का बाल साहित्य पर्याप्त समृद्ध है। उस भाषा में आयु वर्ग की दृष्टि से शिशु, बाल और किशोर का वर्गीकरणात्मक साहित्य प्रस्तुत हुआ है। मराठी के अधिकांश बाल साहित्यकारों का ध्यान सदैव इस बात की ओर रहा है कि हम क्या लिख रहे है ? हम किसके लिए लिख रहे हैं ? यही कारण है कि इस भाषा में रचित बाल साहित्य में वैविध्य के साथ व्यापकता भी दृष्टिगोचर होती है।

मराठी भाषा के प्रारम्भिक बाल साहित्यकारों में सर्वश्री गोपीनाथ तलवल्कर, वा० रानडे, कवि मायादेव आदि के नाम सादर लिये जाते है।

बाल साहित्य के सृजन प्रकाशन के क्षेत्र में ही नहीं अपितु प्रोत्साहन की दृष्टि से भी महाराष्ट्र सरकार ने जो उत्साह दिखाया, वह प्रशंसनीय है। इस भाषा में बाल साहित्यकारों की संख्या इतनी अधिक है, सब का नामोल्लेख करना भी सम्भव नहीं है, परन्तु सर्वश्री ग० दि० माडगूलकर पराजपे, शं० र० देवले, मंगल वेढेकर, म० रा० भागवत मंगेश पाड गाँवकर, दाणेकर, भैयासाहब ओकार, आदि ने बाल साहित्य की समृद्धि में जो योगदान दिया है, वह सदा अविस्मरणीय है।

मराठी की बाल पत्रिकाओं ने भी स्तर व उपादेयता की दृष्टि से बच्चों के दिलों में अपना अमिट स्थान बना लिया है। मराठी बाल साहित्य को महिलाओं का योगदान भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हुआ है। बाल-लेखक व लेखिकाओं ने अल्पायु में ही बाल साहित्य का सृजन कर इस क्षेत्र में अनूठा मानदण्ड स्थापित किया है। ऐसे साहित्यकारों में माधुरी पारसनीस विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आपने अपनी छः वर्ष की आयु में ही कविताएँ रचकर अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया है।

मराठी भाषा में बच्चों के लिए विविध विधाओं की पुस्तकों एवं पत्रिकाओं के साथ उत्तम श्रेणी के विश्वकोशों का भी निर्माण हुआ है।

गुजराती :

इस भाषा में भी प्रारम्भ में बच्चों के वास्ते नीति, उपदेश व सदाचार पर पुस्तकें रची गईं और विश्व गाथा-साहित्य-भंडार को रूपांतरित किया गया, पर स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात् बाल साहित्य की ओर अधिकांश लेखकों का ध्यान आकृष्ट हुआ। इतनी संख्या में बाल साहित्य की सर्जना में प्रवृत्त सबका परिचय सम्भव नहीं है।

पर अन्य विधाओं की अपेक्षा कहानी सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम रही। इस विधा की समृद्धि में हाथ बँटाने वाले कलाकारों में जयभिक्खु जीवराम जोशी, श्रीकांत त्रिवेदी, यशवंत मेहता, हरीश नायक, गिरीश गणात्रा, देवेन्द्र कुमार पण्डित वगैरह के नाम अग्रिम पंक्ति में गिने जा सकते हैं।

कविता के लेखन में सुरेश दलाल, जतीन आचार्य, बाल मुकुन्द दवे, रमणलाल सोनी, त्रिभुवन व्यास जहाँ प्रसिद्ध हैं वहाँ नाटकों की रचना में यशवंत पण्ड्या, धराणी, इन्द्र वसावडा, हिम्मतलाल दवे अपने नाम को उजागर किये हुए हैं।

अन्य विधाओं के साहित्यकारों में शिशुभाई त्रिवेदी, सोमालाल शाह गणनीय हैं।

हिन्दी :

संख्या की दृष्टि से हिन्दी मे बाल साहित्य प्रचुर मात्रा मे रचा गया है। स्थरीय बाल साहित्य का भी हिन्दी मे अभाव नही है किन्तु हिन्दी के विख्यात लेखकों ने इस विधा की समृद्धि मे कोई विशेष *अभिरुचि नहीं दिखाई*, पर इस विधा को जिन लेखको ने अपनाया उनमे कवियो की संख्या अधिक है। ऐसे कलाकारो मे सर्वश्री सोहनलाल द्विवेदी, द्वारकाप्रसाद माहेश्वरी, निरंकार देव सेवक, राष्ट्रबन्धु, चन्द्रपाल सिंह यादव, रामावतार चेतन, चिरजीत, रामचन्द्र तिवारी, कपिल, धर्मपाल शास्त्री, रघुवीर शरण मित्र, रामेश्वर दयाल दुबे के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

वैसे हिन्दी के यशस्वी लेखक इलाचन्द्र जोशी, वृन्दावनलाल वर्मा प्रभृति *ने ऐतिहासिक कथाएं प्रस्तुत करके हिन्दी बाल साहित्य के एक बहुत बडे* अभाव की पूर्ति मे प्रशसनीय योगदान दिया है।

हिन्दी मे अनुवाद साहित्य पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध है। प्राय: सभी प्रकाशकों तथा सरकारी व अर्ध सरकारी संस्थानो ने विविध प्रकार की रचनाएँ प्रकाशित कर बाल साहित्य के भण्डार को समृद्ध किया, परन्तु यहाँ उनका नामोल्लेख तक सम्भव नही है। लोक-कथाएँ, पौराणिक कथाएँ, नीति-कथाएँ, हास्य-व्यंग्य की रचनाएँ हजारो की सख्या मे रची गयी है। बाल-पाकेट बुक्स *के नाम पर सैकडो पुस्तके बाजार मे आयी, परन्तु गुणात्म साहित्य के लेखन* में अपना नाम रोशन करने वाले आज के लेखको मे सर्वश्री विष्णु प्रभाकर, मनोहर वर्मा, डॉ० हरिकृष्ण देवसरे, व्यथित हृदय, विराज, शिवमूर्ति सिंह, योगराज थानी, मनहर चौहान, डॉ० मस्तराम कपूर, सुदर्शन, रमेश वर्मा, हिमाशु श्रीवास्तव, जयप्रकाश भारती, कन्हैलाल नन्दन, स्वदेश कुमार, उमाशंकर, विमला लूथरा, कमल शुक्ल, सरस्वती कुमार दीपक, बाल स्वरूप राही, राबिन शा पुष्प, गोविन्द सिंह, सत्यप्रकाश अग्रवाल, केशवदेव इत्यादि ने कहानी, उपन्यास एवं नाटकों के क्षेत्र में पर्याप्त यश अर्जित किया है।

हिन्दी मे बच्चों के लिए असंख्य पत्रिकाएँ निकली, वानर बाल सखा जैसी कुछ अच्छी पत्रिकाएँ काल कवलित हो गयी। पर आज जो पत्रिकाएँ विशेष रूप से बच्चों मे लोकप्रिय हैं, वे हैं—बाल भारती, नन्दन, पराग, चन्दा मामा, चंपक, बालक।

उर्दू :

उर्दू मे अन्य भाषाओ की तुलना मे बाल साहित्य अल्प मात्रा में उपलब्ध है; *किन्तु जो भी रचनाएँ आयो वे गुण की दृष्टि से उत्तम कही जा सकती हैं।*

सर्वप्रथम डॉ० जाकिर हुसैन साहब ने ही बच्चों के वास्ते प्रेरणादायक कहानियाँ लिखकर इस विधा का श्रीगणेश किया। उनकी प्राय सारी कहानी देश-भक्ति और राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है। 'अब्बूखाँ की बकरी और चौदह और कहानियाँ' इसका सुन्दर उदाहरण है। हुसैन साहब अंग्रेजी नाटकों के आधार पर बच्चो के लिए नाटक भी रचे जो बच्चों के द्वारा खेले भी गये।

अन्य बाल साहित्यकारों में जनाब मुहम्मद शफीउद्दीन का नाम आदर के साथ लिया जाता है। इनका 'गाँव सुधार गीत' विशेष लोकप्रिय है और इसके अनेक संस्करण हाथोहाथ बिक गये हैं।

उर्दू के ख्यातनामा लेखक किशनचन्दर ने बच्चों के वास्ते चिड़ियों की 'अलिफ लैला' और 'उल्टा दरख्त' नाम से दो सुन्दर पुस्तकें लिखीं।

उर्दू की अन्य मशहूर किताबों मे सालिब आबिद हुसैन के नाटक, अबरार मुहसन की 'डाकू की गिरफ्तारी', सैयद बशीर हुसैन कृत 'दुनिया के बसने वालो' ज्यादा चाव से पढ़ी जाने वाली हैं।

मलयालम :

मलयालम भाषा मे प्रारम्भ से ही बाल साहित्य के उन्नयन की दिशा में अग्र-श्रेणी के कवियों तथा साहित्यकारो का योगदान रहा है। मलयालम के महाकवि आशान उल्लूर, वल्लतोल आदि ने इस विधा का सूत्रपात किया तो महाकवि जी० शंकर कुरुप जैसे महान कलाकारो ने इस विधा को सर्वगुणसम्पन्न बनाया।

अन्य विशिष्ट साहित्यकारों मे सर्वश्री सेतुनाथ, गोपाल कृष्णन, टी० वी० जोण, परमेश्वरन, वेल्लायण अर्जुनन आदि तरुण पीढ़ी के कवियों ने अपनी रचनाओ द्वारा परिपुष्ट बनाया।

मलयालम बाल साहित्य को विविध विधाओं को समुज्ज्वल बनानेवाले श्रेष्ठ रचयिताओं मे सर्वश्री मात्यु एम० कुलवेलु, सुकुमारन, रामकृष्ण नायर, ओ० पी० नम्बूदरीपादए, ए० पी० तानु, अनन्तु वगैरह का योगदान प्रशंसनीय है।

केरल की साहित्यिक संस्थाओ तथा प्रकाशकों ने भी बाल साहित्य के लेखन व प्रकाशन मे विशेष प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान किया। नेशनल बुक स्टाल, केरल साहित्य अकादमी के द्वारा भी महत्वपूर्ण बाल साहित्य प्रकाश मे आया है। असंख्य बाल साहित्यकार अपनी उत्कृष्ट रचनाओं के लिए भारत

सरकार, प्रान्तीय सरकार, अकादमी तथा अन्य संस्थाओं के द्वारा पुरस्कृत एवं सम्मानित हुए हैं।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् हम इस निर्णय पर पहुँच जाते हैं कि भारतीय भाषाओं में बाल साहित्य का सृजन पर्याप्त मात्रा में हो रहा है। खासकर अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के सन्दर्भ में समस्त भारतीय भाषाओं के लेखकों ने बाल साहित्य के सृजन के प्रति अपने दायित्व का अनुभव किया है। अतः हम यह आशा कर सकते हैं कि भारतीय बाल साहित्य का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है।

१४

अनुवाद की समस्याएँ : तेलुगु से हिन्दी

अनुवाद शब्द विभिन्न नामों से अभिहित होता है; जैसे—भाषांतर, रूपांतर, उल्था, तर्जुमा, अनुकृति, अनुसरण इत्यादि। एक भाषा से दूसरी भाषा में मात्र शब्दों एवं वाक्यों का रूपांतर अनुवाद नहीं कहलाता। मूल लेखक की सूक्ष्म अनुभूतियों, संवेदनशीलताओं, भावों तथा विचारों के साथ तादात्म्य स्थापित कर उनके हृदयगत सौन्दर्य का सजीव चित्रण जीवन्त भाषा मे उतारना होता है। गहराई के साथ विचार करने पर हमे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रत्येक मौलिक रचना अनुवाद होती है। क्योंकि सर्जनात्मक साहित्य अनुभूतियों की तीव्रता के कारण निर्मित होता है, जबकि सृजन का रूप धारण करने के लिए अनुभूतियों को भाषा का कलेवर ओढ़ना पड़ता है।

अनुवाद एक कला है :

किसी भाषा मे रचित किसी दूसरी भाषा में रूपान्तर करते समय मूल भाषा के सौन्दर्य की रक्षा करनी होती है। इस प्रयत्न मे अनुवादक को मूल लेखक के परिवेश, दृष्टिकोण तथा उसके देश, काल और स्थिति का यथार्थ ज्ञान आवश्यक हो जाता है।

जैसे चित्र लेखन प्रकृति की अनुकृति या प्रतिरूप होता है, वैसे ही अनुवाद मूल रचना की प्रतिकृति होता है। इसका तात्पर्य हुआ कि मूल रचना का समस्त सौन्दर्य, शोभा, वैभव, उद्वेग, रस, शैली, भाव-विलास तथा शब्द-विन्यास अनुवाद में भी दर्शित और प्रतिबिम्बित हों। जिस प्रकार चित्रकार एक कलाकार होता है और चित्र-लेखन एक कला है, उसी प्रकार अनुवाद भी एक कला है जो मूल रचना की अनुकृति होता है। जैसे निसर्ग सहज ही सौन्दर्य का पुंजीभूत होता है और चित्रकार उसके रमणीय दृश्यों को अपनी कला के माध्यम से सही रूप में उतारने का प्रयास करता है। वह इस प्रयास में अपनी प्रतिभा जितनी मात्रा मे प्रदर्शित कर पाता है उतनी ही मात्रा में

उसकी कृति शोभा से युक्त होती है। कुछ सन्दर्भो मे मूल से भी कही ज्यादा उसकी अनुकृति रमणीय बन पडती है। इसी मे कला की सार्थकता निहित है। फोटोग्राफ तो मूल का प्रतिरूप या प्रतिबिंब होता है, पर चित्र अनुभूतिजन्य होता है। इसमे भाषाओ तथा कल्पनाओ का सम्मिश्रण लक्षित होता है।

इसी प्रकार अनुवाद किसी सर्जनात्मक कृति का फोटोग्राफ या प्रतिबिंब नही होता। वह कला से युक्त होता है। भाषा केवल कलेवर होता है, जबकि अनुभूतियाँ उस कला की आत्मा। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी कृति की भाषारूपी बाह्य आवरण को कलात्मक ढग से प्रस्तुत करना पर्याप्त नही है अपितु उसके आत्मगत सौन्दर्य को आकर्षक एवं सरस शैली मे प्रतिबिंबित करना उतना ही आवश्यक है।

गणतन्त्र भारत में हिन्दी सावैधानिक समर्थन के साथ राजभाषा, सम्पर्क भाषा तथा राष्ट्रभाषा के रूप मे स्वीकृति प्राप्त कर चुकी है। ऐसी स्थिति मे हिन्दी को सक्षम एव समृद्ध बनाने का दायित्व देश के समस्त साहित्यकारो पर आ पडा है। यह तभी सम्भव है जबकि भारत की समस्त क्षेत्रीय भाषाओं मे रचित वाङ्मय को अनुवाद के माध्यम मे हिन्दी मे उपलब्ध करा सकें।

वैसे तो सम्पूर्ण भारत का 'साहित्य' एक है और इस देश का 'सास्कृतिक स्वर' भी प्राय एक ही रहा है। प्रारम्भ मे सस्कृत के माध्यम से हमारी सस्कृति एवं साहित्य मुखरित हुआ है। साथ ही भारत की प्राय समस्त क्षेत्रीय भाषाओ का सम्बन्ध संस्कृत के साथ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे रहा है। आज हिन्दी को उसका स्थान ग्रहण करना है।

किसी भाषा मे रचित कृति का दूसरी भाषा में रूपान्तर करते समय अनुवादक को मूल भाषा के सौन्दर्य की रक्षा करनी होती है। इस प्रयत्न मे रूपान्तरकार को मूल लेखक के दृष्टिकोण, परिवेश, देश-काल व स्थिति का यथार्थ ज्ञान आवश्यक हो जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि जैसे चित्रकार एक कलाकार होता है, और चित्र बनाना एक कला है, उसी प्रकार अनुवाद भी एक कला है। क्योंकि चित्राकन प्रकृति की अनुकृति या प्रतिरूप होता है। वैसे ही अनुवाद मूल रचना की प्रतिकृति होता है। निसर्ग के सौन्दर्य को चित्रकार अपनी प्रतिभा के बल पर जितनी मात्रा मे अपनी कृति मे उतर पाता है, उतनी ही अधिक मात्रा मे उसका चित्र सफल होता है। कुछ सन्दर्भों के मूल मे कही ज्यादा उसकी अनुकृति वैभवपूर्ण हो जाती है, उसी

में कला की सार्थकता निहित होती है । इसी प्रकार अनुवाद किसी सर्जनात्मक कृति, फोटोग्राफ या प्रतिबिंब नही होता, वह कला से युक्त होता है । अत. इसका यह अर्थ हुआ कि किसी कृति का भाषारूपी बाह्य आवरण कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करना पर्याप्त नही होता अपितु उसके आत्मगत सौन्दर्य को सही अर्थों में प्रतिबिंबित करना आवश्यक होता है ।

हिन्दी और तेलुगु दो विभिन्न परिवारो की भाषाएँ है; अत उनकी प्रकृति, शब्द-भण्डार, शैली, वाक्यरचना, मुहावरे, कहावते, छंद, अलकार इत्यादि की दृष्टि से भिन्न है । हिन्दी व्यंजनात भाषा है जबकि तेलुगु स्वरात भाषा है ।

चल, पढ, देख, सुन तेलुगु में नड्चु, चदुवु, चूडु, विनु होते हैं, अर्थात् प्रत्येक शब्द स्वर के साथ अन्त होता है ।

शब्द-भण्डार की दृष्टि से दोनों भाषाओं में तत्सम, तद्भव, देशज व विदेशी शब्द है । फिर भी प्रयोग की दृष्टि से इन भाषाओं में भिन्नता है । उदाहरण के लिए संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग तेलुगु मे ह्रस्व रूप मे होता है जबकि हिन्दी में दीर्घ रूप में; जैसे—

तेलुगु	हिन्दी	तेलुगु	हिन्दी
सभँ	सभा	कृपँ	कृपा
मायँ	माया	ममतँ	ममता
करुणँ	करुणा	सीतँ	सीता
दयँ	दया	जमुनँ	जमुना

अनुवाद मे रूपान्तरकार को ये परिवर्तन करने पडेगे ।

तेलुगु भाषा ने तत्सम शब्दों के साथ अपने प्रत्यय जोडकर उन्हे अपनी भाषा के शब्द बनाये हैं; जैसे—स्नेह—स्नेहमु, चित्र—चित्रमु, वृक्ष—वृक्षमु, ग्राम—ग्राममु, विष्णु—विष्णुवु, कृष्ण—कृष्णुडु, महन्त—महन्तु, वायु—वायुवु, पवन—पवनमु, समीर—समीरमु । तेलुगु की प्रथमा विभक्ति के प्रत्यय है—डु, मु, वु, लु । इन प्रत्ययों को तत्सम शब्दों के साथ जोडकर तेलुगु ने उन शब्दो को अपना बनाये—राम—रामुडु, वन—वनमु, मधु—मधुवु । 'लु' प्रत्यय विशेषत बहुवचन मे प्रयुक्त होता है; जैसे—वनमुलु, सभलु, महन्तुलु, भवनमुलु आदि ।

इसी प्रकार तेलुगु वर्णमाला में देवनागरी वर्णमाला की अपेक्षा कुछ वर्णों की अधिकता है; अतः हिन्दी मे उनका प्रयोग करना पड़े तो कुछ विशेष चिह्नों को काम मे लाना पडेगा । हिन्दी मे ऋ मात्र है जबकि तेलुगु मे इसका

दीर्घ रूप भी है। इसी प्रकार जहाँ हिन्दी में ए और ऐ है वहाँ तेलुगु में ए, एॅ, ऐ है। इसी भाँति ओ, ओॅ, औ हैं।

उपर्युक्त वर्ण वाले नामों या प्रदेशों के नामो को हिन्दी में लिखना पडे तो विशेष रूप से उन वर्णों के उच्चारण को ध्वनित करने के लिए विशेष चिह्नों मे अंकित करना पडता है।

इसी प्रकार कतिपय तत्सम शब्द तेलुगु में हिन्दी से भिन्न अर्थ मे प्रयुक्त होते हैं; जैसे—

हिन्दी	हिन्दी में अर्थ	तेलुगु में अर्थ
उपन्यास	नावेल	भाषण
प्रपंच	धोखा	विश्व, दुनिया
आग्रह	अनुरोध	क्रोध
सहवास	संसर्ग	मैत्री, दोस्ती
संगति	साथ	समाचार
बंधु	भाई	रिश्तेदार
विधि	कानून	किस्मत
विज्ञान	साइंस	ज्ञान, सम्पदा
अभिमान	अहंकार, गर्व	प्रेम, आदर, अनुराग

अरबी, फारसी तथा कतिपय हिन्दी के शब्द भी तेलुगु में भिन्न रूपो मे प्रयुक्त होते हैं; जैसे—नमाज़, जिन्स —जिनुसु, सरनाम—चिरुनामा, मरहम—मलामु, बुर्ज—बुरुजु, लिंग संबंधी कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हिन्दी मे प्रायः कुछ पर्याय शब्द पुल्लिग और स्त्रीलिंग दोनों ही है—

पु०	स्त्री	पु०	स्त्री
ग्रन्थ	पुस्तक	पवन, समीर	हवा, वायु
चरण, पैर	टाँग	वक्ष	छाती
बालू	रेत	जहाज	नौका
उरु	जाँघ	चित्र	तस्वीर
संसार, विश्व	दुनिया	वातायन झरोखा	खिड़की
विघ्न	बाधा	नयन, नेत्र	आँख

अप्राणिवाचक शब्दों के लिंग-निर्णय मे अन्य हिन्दीतर भाषा-भाषियों की भाँति तेलुगु से हिन्दी में अनुवाद करने वाले भी कभी-कभी अटक जाते है, जैसे—फल, फूल, अंकुर पुल्लिग है, पर लता, बेल स्त्रीलिंग। शरीर के अंगो मे दाढ़ी, मूँछें, नाक, आँख स्त्रीलिंग हैं, पर हाथ, पैर, सिर, माथा, कान, मुँह पुल्लिग हैं। इस प्रकार प्रत्येक शब्द का लिंग स्मरण रखना कठिन होता है।

इसी प्रकार तेलुगु से अनुवाद करते समय संज्ञा, विशेषण आदि शब्दो के लिंग-निर्णय में भी रुक जाना पडता हैं। कपट, धोखा, दगा पुल्लिग है पर प्रवंचना स्त्रीलिंग है। इस प्रकार के दर्जनों उदाहरण दिये जा सकते है। पुरुष-बोधक मूँछें स्त्रीलिंग हैं, किन्तु स्तन पुल्लिग है। पलग पुल्लिग पर चारपाई-खाट स्त्रीलिंग हैं।

व्याकरण सम्बन्धी कुछ कठिनाइयाँ भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रत्यय व कारक-चिह्नों के प्रयोग मे भी लिंग रुकावटें खडी करता है—कर्म के अनुसार क्रिया रूप मे परिवर्तन हो जाना हिन्दी व्याकरण की विलक्षणता है, जो द्रविण भाषाओं में नही देखी जाती है। नमूने के लिए—

राम ने रोटी खायी—राम ने दस रोटियाँ खायी।

सीता ने एक फल खाया—सीता ने दस फल खाये।

सीता ने एक रोटी को खाया—सीता ने दस रोटियों को खाया।

तेलुगु भाषा मे कर्म के कारण क्रिया रूप में कोई परिवर्तन नही होता। इसीलिए तेलुगु भाषा अनुवादक को हिन्दी मे अनुवाद करते समय कठिनाई होती है।

वाक्य-रचना मे भी हिन्दी और तेलुगु भाषाओं के बीच पर्याप्त अन्तर पाया जाता है; जैसे—तेलुगु—गोपालुडु बिडिक वेल्लुताननि चेप्पेनु (गोपाल ने स्कूल जाने की बात कही)।

हिन्दी—गोपाल ने कहा कि वह स्कूल जायेगा।

हिन्दी की वाक्य-रचना का गठन यहाँ पर अंग्रेजी के ढंग पर है; जैसे—Gopal said that be will go to school.

तेलुगु—रमेश मंचिवाडनि अंता चेपुतुन्नाक (रमेश को सब अच्छा लड़का बताते है)।

हिन्दी—सब लोग कहते है कि रमेश अच्छा लड़का है।
तेलुगु—वाडु वस्तानानि चेप्पेडु (वह आऊँगा कहकर बोला)
हिन्दी—उसने कहा कि वह जायेगा।

इसी प्रकार मुहावरो व लोकोक्तियों का अनुवाद करते समय भी अनुवादक को वडी माथापच्ची करनी पडती है। वास्तव मे ये मुहावरे व लोकोक्तियाँ ही किसी भाषा के प्राण होते है। भाषा की सारी शोभा, सौन्दर्य व सम्पन्नता बहुत कुछ इन्ही पर निर्भर करती है। अनेक भाव, गुणों व कार्यो का परिचय इनके आधार पर सहज, सरल तथा मधुर शैली मे दिया जाता है जो पाठक तथा श्रोता पर गहरा प्रभाव डालते है। किसी भाषा की श्रेष्ठता, गुणवत्ता एव अर्थवत्ता का निर्णय भी इन्ही के आधार पर किया जा सकता है।

जो भाषा जितनी समर्थ, लचीली और भावबोधक होती है, उतनी ही मात्रा मे उसकी अभिव्यक्ति की पद्धति गहन, तीव्र, सक्षम तथा श्रेष्ठ होती है। अत अनुवाद मे यदि सही अर्थबोधक मुहावरों व कहावतों का प्रयोग न करे तो उसका भाव कृत्रिम, फीका, नीरस तथा कुछ-का-कुछ हो जाता है। भाषा की सम्पदा व भाव वैभव के ये ही परिचायक हैं; अत इनके अनुवाद मे वडी सतर्कता बरतनी पडती है।

भारतीय संस्कृति समन्वयात्मक रही है, एक रही है; किन्तु प्रान्तीय विशेषताओ के कारण उसमें थोडी-बहुत भिन्नता दर्शित होती है। यही बात भाषा और साहित्य के सन्दर्भ मे भी सटीक बैठती है। अधिकाश मुहावरों व कहावतों के समानार्थी रूप हिन्दी व तेलुगु मे पाये जाते है, पर साथ ही अनेक ऐसे प्रसग है जिनमे ठेठ तेलुगु मुहावरो व लोकोक्तियो का प्रयोग पाया जाता है। ऐसे सन्दर्भों में हिन्दी मे समानार्थी मुहावरे नही मिलते; अत. या तो मूल भाव को व्याख्या से समझाना पडता है या पाद-टिप्पणी का सहारा लेना पडता है अथवा हिन्दी में पर्याय मुहावरे आदि गढने पडते है।

कुछ मुहावरे ऐसे होते है जिनका थोड़े से हेर-फेर के साथ अनुवाद सम्भव है, जैसे—

तेलुगु	भाव	हिन्दी का अर्थ
गुणपाठक	(गुण-सबक)	सबक सिखाना
कनु विप्पु	(आँखे खुली)	ज्ञानोदय हुआ
तोडु दोगलु	(साथी चोर)	चोर-चोर मौसेरे भाई
एंदुरीत	(प्रवाह के विपरीत तैरना)	विपरीत परिस्थितियों का सामना करना

कुछ ऐसे मुहावरे और कहावतें हैं जिनका अर्थ थोड़ा बदल जाता है। फिर भी लगभग उसी अर्थ को व्यंजित कर सकता है। किन्तु तेलुगु के प्रयोगों मे उनकी अपनी खासियत होती है; जैसे—

तेलुगु	भाव	हिन्दी
कालिकि बुद्धि चेप्पुट	(पैर को अकल सिखाना)	बेतहाशा दौडना (भाग खड़ा होना)
पेरू गोप्प ऊरु दिब्ब	(नाम का बडा गाँव टीला)	नाम बड़े दर्शन थोड़े
इंटि पेरू कस्तूरि वारू इंटिलो गब्बि-लाल कंपु	(वंश का नाम कस्तूरीवाले) (पर घर में चमगादड़ों की वदबू)	(ऊँची दुकान फीका पकवान)
तल प्राणमु तोककु वस्ट	(सर का प्राण पूंछ मे आना)	भारी मुसीबत मे पडना

पर कुछ ऐसे प्रयोग भी होते है जिनका अनुवाद समव नही; जैसे—"इंटिकि रानी कथ चेपुता" अर्थात् "घर चले आओ, तुम्हारी कहानी सुनाऊँगा"। मतलब—घर चलो, तब तुम्हें उचित दण्ड दूँगा। इसी प्रकार दुष्ट व धूर्त व्यक्ति को तेलुगु में 'देवांतकुडु' (देवता का अन्त करने वाला) कहा जाता है।

कुछ प्रयोग ऐसे होते हैं जिनका अर्थ हिन्दी में विरोध ध्वनित करता है; जैसे—तेलुगु में—"पच्चि मोस गाडु" (कच्चा धोखेवाज) जवकि हिन्दी मे "पक्का धोखेबाज" कहा जाता है। इसमे तेलुगु का "कच्चा" विशेपण हिन्दी में विपरीत अर्थ मे "पक्का" हो गया है। तेलुगु मे घनिष्ठ मित्र को "प्राण मित्र" तथा बचपन के दोस्त को "बाल्य स्नेहितुडु" कहा जाता है। अनुवाद करने पर दूसरे के लिए "लंगोटिया यार" सूझे तो अनुवाद में बात नही आ पाती।

लोकोक्तियों के प्रयोग में तो यह समस्या और भी जटिल हो जाती है। हम यहाँ पर तेलुगु की कुछ विशिष्ट लोकोक्तियो को प्रस्तुत कर रहे है। उनका भाव हिन्दी में लगभग उसी रूप में है—

१. चल्लुकु वच्चि मुंयदाचुटेंदुलकु ?
   (छाछ लेने को आया)
२. प्रोद्दुने वच्चिन वान प्रोद्दुपोयि वच्चिन चुट्टं पोयेदि लेदु।
   (सुबह की वरखा और रात के पाहुन जल्दी नही जाते।)
३. पाड़ि लेनि इल्लु पाताल लोकं।
   (बिन गोरस घर नरक समान)
४. रोहिणी कार्ते लो रोल्लु वद्दलवुतायि।
   (राहिणिया पाख मे ओखली भी फट जाती है।)

१. ये उदाहरण भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'नाटककार वेंकटेश्वर राव' से लिये गये हैं; जिसका अनुवाद इन पंक्तियों के लेखक ने किया है।

५ लाभं लेनि सैटिट वरदनु पोइंट ।
(बिना लाभ देगे बनिया भरी गंगा मे भी पाँव नही देता)

६. कालु जारिते तीसुको गलमु कानि नोरू जारिते तीसुको गलमा ?
(पैर के फिसलने पर निकाल सकते है, पर जुबान के फिसलने पर वापस क्या ले सकते है ?)
समानार्थी बात का चूका आदमी और डाल का चूका वदर ।

७. चेट्टै वंगनिदि मानै वगुना ?
(पौधा रहते न झुका, पेड होकर झुकेगा ?)

८. नडिमंत्रपु सिरि नराल मीद कुरुपु ।
(कच्ची दौलत रीढ़ का फोडा; अर्थात् बीच मे (जन्म-मृत्यु के बीच)
(प्राप्त सपदा नसो पर उगे फोडे के समान है ।)

९. मचि मनिपिकोक माट मचि गोड्डुकोक देब्ब ।
(अच्छे आदमी के लिए बात और ढोर के लिए लात)

उपर्युक्त कठिनाइयों के बावजूद तेलुगु मे संस्कृत से सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत हुए है ।

तेलुगु से हिन्दी मे पर्याप्त मात्रा मे कहानी, उपन्यास, निबंध, जीवनियाँ, नाटक, इतिहास इत्यादि के रूपांतर विभिन्न प्रकाशनो के साथ साहित्य अकादमी, नेशनल बुक ट्रस्ट, राष्ट्रभाषा परिषद् तथा अन्यान्य संस्थाओ के द्वारा प्रकाशित हुए है, जिनका अध्ययन करने पर हमें यही प्रतीत होता है कि तेलुगु से हिन्दी मे रूपांतर काफी सुगमता एवं सफलतापूर्वक संभव है । फिर भी भाषायी भिन्नता के कारण सफल अनुवाद प्रस्तुत करने मे कतिपय व्यावहारिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है ।

इस संदर्भ में हम यहाँ पर तेलुगु के कतिपय लेखको के कथा-साहित्य एवं नाटको के रूपातर मे उपस्थित होनेवाली समस्याओ की ओर ध्यान आकृष्ट कराना चाहेगे ।

अनुवाद के तहत भाषा-शैली, वाक्य-रचना, शिल्प आदि की समुचित जानकारी के बिना मौलिक रचना का अनुवाद संभव नही है । निबन्ध, इतिहास, समीक्षा इत्यादि का अनुवाद भाषा-ज्ञान एवं पाडित्य के बल पर सफलतापूर्वक किया जा सकता है, लेकिन कविता, कथा-साहित्य और नाटक के संदर्भ मे यह बात नही है । उदाहरण के लिए विश्वनाथ सत्यनारायण की शैली पंडिताऊ, क्लिष्ट, दुरूह तथा लम्बे समासों से युक्त है । उनकी भाषा की परिनिष्ठित तथा तत्सम शब्दो से पूर्ण होता है । उनके वाक्य इतने लम्बे

होते हैं कि उनको उसी रूप में हिन्दी में उतारना कठिन ही नहीं, असंभव-सा लगता है। उन वाक्यों को तोड़कर उनके भीतर बिखरे भावों को एक गोताखोर की भाँति एकत्रित करना होता है।

श्री कुटुंबराव की भाषा व शैली सरल, सुबोध है। वाक्य इतने छोटे तथा सुगठित होते है कि उनमें एक भी शब्द व्यर्थ का नही होता। उसमे तेलुगुपन इतना अधिक है कि हिन्दी के जन-प्रचलित रूप की जानकारी के बिना अनुवाद असंभव है। उनकी कतिपय कहानियाँ सामाजिक संदर्भ को प्रस्तुत करने वाली हैं। उदाहरण के लिए "गंजिकेंन्द्रम" रायल सीमा के अकाल का सच्चा चित्र प्रस्तुत करती है। यदि किसी प्रदेश में ऐसा भयंकर अकाल न पडा हो तो उसकी कल्पना भी नहीं ,की जा सकती। ऐसी ही बातें अन्य कहानी तथा उपन्यासकारों, नाटककारों एवं कवियो की कृतियों के अनुवाद के विषय में भी कही जा सकती है। अन्तिम निष्कर्ष के रूप में हमें निम्नलिखित तथ्यो पर गंभीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। इस प्रसंग में पहला प्रश्न यह है कि आज उत्तम अनूदित साहित्य का अभाव क्यों है? इस प्रसंग में इसका उत्तर यों दिया जा सकता है कि स्वतंत्र या मौलिक लेखन करने वाले लेखक सर्जनात्मक साहित्य के सृजन मे ज्यादा अभिरुचि दिखाते हैं, अनुवाद में नहीं। दूसरी बात यह है कि अनुवाद के लिए मौलिक लेखन की अपेक्षा कम पारिश्रमिक दिया जाता है। तीसरी बात है कि द्विभाषी साहित्यकारों की संख्या कम है। इसीलिए मूल से अनुवाद कराने की अपेक्षा अनुवाद से अनुवाद कराये जा रहे है। इसके कारण भी अच्छे अनुवाद हमारे सामने आ पा रहे हैं। चौथी बात यह है कि अनूदित ग्रन्थो की बिक्री कम होती है। पाँचवीं बात यह है कि अनुवादों के लिए चयन करते समय किसी भाषा की उत्तम कृति का चुनाव भी सही ढंग से नहीं हो रहा है।

उपर्युक्त विषमताओ के बावजूद इनके अपवाद भी हो सकते है। उदाहरण के लिए तेलुगु भाषा की विविध विधाओं के जनक श्री वीरेशलिंगम पंतुलु ने सर्वप्रथम अंग्रेजी के विख्यात लेखक श्री गोल्डस्मिथ द्वारा विरचित "विकार आफ वेकफील्ड" उपन्यास का तेलुगु में "राजशेखर चरित्र" नाम से स्वतंत्र अनुवाद किया। इस रूपांतर में अनुवादक ने संपूर्ण वातावरण का आन्ध्रीकरण किया, पात्रों व प्रदेशो के नाम बदल डाले; फलतः वह एक मौलिक उपन्यास के रूप में लोकप्रिय हुआ। उस उपन्यास को पढ़कर एक अंगरेज महिला लेखिका मुग्ध हुई और उन्होंने इस तेलुगु उपन्यास का रूपांतर पुनः अंग्रेजी में "फार्चून्स व्हील" (भाग्य चक्र) नाम से प्रकाशित किया, जिसकी "लन्दन

टाइम्स'' तथा मद्रास के सर्वाधिक लोकप्रिय अंग्रेजी दैनिक ''हिन्दू'' ने बड़ी प्रशंसा की और उसे एक अभूतपूर्व उपन्यास बताया।

अतः हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं है। अनुवाद को रोचक, सरल तथा मौलिक तत्वों से सशक्त एवं सफल बनाने का प्रयास करना चाहिए, तब जाकर अनुवाद भी मौलिक ग्रन्थों की भाँति पाठकों द्वारा समादृत होंगे, उनकी बिक्री बढ़ेगी तथा विश्व का संपूर्ण साहित्य समस्त भाषा-भाषियों के लिए सरलतापूर्वक उपलब्ध हो सकेगा।

उनकी कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं : 'जिंदगी की राह' 'स्वप्न और सत्य', 'लकुमा', 'धरती मेरी माँ', 'भग्न सीमाएँ', 'बैरिस्टर', प्रोफेसर', 'यह बस्ती', 'वे लोग', 'शबरी', 'प्रकाश' और 'परछाईं' आदि उपन्यास; 'तेलुगु की उत्कृष्ट कहानियाँ', 'तेलुगु की श्रेष्ठ कहानियाँ' आदि। दक्षिण में मौलिक हिन्दी-लेखन की जो गौरवमयी परम्परा रही है, उसे श्री रेड्डी ने अपने उपन्यास, नाटक, निबंध आदि विधाओं से आगे बढ़ाया है।

हिन्दी प्रचार सभा के लिए वह बरसों-बरस सक्रिय रहे हैं। उन्हें असाधारण साहित्य-सेवा के लिए भारत सरकार, उत्तर प्रदेश शासन, विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, आंध्र प्रदेश अकादमी द्वारा पुरस्कृत किया जा चुका है। आपके सृजनात्मक साहित्य पर कई शोध हो रहे हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन उनकी दीर्घकालीन सेवा के लिए "साहित्य-रत्न" व "साहित्यालंकार" की उपाधियों से भी उनको अलंकृत कर चुका है। कई केन्द्रीय मंत्रालयों की हिन्दी सलाहकार समितियों के आप सक्रिय सदस्य रहे हैं।

तेलुगु और हिन्दी को एक-दूसरे के साहित्य से धनी करने, व्यापक हिन्दी लेखन और सेवा के लिए उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान डॉक्टर रेड्डी को सौहार्द सम्मान से समादृत कर चुका है। उन्होंने अपनी साहित्य-यात्रा में मातृभाषा से अधिक राष्ट्रभाषा को स्थान दिया है। वे दक्षिण और उत्तर की सांस्कृतिक एकता के मिलन-विन्दु हैं। सम्प्रति भारतीय भाषा परिषद् (कलकत्ता) के निदेशक पद पर समासीन हैं।

सम्पर्क : 26 वादि वेलपुरम
वेस्ट माम्बालम, मद्रास